CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डॉ. अवधेश्वर अरुण

हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डॉ० अवधेश्वर 'अरुण'

जन्म :—आश्विन शुक्ल नवमी संवत् १९९५ वि०

जन्म स्थान :—बिठौली (मुजफ्फरपुर)

शिक्षा :—बिहार विश्वविद्यालय से

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्

सन् '६२ में बिहार विश्वविद्यालय सेवा के अन्तर्गत लंगट सिंह कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त।

अपनी मातृभाषा वज्जिका के सरस गीतकार के रूप में ख्याति प्राप्त। भाषा-विज्ञान, काव्य, नाटक और आलोचना इनके अध्ययन अध्यापन के विशेष क्षेत्र हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी ~ ६६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास

HINDI BHASHA KA SWAROOP-VIKAS

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास

लेखक
डॉ० अवधेश्वर अरुण
पी-एच० डी०, डी० लिट्०
प्राध्यापक, हिंदी विभाग
बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ्फ़रपुर

पुनरीक्षक
पद्मश्री डॉ० श्यामनंदन किशोर
आचार्य तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग
बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, १९७३

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत सरकार (शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

प्रथम संस्करण : जनवरी, १९७३
३०००

मूल्य : ७·०० (सात रुपए)

द. नं. ९७८८५

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन भवन, कदमकुआँ
पटना-३

मुद्रक :
शंकर प्रेस
दरियापुर गोला
पटना-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ "हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास" डॉ० अवधेश्वर अरुण की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। इसका पुनरीक्षण बिहार विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद्मश्री डॉ० श्यामनन्दन किशोर ने किया है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

पटना — अध्यक्ष

दिनांक १० जनवरी, १९७३ — बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ "हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास" बिहार विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक डॉ० अवधेश्वर अरुण की मौलिक रचना है। डॉ० अरुण प्रतिभासम्पन्न लेखक तथा विद्वान् हैं। इस ग्रंथ का पुनरीक्षण बिहार विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, पद्मश्री डॉ० श्यामनन्दन किशोर ने किया है। आशा है, यह ग्रंथ विश्वविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ का मुद्रण-कार्य शंकर प्रेस, पटना-३ ने किया है। इसके आवरण-शिल्पी पटना स्कूल ऑफ आर्ट्स के अध्यापक श्री श्याम शर्मा हैं तथा प्रूफ-संशोधक श्री लालबहादुर प्रसाद हैं। प्रूफ-संबंधी मुद्रणादेश लेखक ने स्वयं दिया है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

शिवनन्दन प्रसाद

विदेशक

बिहार हिंदी ग्रंथ आकादमी

पटना

दिनांक १० जनवरी, १९७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

हिन्दी भाषा के स्वरूप और विकास का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों का अब हिन्दी में अभाव नहीं है। इसके एक-एक पक्ष को लेकर अनेक सोपाधि-निरुपाधि शोध ग्रंथ और सामान्य ग्रथ लिखे जा चुके हैं जिसमें भाषा वैज्ञानिकों ने अपने गहन अध्ययन-मनन द्वारा एतद्‌विषयक ज्ञान को निभ्रान्त बनाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी भाषा के अध्ययन की इसी परम्परा में प्रस्तुत है मेरा यह छोटा-सा प्रयास—"हिन्दी भाषा का स्वरूप-विकास।" यह पुस्तक एम० ए० हिन्दी परीक्षा में हिन्दी भाषा के अध्ययन के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों में निर्धारित पाठ्य क्रम को ध्यान में रखकर लिखी गई है। पुस्तक रचना में यद्यपि छात्रोपयोगिता को ही प्रधानत: ध्यान में रखा गया है किन्तु हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन में रुचि रखने वाले सामान्य पाठक भी अपने लिए बहुत-कुछ पा सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

हिन्दी भाषा पर यद्यपि अनेक प्रामाणिक ग्रंथ विद्वान लेखकों के मिलते हैं किन्तु उनमें से कुछ तो अनद्यतन (आउट आफ डेट) हो गए हैं और कुछ इतने विस्तृत और गहन-गंभीर हैं कि छात्र उनका अवगाहन करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रस्तुत पुस्तक में इन असुविधाओं से बचने का प्रयत्न किया गया है। कई वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं में छात्रों को भाषा-विज्ञान पढ़ाते हुए उनकी असुविधाओं और उलझनों को निकट से देखता रहा हूं। अतः इस पुस्तक में विषय को सहज-बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है ताकि अध्ययन स्तर की उच्चता भी बनी रहे और छात्रों की उलझनें भी दूर हो जायँ। मैंने आवश्यकता से कम नहीं दिया है और अनावश्यक अधिक से भी बचने का प्रयत्न किया है। अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह विज्ञ अध्यापक और अध्येता छात्र हा बता सकेंगे।

पुस्तक छः प्रकरणों में विभक्त है। प्रथम प्रकरण मूलतः भूमिका भाग है जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिन्दी शब्द के प्रयोग, विभिन्न अर्थ एवं विकास, हिन्दी के तथाकथित अन्य नाम और देशी-विदेशी प्रशासनों के सन्दर्भ में हिन्दी के विकास के साधक-बाधक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय प्रकरण में भारतीय आर्य भाषाओं के ऐतिहासिक विकास को निरूपित करते हुए प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी आर्य भाषाओं की विशेषताओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विवेचन किया गया है। इस क्रम में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाएँ आदिम जन भाषा-समूहों के परिनिष्ठित रूप हैं और परवर्त्ती परिनिष्ठित भाषाएँ केवल पूर्ववर्ती परिनिष्ठित भाषा से उद्‌भूत नहीं हुई हैं अपितु उनके निर्माण में लोक मुख में समानान्तर रूप से जीवित रहने वाली जनभाषाओं का भी योगदान है। इस विकास को पुस्तक में पृ० संख्या १९ के चित्र द्वारा निरूपित किया गया है।

तृतीय प्रकरण में हिन्दी ध्वनियों का विवेंचन करते हुए हिन्दी में होनेवाले ध्वनि-परिवर्तन के नियमों तथा आगत विदेशी शब्दों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों पर भी विचार किया गया है। हिन्दी ध्वनियों का रचनातात्त्विक, ऐतिहासिक और उच्चारण-प्रक्रिया की दृष्टियों से विवेचन कर अध्ययन को समग्रता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण व्याकरण-भाग है जिसमें अनेक उपशीर्षकों के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों का प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पंचम प्रकरण में लिपि-विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हुए देवनागरी लिपि की विशेषताओं और उसके सुधार के लिए किए गए प्रयत्नों के औचित्य-अनौचित्य का विवेचन किया गया है।

षष्ठ प्रकरण में कुछ टिप्पणियाँ जोड़ दी गई हैं जो छात्रों के लिए विशेष उपयोगी हैं। इस प्रकार पुस्तक में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का पूर्ण इतिहास-विकास प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। विषय के स्पष्टीकरण में प्रायः सर्वत्र हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास, और भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखा गया है।

पुस्तक की रचना बिहार विश्वविद्यालय के कला निकाय के अधिष्ठता एवं हिन्दी विभाग के आचार्य तथा अध्यक्ष पद्मश्री डॉ० श्यामनन्दन किशोर के निर्देशन में हुई है। उनके अशेष स्नेह और अगाध पाण्डित्य का भरपूर लाभ उठाने की चेष्टा मैंने की है।

बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना के निदेशक और हिन्दी साहित्य के मूद्‌र्धन्य विद्वान डॉ० शिवनन्दन प्रसाद जी का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक की रूपरेखा देखकर पुस्तक लिखने की स्वीकृति दी और अपने बहुमूल्य सुझावों से समय-समय पर लाभान्वित करते रहे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष आदरणीय डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को अकादमी से प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की है।

चूँकि ज्ञान की सीमा और अभिव्यक्ति की सीमित प्रणालियां नहीं होता हैं अतः पुस्तक की शत-प्रतिशत निर्दोषिता और श्रेष्ठता की बात करना निरर्थक है। हां, भाषा-विज्ञान के अध्येता छात्रों को यदि इससे लाभ पहुँचा तो अपना श्रम सार्थक समझूँगा। प्रतिक्रियाओं और सुझावों का सादर स्वागत है।

विनीत
अवधेश्वर अरुण

विष्णुपुर निवास
पड़ाव पोखर लेन
आमगोला, मुजफ्फरपुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विवेचन किया गया है। इस क्रम में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाएँ आदिम जन भाषा-समूहों के परिनिष्ठित रूप हैं और परवर्त्ती परिनिष्ठित भाषाएँ केवल पूर्ववर्ती परिनिष्ठित भाषा से उद्भूत नहीं हुई हैं अपितु उनके निर्माण में लोक मुख में समानान्तर रूप से जीवित रहने वाली जनभाषाओं का भी योगदान है। इस विकास को पुस्तक में पृ० संख्या १९ के चित्र द्वारा निरूपित किया गया है।

तृतीय प्रकरण में हिन्दी ध्वनियों का विवेंचन करते हुए हिन्दी में होनेवाले ध्वनि-परिवर्तन के नियमों तथा आगत विदेशी शब्दों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों पर भी विचार किया गया है। हिन्दी ध्वनियों का रचनातात्त्विक, ऐतिहासिक और उच्चारण-प्रक्रिया की दृष्टियों से विवेचन कर अध्ययन को समग्रता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण व्याकरण-भाग है जिसमें अनेक उपशीर्षकों के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों का प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पंचम प्रकरण में लिपि-विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हुए देवनागरी लिपि की विशेषताओं और उसके सुधार के लिए किए गए प्रयत्नों के औचित्य-अनौचित्य का विवेचन किया गया है।

षष्ठ प्रकरण में कुछ टिप्पणियाँ जोड़ दी गई हैं जो छात्रों के लिए विशेष उपयोगी हैं। इस प्रकार पुस्तक में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का पूर्ण इतिहास-विकास प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। विषय के स्पष्टीकरण में प्रायः सर्वत्र हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास, और भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखा गया है।

पुस्तक की रचना बिहार विश्वविद्यालय के कला निकाय के अधिष्ठता एवं हिन्दी विभाग के आचार्य तथा अध्यक्ष पद्मश्री डॉ० श्यामनन्दन किशोर के निर्देशन में हुई है। उनके अशेष स्नेह और अगाध पाण्डित्य का भरपूर लाभ उठाने की चेष्टा मैंने की है।

बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना के निदेशक और हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वान डॉ० शिवनन्दन प्रसाद जी का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक की रूपरेखा देखकर पुस्तक लिखने की स्वीकृति दी और अपने बहुमूल्य सुझावों से समय-समय पर लाभान्वित करते रहे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष आदरणीय डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को अकादमी से प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की है।

चूँकि ज्ञान की सीमा और अभिव्यक्ति की सीमित प्रणालियां नहीं होता हैं अतः पुस्तक की शत-प्रतिशत निर्दोषिता और श्रेष्ठता की बात करना निरर्थक है। हां, भाषा-विज्ञान के अध्येता छात्रों को यदि इससे लाभ पहुँचा तो अपना श्रम सार्थक समझूँगा। प्रतिक्रियाओं और सुझावों का सादर स्वागत है।

विनीत
अवधेश्वर अरुण

विष्णुपुर निवास
पड़ाव पोखर लेन
आमगोला, मुजफ्फरपुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रथम प्रकरण

उपक्रम १

हिन्दी शब्द की निरुक्ति १

भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग ३

हिन्दी के तथाकथित अन्य नामों का रहस्य ६

हिन्दी शब्द की व्याप्ति १०

हिन्दी के विकास पर धर्म और राजनीति का प्रभाव ११

द्वितीय प्रकरण

भारतीय आर्य भाषाओं का विकास और हिन्दी १५

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण और परिचय ३०

हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ ३७

पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में अन्तर ४७

आर्य भाषाओं में स्वराघात ४९

तृतीय प्रकरण

हिन्दी ध्वनियों का विवेचन ५६

स्वर ५७

व्यंजन ६०

हिन्दी ध्वनियाँ : ऐतिहासिक सन्दर्भ ६५

हिन्दी में ध्वनि-परिवर्त्तन विषयक नियम ६८

हिन्दी ध्वनियों का इतिहास-विकास ७१

स्वर ७१

व्यंजन ७२

विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्त्तन ७५

अंग्रेजी शब्दों में ध्वनि परिवर्त्तन ७८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थ प्रकरण

व्याकरण भाग ८०

संज्ञा ८०

(क) मूल तथा विकृत रूप ८०

(ख) कारक चिह्न ८६

(ग) लिंग ९३

संज्ञा और लिंग-भेद ९३

सर्वनाम और लिंग-भेद ९७

विशेषण और लिंग भेद ९७

क्रिया और लिंग भेद ९७

(घ) वचन ९८

सर्वनाम १००

विशेषण ११२

(क) पूर्ण संख्यावाचक ११४

(ख) अपूर्ण संख्यावाचक १२४

(ग) क्रम संख्यावाचक १२५

(घ) आवृत्ति संख्यावाचक १२६

(ङ) समुदाय संख्यावाचक १२७

क्रिया १२८

अव्यय १४५

उपसर्ग-प्रत्यय १५०

पंचम प्रकरण

देवनागरी लिपि और अंक १६१

परिशिष्ट

(१) टिप्पणियाँ १७७

(२) पारिभाषिक शब्दावली १८६

(३) सहायक ग्रंथ १९१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम प्रकरण

उपक्रम

मानव-सभ्यता, संस्कृति आदि की तरह भाषा भी विकासवान होती है। उसकी यह विकासशीलता अनेक अन्तर्वाह्य परिस्थितियों का परिणाम होती है। अतः किसी भी भाषा के विकास पर विचार करते समय उसके उत्स, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके विकास को प्रभावित करने वाली विभिन्न परिस्थितियों का विवेचन-विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

हिन्दी भाषा के उद्गम और विकास पर विचार करते समय हिन्दी शब्द की निरुक्ति, उसका अर्थ-विकास तथा हिन्दी के भाषागत विविध रूपों के विकास को प्रभावित करने वाली अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों की ओर अनायास हमारा ध्यान चला जाता है। इनकी व्यापक और पूर्ण विवेचना करने के लिए आवश्यक है कि हम (१) भारतीय आर्य-भाषाओं के ऐतिहासिक विकास, (२) देश पर होनेवाले विदेशी—मुख्यतः मुसलमानी और अंग्रेजी आधिपत्य के प्रभाव और (३) भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपने दृष्टिपथ में रखें।

हिन्दी शब्द की निरुक्ति

प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिन्दी' फारसी शब्द है, मगर मूल की दृष्टि से संस्कृत शब्द। संस्कृत शब्द सिंधु से देशवाची फारसी शब्द हिंद बना और इसी से निष्पन्न 'हिन्दुवी' शब्द कालक्रम से भाषावाची शब्द 'हिन्दी' बन गया। मगर आज यह अपने फारसी प्रभाव को छोड़कर नूतन सांस्कृतिक गरिमा-मंडित शब्द बन गया है, जिसकी अर्थगत व्याप्ति आज हिन्दी-प्रदेश के लगभग दस शताब्दियों के साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन-परिधि को समेटती है।

संस्कृत स्यन्द् धातु से निष्पन्न 'सिन्धु' शब्द नदी विशेष का वाचक है। एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार यह शब्द 'इन्द्' 'इन्ध्' या 'इध्' धातु से भी सिद्ध है, जिसका अर्थ होता है—ऐश्वर्यवान्। इसके अनुसार सिन्धु शब्द नदी के ऐश्वर्य अर्थात् उसकी उद्दाम जीवनी-शक्ति का व्यंग्यार्थ देता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन दोनों मतों में संस्कृत शब्द से ही 'हिन्दी' की व्युत्पत्ति ढूँढ़ने की चेष्टा की गई है। किन्तु, संस्कृत और आर्यत्व के मोह से मुक्त होकर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से भी इस शब्द को व्यापक क्षेत्र में ढूँढ़ने की चेष्टा विद्वानों ने की है।

"आर्यों के आगमन-पूर्व यहाँ एक सभ्य आर्येतर जाति रहती थी जो उनसे पराजित होकर दक्षिण की ओर बढ़ गई"—इस तथ्य को आधार बनाकर डॉ० भोलानाथ तिवारी ने द्रविड़ भाषा-परिवार में इस शब्द की व्युत्पत्ति ढूँढ़ने की चेष्टा की है। सिङ, सिद्, सित्, चिन्द् आदि रूपों में द्रविड़ परिवार की अनेक भाषाओं एवं बोलियों में एक प्राचीन धातु मिलती है जिसका प्रयोग सींचने, छिड़कने, बहने आदि अर्थों में होता है। यदि द्रविड़ों ने यह शब्द किसी अन्य पूर्ववर्त्ती जाति से नहीं लिया हो तो सिन्धु शब्द या तो उपर्युक्त धातुओं से निष्पन्न शब्द है या फिर उन्हीं धातुओं से निष्पन्न किसी शब्द का संस्कृत रूप है।[१]

निश्चय ही डॉ० तिवारी की यह खोज अत्याधुनिक है और जब तक इस अनुमान का खंडन नहीं हो जाता या कोई अन्य अपेक्षाकृत पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाता तब तक यही मानना समीचीन होगा कि यह द्रविड़ भाषा का शब्द है जो संस्कृत से होता हुआ फारसी में आया है। मगर यहीं पर इस आशंका को गलत नहीं ठहराया जा सकता कि सम्भवतः यह धातु द्रविड़ लोग आर्य भाषा से ही ले गये हैं। यह ठीक है कि भाषा-प्रभाव के लिए साहचर्य की आवश्यकता होती है मगर कभी-कभी संक्रान्ति की स्थिति में एकाध बहु-प्रचलित शब्द लोगों की जबान पर आनायास चढ़ जाते हैं। सम्भव है पराजित आर्येतर जाति आर्यों की भाषा से ही यह शब्द अपने साथ ले गयी हो।

नदी-विशेष के अर्थ में सिन्धु शब्द का स्पष्ट प्रयोग तथा आस-पास के प्रदेश के लिए सांकेतिक प्रयोग हमारे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ऋग्वेद में मिलता है—"भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने।" प्रदेश के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग महाभारत काल में आकर बहुत स्पष्ट हो जाता है।

भारत और ईरान के व्यापारिक सांस्कृतिक सम्पर्कों के परिणामस्वरूप यह शब्द ईरान पहुँचता है। 'स' ध्वनि का उच्चारण अवेस्ता में 'ह' होने के कारण 'सिन्धु' 'हिन्धु' रूप में उच्चरित हुआ और महाप्राण ध्वनियों के

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभाव में 'ध' परिवर्तित होकर 'द' बन गया। इस प्रकार नदी और प्रदेश के अर्थ में 'सिन्धु' शब्द 'हिन्दु' बन गया। आर्यों द्वारा सीमा-विस्तार के साथ सिन्धु-प्रदेश का भी विस्तार हुआ और उसी प्रकार ईरान में हिन्दु शब्द अपने विस्तृत अर्थ में सम्पूर्ण भारतवर्ष का वाचक हो गया।

ईरानी प्रभावस्वरूप हिन्दु शब्द के 'उ' का स्वर-लोप होने से हिन्द, विशेषणार्थक 'इक' प्रत्यय के योग से हिन्दीक, और अन्त्य व्यजन-लोप से हिन्दी शब्द का निर्माण हुआ जिसका अर्थ होता है—हिन्द का यानी भारत-वासी। इकबाल की कविता "हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा' में हिन्दी शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग है।

दूसरी ओर ईरानी हिन्दीक अरबी से होता हुआ ग्रीक भाषा में 'इन्दिका' लैटिन में 'इन्दिया' और अंग्रेजी में 'इंडिया' बन गया। सामान्य शिक्षित लोग इस ध्वनि परिवर्तन को नहीं समझ सकने के कारण इंडिया शब्द को अंग्रेजों द्वारा दिया गया नाम समझ लेते हैं।

ऊपर के विवेचन से हिन्दी शब्द की सिद्धि तो स्पष्ट हो जाती है, मगर भाषा के अर्थ में उसके प्रयोग की सूचना नहीं मिलती।

भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग

भाषा के अर्थ में हिन्दी शब्द का प्रयोग फारसी साहित्य में छठी शताब्दी में मिलता है। पंचतंत्र के फारसी अनुवाद में संस्कृत के लिए 'ज़बाने-हिन्दी' का प्रयोग किया गया है जबकि तेरहवीं शताब्दी में 'ज़बाने-हिन्दी' शब्द का प्रयोग तत्कालीन मध्यदेशीय भाषा के अर्थ में मिलता है। पन्द्रहवीं शताब्दी में 'ज़फ़रनामा' नामक ग्रन्थ में इसका प्रयोग हिन्दी भाषा के अर्थ में मिलता है जो विदेशी उल्लेखों में प्राचीनतम है। इस विवरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 'हिन्दी' का भाषा के अर्थ में प्रयोग भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास के साथ ही तत्कालीन भारतीय भाषा के अर्थ में परिवर्तित हो रहा था।

भारतवर्ष में भी इसका प्रयोग मुसलमानों द्वारा ही हुआ लेकिन प्रथम प्रयोक्ता कौन था, यह संदिग्ध है। हिन्दू साहित्यकारों ने तत्कालीन जनभाषा के लिए 'भाषा' या 'भाखा' शब्द का प्रयोग किया है,[१] हिन्दी का नहीं। अतः हिन्दी शब्द के प्रयोग को आर्यभाषा की परम्परा की कड़ी मानना संगत

१. (क) संस्कृत है कूप जल भाषा बहता नीर—कबीर
(ख) भाषा भनिति मोर मति थोरी—तुलसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं दीखता। मुसलमान साहित्यकारों में सबसे प्राचीन खुसरो हैं। इन्होंने हिन्दुवी या हिन्दुई शब्द का तो प्रयोग किया है मगर हिन्दी शब्द का नहीं। सम्भव है कि हिन्दुवी शब्द के प्रयोग के कुछ समय बाद भारतीय मुसलमानों की भाषा के लिए हिन्दी शब्द चल पड़ा हो। डॉ० उदय नारायण तिवारी के शब्दों में "विदेशी मुसलमानों ने भारतीय मुसलमानों को हिन्दी कहा और आगे चलकर उनकी भाषा का नाम भी 'हिन्दी' ही पड़ा।"[१]

यद्यपि बीच-बीच में हिन्दी के पर्याय रूप में अनेक शब्दों का प्रयोग होता रहा, मगर मुख्य रूप से हिन्दी शब्द का अर्थ भारतीय मुसलमानों की भाषा ही माना जाता रहा। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में इसका प्रयोग मुसलमानों की भाषा के अर्थ में अधिक प्राचीन है। सन् १४७५ ई० के दक्षिणी कवि शाही मीराजी की रचनाओं से ही हिन्दी शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग मिलने लगता है। सत्रहवीं शताब्दी से उत्तर भारत में भी इसके प्रयोग की अविच्छिन्न परम्परा मिलने लगती है। किन्तु सन् १७७१ ई० के आस-पास यह शब्द हिन्दुओं की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है जो नूर मुहम्मद की निम्नांकित पंक्तियों से सिद्ध है।

हिन्दू मग पर पाँव न राख्यो
का जो बहुतै हिन्दी भाख्यो।

तात्पर्य यह कि आरम्भिक प्रयोग से लेकर सन् १८५७ ई० तक हिन्दी शब्द मुख्य रूप से मुसलमानों की भाषा के लिए ही प्रयुक्त होता रहा। इस तथ्य को पुष्ट करते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं—"लगभग गदर के काल तक जनता में हिन्दी शब्द कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः पूर्ववर्त्ती अर्थ में ही प्रयुक्त हो रहा था।"[२]

इस बीच हिन्दू प्रायः अपनी भाषा को भाखा कहकर ही पुकारते रहे। अधिक से अधिक कभी-कभी उन लोगों ने उसे हिन्दुवी भर कहा, हिन्दी नहीं।

अंग्रेजों के साथ हिन्दी शब्द का अर्थ-परिवर्त्तन हुआ और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आज यह परिवर्त्तन अर्थादेश की सीमा में पहुँच गया है जहाँ हिन्दी शब्द में पूर्णतः भारतीयता की आभिजात्यता और जन-सांस्कृतिक गरिमा का समावेश मिलता है। यदि उसमें पूर्व अर्थ की गंध है तो मात्र इतनी कि उसके कुछ शब्द अरबी-फारसी के भा हैं।

---

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १८६
२. हिन्दी भाषा, पृ० १३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी का प्रयोग उसके प्राचीन अर्थ (भारतीय मुसलमानों की भाषा) में ही किया किन्तु फोर्ट विलियम कॉलेज के मंच को ही यह श्रेय मिला कि वह हिन्द्वी के नवीन अर्थ की घोषणा करे। कैप्टन टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलेज के सन् १९१२ ई० वाले वार्षिक विवरण में यह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूँ। जो फारसी लिपि में लिखी जाती है...मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा हूँ जिसकी अपनी लिपि है...जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण के पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रान्त की भाषा थी।"[१]

कहना न होगा कि टेलर के इस अभिभाषण ने हिन्दी की अर्थगत द्विधा को समाप्त कर दिया और पहली बार यथार्थ स्थिति को स्वीकार किया गया। बाद में विलियम प्राइस और लार्ड एमहर्स्ट ने हिन्दी को स्पष्ट रूप से हिन्दुओं की भाषा स्वीकार की और उसमें संस्कृत शब्दों की प्रमुखता मानी।

हिन्दी शब्द के इस अर्थ-परिवर्त्तन के मूल में मुख्यतः दो कारण दीखते हैं। प्रथम यह कि हिन्दी को स्पष्ट अर्थ-सत्ता कभी नहीं मिली। वह कभी भारतीय मुसलमानों की भाषा बनी और कभी हिन्दुओं की। उसका अर्थ हिन्दुस्तानी और 'भाखा' के बीच डोलता रहा। किन्तु, इतने व्यापक अर्थ को सम्हालना उसके लिए सम्भव नहीं था फलतः इसका अर्थ टूट कर दो टुकड़ों में बँट गया।

दूसरी बात कि हिन्दी शब्द में हिन्दुत्व का भाव अधिक है। मुसलमानपन का कम। मुसलमानपन का प्रतिनिधित्व हिन्दुस्तानी, रेख्ता, उर्दू आदि शब्द अधिक सशक्तता से करते हैं। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने दोनों को मिश्रित रहने देने के बदले उसे दो टुकड़ों में बांटना ही श्रेयस्कर समझा, क्योंकि यह विभाजन उनकी 'फूट डालो और शासन करो' नीति के अधिक अनुकूल था।

इस प्रकार आरम्भ में जिस संस्कृत या मध्यकालीन भाषा के अर्थ में पारसी-इरानियों ने 'ज़वाने हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया वह मुसलमानी शासन-काल में अरबी-फारसी प्रधान भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा और पुनः अंग्रेजों की भेद-नीति के द्वारा अपनी प्राचीन अर्थ-गरिमा की ओर लौट आया।

---

१ Imperial Records, Vol. IV, pp. 276-77.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि भाषा-विज्ञान में अनुमान के लिए स्थान नहीं होता मगर यह अनुमित करना बहुत असंगत नहीं प्रतीत होता कि इस बीचवाली अवधि में हिन्दू साहित्यकारों और मुसलमानों को छोड़कर शेष अधिकांश जनता हिन्दी को जनभाषा के रूप में ही मानती रही। यह जनभाषा अरबी-फारसी शब्दों से रहित और तद्भव शब्दावली-प्रधान थी। फोर्ट विलियम कॉलेज-युग तक आते-आते जनता की धारणा अधिक प्रबल हो उठी और दूरदर्शी अंग्रेजों ने दोनों को कृत्रिमतापूर्वक जोड़ने के बदले खंडित करना ही अधिक उपयुक्त समझा। इस प्रकार हिन्दी शब्द मुसलमानों के बीच भले ही विभिन्न रूपों में डोलता रहा मगर हिन्दू जनता के लिए तो वह जनभाषा का ही सूचक रहा।

हिन्दी के तथाकथित अन्य नामों का रहस्य

भाषा के अर्थ में हिन्दी के प्रयोग का विकासात्मक अध्ययन करते समय हिन्दुवी, रेख्ता, हिन्दुस्तानी, दक्षिणी हिन्दी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी की भाषागत व्याप्ति की निर्भ्रान्त धारणा के लिए आवश्यक है कि हम इन नामों का भी परिचय प्राप्त कर लें। डॉ० उदय नारायण तिवारी कहते हैं—'भाषा के अर्थ में हिन्दी के अतिरिक्त हिन्दुई, हिन्दवी, हिन्द्वी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, हिन्दुस्थानी, हिन्दोस्तानी या हिन्दुस्तानी, खड़ी बोली, रेख्ता-रेख्ती, उर्दू आदि का भी प्रयोग होता है।'[१] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक भाषा के लिए इतने नामों का प्रयोग असंगत है। अतः या तो ये नाम एक ही भाषा को विविध आधारों पर विविध कालों में दिए गये माने जा सकते हैं या पृथक-पृथक भाषाओं के नाम हो सकते हैं। यहाँ हम इन पर थोड़ा विचार करें।

(क) हिन्दुई, हिन्दवी, हिन्द्वी—चन्द्रबली पांडेय के अनुसार हिन्दुई या हिन्दवी शिक्षित मुसलमानों की भाषा थी।[२] इंशा अल्ला खाँ के हिन्दवी की छूट में जिस भाखापन का वहिष्कार बाहरी बोली के पुट का अभाव आदि कहा गया है उससे तो यही सिद्ध होता है। किन्तु, डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं—'हिन्दुवी या हिन्दवी तो वह भाषा थी जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित थी और मध्यप्रदेश में सहज रूप से प्रयुक्त हो रही थी। इस हिन्दी को भारतीय मुसलमानों ने भी अपनाया किन्तु, स्वभावतः धार्मिक तथा

१. हिन्दी भापा का उद्गम और विकास, पृ० १८६
२. उर्दू का रहस्य, चन्द्रबली पांडेय, पृ० ४०-४८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सांस्कृतिक कारणों से उनकी भाषा में अरबी, फारसी, तुर्की के शब्द अधिक थे। इसी भाषा के लिए आरम्भ में कदाचित हिन्दी शब्द चला। इस प्रकार हिन्दवी शब्द पुराना है और हिन्दी अपेक्षाकृत बाद का।"[१] डॉ० तिवारी यह कहना चाहते हैं कि हिन्दुवी ही जब अरबी-फारसी बहुल हो गई तो वह हिन्दी के लगभग समानार्थी होकर मुसलमानों की भाषा कहलाई। इसे हम यों कह सकते हैं कि मध्यदेशीय जनभाषा के लिए प्रयुक्त हिन्दुवी कालान्तर में न केवल अरबी-फारसी बहुल होकर भारतीय मुसलमानों की भाषा बन गयी, बल्कि उसका पुराना अर्थ भी लुप्त हो गया। क्योंकि, रानी केतकी की कहानी से स्पष्ट है कि हिन्दुवी का प्रयोग खाँ साहब ने मध्यदेशीय जनभाषा के पुराने अर्थ में नहीं किया है।

(ख) दक्खिनी, दखनी या दकनी—'हॉब्सन-जॉब्सन' कोश के अनुसार यह हिन्दुस्तान की एक विचित्र बोली है जिसे दक्षिण के मुसलमान बोलते हैं। उसी कोश में आगे चलकर इसे स्वाभाविक भाषा कहा गया है।[२] इससे यह तथ्य निकाला जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दुस्तान की स्वाभाविक भाषा हिन्दवी का ही किंचित परिवर्तित रूप है जिसे दक्षिण भारत में बस जानेवाले मुसलमान बोलते थे। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों की मात्रा भी अल्प है।[३] और हिन्दी (वर्तमान अर्थ में) की प्रकृति तथा प्रभाव की अधिकता है।

(ग) हिन्दुस्तानी—ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा आदि के अनुसार यह योरोपीय लोगों द्वारा मुख्यतः उर्दू के लिए या मुसलमानों की भाषा के लिए प्रयुक्त नाम है। गार्सां-द-तार्सी के इतिहास में ऐंदुस्तानी शब्द स्पष्टतः उर्दू का पर्यायवाची है। किन्तु, यह शब्द अपेक्षाकृत प्राचीन है और बाबर के आत्मचरित में यह हिन्दी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि तब उर्दू का नामो-

---

१. हिन्दी भाषा, पृ० १३०

२. Very peculiar dialect of Hindustani spoken by such people (Mohammadan inhabitant of Deccan) + + + The Deccani language which is the natural language of the country —Hobson-Jobson, pp 233-34.

३. (क) हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, उ० ना० तिवारी, पृ० १८८
(ख) दक्खिनी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है
—हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० २३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निशान नहीं था। मेमोरीज ऑव बाबर का उद्धरण है—"I have made him sit down before me and desired a man who understood the Hindustani language to explain to him what I said sentence to sentence in order to reassure him."[१]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी उर्दू नहीं है। उर्दू या भारतीय मुसलमानों की भाषा के अर्थ में इसका प्रयोग अठारहवीं शताब्दी के आसपास होने लगता है। हॉब्सन-जॉब्सन कोश में हिन्दुस्तानी को स्पष्ट रूप से उर्दू स्वीकार किया गया है—'Hindustani Zaban, the language of that country but in fact the language of the Mohammedans + + + + + It is also called Ordoo. इसके बाद तो हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का ही सर्वत्र पोषण हुआ, जो मुख्य रूप से एक राजनीतिक चाल थी। ग्राउस ने फारसी लिपि में लिखित अरबी-फारसी बहुल भाषा को उर्दू तथा देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत बहुल भाषा को हिन्दी कहा और दोनों के संयुक्त रूप को हिन्दुस्तानी कहा। ग्रियर्सन ने इसी को स्वीकार किया। ग्रियर्सन के मत का सारांश यह है कि हिन्दुस्तानी अरबी-फारसी शब्दों से युक्त सरल हिन्दी का दूसरा नाम है।

कांग्रेस ने राजनीतिक दबाव में आकर देश की एकता के लिए हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया किन्तु कांग्रेस का यह समझौतावादी दृष्टिकोण विफल हुआ और देश-विभाजन के साथ ही हिन्दुस्तानी का झगड़ा समाप्त हो गया।

(घ) रेख्ता-रेख्ती—भाषा के अर्थ में रेख्ता का प्रयोग उर्दू की अपेक्षा पुराना है तथा इसे भ्रमवश उर्दू का पर्याय समझ लिया जाता है।[२] हिन्दी व्याकरण में अरबी-फारसी शब्दों के मिश्रण से निर्मित सन् १७०० से १८०० ई० के बीच की पद्य भाषा को रेख्ता कहा गया है।[३] रेख्ता यदि पुरुषों की भाषा है तो रेख्ती औरतों की। रेख्ती में उन्हीं शब्दों, रूपों, मुहावरों और प्रयोगों को स्थान दिया गया है जो मुस्लिम नारी-समाज तक सीमित रहा है। सब मिलाकर रेख्ता-रेख्ती मुसलमानों की भाषा है और यदि उसे उर्दू का पर्यायवाची समझा जाता है तो अनुचित नहीं कहा जा सकता।

---

१. Memories of Babar, Lucas, II p. 170.

२. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, डॉ० उ० ना० तिवारी, पृ० ११८

३. डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ० २३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ङ) उर्दू—हॉब्सन-जॉब्सन कोश के अनुसार यह तुर्की शब्द है जब कि डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार चीनी शब्द। ह्वांग-हो नदी के किनारे का वह स्थान जहाँ हूणों (जो मुख्यतः खीमों में रहनेवाली यायावर प्रकार की जाति थी) का एक कबीला रहता था, ओर्दुस कहलाता है। चीनियों द्वारा भगाये गये इन्हीं हूणों के साथ यह शब्द मध्य एशिया में आया। भारत में तुर्कों के साथ इसका आगमन हुआ जो मूलतः हूणों के वंशज थे।[1] इस प्रकार बाबर के पूर्व यह शब्द भारत में फौजी पड़ाव या खीमा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था। धीरे-धीरे फौजी पड़ावों में लगने वाले बाजारों के अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा। कालक्रम से यह उनलोगों की भाषा के अर्थ में चल पड़ा और लश्करी भाषा का स्थानीय भाषा से सम्पर्क होकर उर्दू नामक एक ऐसी मिश्रित भाषा का विकास हुआ जिसका व्याकरण तो कौरवी बोली का था किन्तु शब्द अरबी-फारसी के थे। बाबर के बाद दिल्ली का दरबार उर्दू-ए-मुअल्ला अर्थात् महान शिविर कहलाने लगा और इस दरबार तथा शिविर में प्रचलित मिश्रित भाषा जबाने-उर्दू कहलाई।

इंशा अल्ला खाँ के दरिया-ए-लताफत से उर्दू के सम्बन्ध में उद्धरण देते हुए आचार्य चन्द्रबली पांडेय उर्दू की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं—'शाह जहानाबाद में खुश बयान लोगों ने एक मत होकर अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर-फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम उर्दू रख दिया।' पांडेय जी का यह मत डॉ० उदय नारायण तिवारी की दृष्टि में भले ही अन्यतम गवेषणा हो मगर भाषा-वैज्ञानिक नहीं है। कृत्रिम-निर्माण-पद्धति पर निर्मित किसी भी विकासवान भाषा का उदाहरण विश्व में नहीं मिलता। अतः हमें पांडेय जी का यह मत युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। हाँ, उर्दू के निर्माण का मूलाधार मिश्रण है, इसमें संदेह नहीं। श्री शमशेर सिंह नरूला कहते हैं—'खड़ी बोली के बुनियादी शब्दों के भांडार और व्याकरण के स्कंध पर फारसी और अरबी के शब्दों का ही नहीं उनके कुछ व्याकरणगत नियमों का भी उपारोपण होने से उसका (उर्दू का) उदय हुआ।'[2]

इन उल्लेखों के आधार पर यह मानना अधिक युक्तिसंगत होगा कि उर्दू मूलतः दिल्ली के आस-पास की लोक-भाषा है जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों

---

१. डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ० २२३

२. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ११२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की इतनी प्रचुरता है कि व्याकरणिक दृष्टि से खड़ी बोली के अनुरूप होते हुए भी वह भिन्न भाषा के रूप में राजनीतिक प्रभाव के फलस्वरूप कालान्तर में स्वीकृत हुई। इसी आधार पर इसे हिन्दी की अरबी-फारसी शब्द बहुल शैली माना जाता है।

ऊपर जिन भाषाओं की चर्चा की गई है उनके स्पष्टतः दो वर्ग हैं—(१) हिन्दी या हिन्दवी जिसमें संस्कृत की शब्दावली प्रधान है, (२) उर्दू, हिन्दुस्तानी या रेख्ता—जिसमें अरबी-फारसी की शब्दावली प्रधान है। किन्तु, मूल की दृष्टि से दोनों ही भाषाएं दिल्ली के आसपास की लोकभाषा से निर्मित हैं।

हिन्दी शब्द की व्याप्ति

सामान्यतः हिन्दी शब्द का प्रयोग बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों की भाषा के लिए किया जाता है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र मध्य-देश कहलाता था और हिन्दी को आज भी इसी मध्यदेश की भाषा कहते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं कि "शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जानेवाली किसी आर्य, द्रविड़ या अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है किन्तु आजकल वास्तव में इसका व्यवहार उत्तर भारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा साथ ही इसी भूमि भाग की उप-भाषाओं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है।"[१] वर्मा जी का यह मत एक ओर हिन्दी के प्राचीन रूपों ब्रज, अवधी आदि को समेटता है और दूसरी ओर हिन्दी के आधुनिक प्रतिष्ठित-रूप को सूचित करता है। उन्होंने हिन्दी भाषा-भाषी मध्यदेश का भौगोलिक मानचित्र भी दिया है जिसके अनुसार पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर और दक्षिण-पश्चिम में खंडवा के मध्य का प्रदेश ही हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र है। इस क्षेत्र की अनेक उपभाषाओं और बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत ही माना जाता है।

जो लोग उर्दू का विकास दिल्ली के आसपास की जनभाषा में अरबी-फारसी के शब्दों के योग से मानते हैं वे लोग उर्दू को हिन्दी की एक शैली

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० १५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानकर उसे भी हिन्दी के अन्तर्गत ही परिगणित करते हैं। मेरी दृष्टि में उर्दू को हिन्दी के अन्तर्गत मानना या उसे हिन्दू-मुसलिम एकता के नाम पर हिन्दी-भाषियों के गले मढ़ने का प्रयास व्यर्थ है। यद्यपि इस प्रकार के प्रयत्न कांग्रेसी सरकार के भाषा विशेषज्ञ (?) राजनीतिज्ञों द्वारा किये जाते रहे हैं, मगर हिन्दी भाषी जनता ने सदा ही इसका विरोध किया है।

ग्रियर्सन के अनुसार पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आनेवाली आठ (और डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार निमाड़ी को जोड़कर नौ) उपभाषाओं का समूह ही हिन्दी शब्द की अर्थ व्याप्ति के अन्तर्गत आता है।

कभी-कभी मात्र खड़ी बोली (हिन्दी का वर्त्तमान रूप) को भी हिन्दी कहा जाता है। शिवदान सिंह चौहान लिखित "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष" जैसी पुस्तकों में हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली ही लिया गया है। यह हिन्दी का सर्वाधिक संकुचित अर्थ है। यह ठीक है कि आज खड़ी बोली ही सम्पूर्ण हिन्दी भाषी प्रदेश में साहित्य-साधना, शिक्षा, व्यापार और अंशतः राजकाज की भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है मगर खड़ी बोली न तो एक बोली मात्र है और न हिन्दी भाषा की अन्य उपभाषाओं की प्रकृति से भिन्न है। सच पूछा जाय तो खड़ी बोली का अर्थ-विस्तार हुआ है और वह अपने आप में हिन्दी शब्द की व्याप्ति रखती है। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक में इसके लिए परिनिष्ठित हिन्दी शब्द का प्रयोग किया है। इसके बदले हम यों कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा के विकास की कई अवस्थाएं हैं और उन अवस्थाओं में साहित्य लेखन के कार्य में हिन्दी की एकाधिक उपभाषाएँ प्रयुक्त होती रही हैं। उदाहरणार्थ मध्यकाल में हिन्दी के ब्रज और अवधी रूपों में विशिष्ट परिस्थितियों के कारण साहित्य लेखन हुआ और आधुनिक काल में खड़ी बोली में साहित्य लिखा जा रहा है। अतः प्रधानता हिन्दी शब्द की है, उसके रूपों की नहीं। ब्रज, अवधी या खड़ी बोली रूपों को भाषा के अर्थ में घसीटना हिन्दी की भाषागत मूल प्रकृति और अखंडता को भंग करना है। हम हिन्दी शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में मान्य समझते हैं जिस अर्थ का संकेत ऊपर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के उद्धरण में दिया गया है।

हिन्दी के विकास पर धर्म और राजनीति का प्रभाव

इतिहास का साक्ष्य और भाषा-विज्ञान का नियम है कि भाषा के विकास पर धर्म, राजनीति आदि का व्यापक प्रभाव पड़ता है। निश्चय ही वह भाषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौभाग्यशालिनी होती है जिसे धर्म का आश्रय प्राप्त होता है या जो शासकों की लाड़िली बन पाती है। किन्तु, इस दृष्टि से हमारी हिन्दी सर्वाधिक दुर्भाग्य-शालिनी है। धर्म और राजनीति ने सदा इसके भाग्य से खिलवाड़ किया है और आज भी कर रही है।

हिन्दी का इतिहास सच पूछा जाय तो संघर्षों और अवरोधों का इतिहास है। हमें गौरव होना चाहिए कि हिन्दी ने अपना स्वत्व अपनी योग्यता, क्षमता और सजीवनी शक्ति के बल पर प्राप्त किया है किसी की लाड़ली बनकर नहीं। हिन्दी अवरोधों में विकसित हुई है, संघर्षों में पली है और घृणा तथा षड्यंत्रों से प्रेरणा प्राप्त कर आगे बढ़ी है। आरम्भ में अंग्रेजों की विद्वेष नीति का शिकार बनी, बाद में मुसलमानों की कट्टर धार्मिकता का कोप-भाजन बनी और स्वतंत्रता के उपरान्त अपनी कही जाने वाले कांग्रेस के शासन की छाया में बंगालियों, मद्रासियों और अंग्रेजी-परस्त भारतीयों की घृणा और विरोध की पात्री आज तक बनी हुई है। किसी भी देश की राज-भाषा को इतनी दुर्गति नहीं उठानी पड़ी होगी।

ऊपर देखा गया है कि किस प्रकार हिन्दी का अस्तित्व उर्दू, हिन्दुस्तानी, रेख्ता, हिन्दुवी, दखिनी आदि के बीच डोलता रहा है। अंग्रेज शासकों ने पहली बार हिन्दी को उर्दू से पृथक किया, फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में। इस विलगाव का उद्देश्य हिन्दी के स्वतंत्र अस्तित्व को महत्व देना नहीं था बल्कि हिन्दी-उर्दू की पृथकता द्वारा विद्वेष का बीज बोना था। अंग्रेजों ने सदा ही इसे हेय दृष्टि से देखा। डॉ० उदय नारायण तिवारी कहते हैं—"हिन्दुस्तानी का उर्दू अर्थ प्रचलित करने में एंग्लो-इंडियन लोगों तथा यूरोप के लोगों का विशेष हाथ था। आगे चलकर तो हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू को इतना बढ़ावा दिया गया और हिन्दी-उर्दू विवाद को इतना विस्तृत बना दिया गया कि एक ही भाषा की दो शैलियों में समन्वय की गुंजायश ही नहीं रह गई। इसमें गहरी राजनीतिक चाल थी। यद्यपि कांग्रेस का जन्म सन् १८८५ ई० में हुआ किन्तु इसके पूर्व ही दूरदर्शी अंग्रेजों ने भारतीय नवजागरण को स्पष्ट रूप से देख लिया था और वे इस तथ्य को समझ गये थे कि भविष्य में राष्ट्रीयता की बाढ़ को रोकना असम्भव होगा। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि इसका प्रतिकार केवल हिन्दू-मुसलमान के विद्वेष से ही हो सकता है।"[१]

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मुसलमान शासकों के जमाने में अरबी-फारसी इस देश की राजभाषा थी। जनभाषा हिन्दी के सक्षम और उन्नत होते हुए भी विदेशी शासकों ने अरबी-फारसी को ही राजभाषा बनाया। फलतः हिन्दी को अपने अधिकार से वंचित रह जाना पड़ा। हिन्दुस्तानी में अरबी-फारसी की प्रचुरता लाकर उर्दू का विकास किया गया और हिन्दी पीछे छूट गयी। अंग्रेजों ने अपनी शिक्षण संस्थाओं में उर्दू को प्रश्रय दिया और कचहरियों में अरबी-फारसी का हीं प्रचलन रहने दिया। फलतः अंग्रेजों के द्वारा भी हिन्दी को उसका प्राप्य नहीं मिला।

जब स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो उसकी फैलती लपटों के साथ हिन्दी राष्ट्रीयता का अनिवार्य अंग बनने लगी। इधर उत्तरी भारत में भी हिन्दी को महत्व दिलाने के लिए आन्दोलन चला और इस क्षेत्र में पूज्य मदन मोहन मालवीय और अयोध्या प्रसाद खत्री ने जो कार्य किया वह स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है! उन्हीं के प्रयत्नों से वैकल्पिक रूप से सरकारी कार्यालयों और कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश हुआ।

हिन्दी के प्रश्न को स्वराज्य की तरह महत्वपूर्ण मानने वाले गाँधी जी के आने से हिन्दी के आन्दोलन को बहुत बल मिला। गाँधीजी दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए और दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा की नींव पड़ी।

कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में टंडन जी ने कार्यवाही हिन्दुस्तानी में करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। हिन्दी के प्रचार-प्रसार को द्वेष की दृष्टि से देखने वाले मुसलमानों ने हिन्दी के समानान्तर उर्दू के प्रचार-प्रसार का प्रयत्न किया। गांधीजी ने इसे फूट का लक्षण समझ कर हिन्दी-हिन्दुस्तानी नाम पसन्द किया मगर बाद में उन्हें हिन्दुस्तानी नाम स्वीकार करना पड़ा। हिन्दी भाषियों की आलोचना सहकर भी वे अपने पक्ष पर डटे रहे और हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का पोषण करते रहे। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद पाकिस्तान बनने के साथ यह साम्प्रदायिक विद्वेष समाप्त हो गया और डॉ० कामेश्वर शर्मा के शब्दों में "हिन्दुस्तानी के नाम पर कोई रोनेवाला भी न रहा।"[१]

स्वतन्त्रता के बाद संवैधानिक रूप में हिन्दी राजभाषा बनी और उसे पन्द्रह वर्षों की अवधि दी गयी जिसमें वह सरकारी काम-काज से अंग्रेजी को

१. हिन्दी की समस्याएँ, पृ० ९०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विस्थापित कर अपना स्थान ग्रहण कर ले। किन्तु, अंग्रेजों के जाने के बाद उनकी दत्तक सन्तानों के षड्यन्त्र से हिन्दी पन्द्रह क्या पच्चीस वर्षों के बाद भी अपना स्थान न ले सकी है और आगे कब तक लेगी यह अनिश्चित ही है।

इसी बीच हिन्दी के विरोध में बंगालियों के प्रदर्शन और मद्रासियों के आत्मदाह तथा अंग्रेजी भक्तों के नाटकीय व्यापारों ने जो कुछ किया उसके स्मरण मात्र से सिर नीचा हो जाता है।

अभी भी हिन्दी को उर्दू और अंग्रेजी से उतना ही खतरा है जितना पहले था। अल्पसंख्यक के नाम पर बहुसंख्यक को दबानेवाले कांग्रेसी प्रजातन्त्र ने हिन्दी के विकास के लिए कोई ठोस कार्य नहीं किया। अपनी नपुंसक नीति के कारण कांग्रेसी सरकार ने भाषा नीति को इतना जटिल बना दिया है कि वह इस शताब्दी के अन्त तक भी सुलझ सकेगी या नहीं इसमें सन्देह है। कुछ वर्ष पूर्व सूचना एवं प्रसारण मन्त्री श्री रेड्डी ने पुनः हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू को रेडियो स्टेशन की हिन्दी में स्थान देने का षड्यन्त्र किया था जो सफल नहीं हो सका। इस प्रकार हम स्पष्ट देख सकते हैं कि मुसलमान, अंग्रेज और कांग्रेस हिन्दी के तीन प्रबल विरोधी रहे हैं। और इन विरोधों के बीच ही हिन्दी विकसित हुई है और होगी। प्रो० देवेन्द्र नाथ शर्मा ने ठीक ही कहा कि "हिन्दी अपने बल पर विकसित हुई है किसी की अनुकम्पा के द्वारा नहीं।'[१]

हिन्दी विरोधी इन धार्मिक, राजनीतिक और रोटीवादी नारों की ओर जब हमारा ध्यान जाता है तो मन क्षोभ से भर जाता है। फिर भी यह हमारी उदारता और शालीनता है कि हम हिन्दी-भाषी सक्रिय विरोध का अस्त्र नहीं ग्रहण करते। हम तो यह भी चाहते हैं कि कोई अन्य भारतीय भाषा राष्ट्र-भाषा बने और अंग्रेजी को अपदस्थ कर दे। वैसे भी हम समय की प्रतीक्षा में आस्थावान् हैं कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा समस्या का विकल्पहीन माध्यम बनेगी। यदि हम आजादी के लिए नब्बे वर्षों तक संघर्ष कर सकते हैं तो हिन्दी के लिए पच्चीस वर्षों में ही क्यों निराश हो जायँ![२]

---

१. राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान, पृ० २०३

२. साहित्य-परिचय के भाषा-समस्या विशेषांक में लेखक का निबन्ध, पृ० ५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय प्रकरण

भारतीय आर्य भाषाओं का विकास और हिन्दी

वर्त्तमान भारतीय भाषाओं के मध्य हिन्दी की स्थिति को समझने के लिए आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय ही नहीं बल्कि समग्र भारतीय आर्य-भाषा परम्परा का सुश्रृंखलित ज्ञान भी आवश्यक है।

भाषा के पारिवारिक आधार की दृष्टि से भारत में दो मुख्य भाषा-परिवारों की सत्ता है। (१) द्रविड़ परिवार और (२) आर्य-भाषा परिवार। द्रविड़ परिवार के अन्तर्गत तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम् आदि दक्षिण भारत की भाषाएँ आती हैं। इन भाषाओं में अधिकांश साहित्यिक समृद्धि से युक्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली हैं।

दूसरा परिवार आर्य-भाषाओं का है। इसके अन्तर्गत हिन्दी, मराठी, गुजराती, पजाबी, बंगला आदि भाषाएँ आती हैं।

चूँकि इस परिवार की भाषाओं का भारत में विकास आर्यों के आगमन के साथ हुआ इसलिए इन्हें आर्य-भाषा कहते हैं। भारतीय आर्य-भाषा का सम्बन्ध भारोपीय भाषा-परिवार से है जिसकी योरोपीय तथा इरानी दो अन्य शाखाएँ भी हैं। इन सबका विवेचन भाषा-विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बद्ध है अतः इनकी यहाँ चर्चा अनपेक्षित है। मेरा प्रयोजन केवल भारत में आने के बाद से लेकर अब तक की स्थिति में आर्य-भाषा के विकास की गति-विधि पर प्रकाश डालना है।

भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास का विवेचन इतना सरल नहीं है जितना समझा जाता है। इस पर विचार करते समय दो बातें ध्यातव्य हैं। प्रथम यह कि आर्य-भाषा के विकास की समस्या न केवल आर्यों के आगमन की घटना के साथ जुड़ी हुई है बल्कि तत्कालीन भारतीय आर्येतर जातियों के अस्तित्व के साथ भी सम्बद्ध है। द्वितीय, यह धारणा नितान्त भ्रामक है कि आर्यभाषाओं का विकास क्रमशः पूर्व प्रयुक्त वृहत्तर भारोपीय भाषाओं के विघटन के क्रम में हुआ है। इसलिए यह आवश्यक है कि भाषा-विकास की मूल चेतना को ध्यान में रखते हुए इस विषय पर विचार किया जाय। भाषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के विकास पर राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह ठीक है कि विजयी जाति की भाषा प्रमुखता प्राप्त करती है मगर यह भी सत्य है कि पराजित जाति की भाषा-संस्कृति भी विजयी जाति की भाषा-संस्कृति को प्रभावित करती है। भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में श्री शमशेर सिंह नरूला का मत अत्यन्त उपयुक्त और वैज्ञानिक प्रतीत होता है कि 'भाषा अपने विशिष्ट बुनियादी शब्द-समूहों और व्याकरण पर स्थापित होकर युग-युगान्तर उन्नति की ओर अग्रसर होती रहती है और समाज के उत्पादी संभार की वृद्धि के साथ-साथ परिपूर्ण होती रहती है। उसमें अगोचर रूप से क्रमशः नवीन तत्त्वों का समावेश और उसी के साथ प्राचीन तत्त्वों का निराकरण होता रहता है। भाषाओं में संघर्ष उन्हें बोलनेवाली विभिन्न जातियों में संघर्ष के विपरीत कई शताब्दियों तक संकरण की दीर्घण क्रिया के रूप में चलता रहता है। विजयी भाषा अपने व्याकरण के चौखटे और बुनियादी शब्दसमूह को अक्षुण्ण रखती है किन्तु साथ-साथ पराजित भाषाओं के प्रबल तत्वों को ग्रहण कर थोड़ा-बहुत परिवर्तित भी हो जाती है।''[१]

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतीय आर्य-भाषा के विकास को तीन वर्गों में बांटा जाता है—(१) प्राचीन काल, (२) मध्यकाल और (३) आधुनिक काल।

प्राचीन काल के अन्तर्गत वैदिक और संस्कृत भाषा का विवेचन होता है। मध्यकाल के अन्तर्गत पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का तथा आधुनिक काल के अन्तर्गत हिन्दी आदि आधुनिक आर्य-भाषाओं का।

अब यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि भारत में आर्यों का आगमन लगभग एक हजार वर्षों तक शनैः शनैः होता रहा। ऐसी परिस्थिति में कालगत व्यवधान के कारण निश्चय ही इन सब आर्यों को एक भाषा-भाषी मानना असंगत है। वैदिक साहित्य में प्राप्त भाषागत विविधता से यह स्पष्ट है कि थोड़ी-बहुत समानता के बावजूद आर्य भिन्न भाषा-भाषी थे। टी० बर्रो ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑव दी संस्कृत लैंग्वेज' में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि प्राचीन आर्य भाषा के पर्यायवाची रूप में संस्कृत का प्रयोग समीचीन नहीं है। क्योंकि उन बोलियों, जिनपर संस्कृत आधारित थी, के अतिरिक्त भी आर्यों की कई और बोलियाँ थीं। इसलिए भारतीय आर्य-भाषा शब्द का प्रयोग आदि की समस्त भाषाओं के लिए किया जाना चाहिए।

---

१. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० २३-२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसी परिस्थिति में हमें आद्य भाषा के रूप में एक भाषा की नहीं बल्कि भाषा-समूह की सत्ता स्वीकार करनी होगी। ऐसे भाषा-समूह में से ही अपने प्रभुत्व के कारण एकाधिक भाषाओं के सम्मिलन से जो अपभाषाएँ या वर्ग-भाषाएँ अस्तित्व में आईं उन्हीं का इतिहास हमें प्राप्त होता है। संस्कृत, प्राकृत आदि ऐसी ही अपभाषाएँ हैं।

संस्कृत कृत्रिम रूप से संघटित अपभाषा है या जन-भाषा, इस सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी मत हैं। ए० बी० कीथ, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ० प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती आदि विद्वान यह मानते हैं कि संस्कृत उच्च श्रेणी के पठित समाज की सामान्य बोलचाल की भाषा थी। दूसरी ओर शमशेर सिंह नरूला का मत है कि "वास्तव में व्याकरण एवं ध्वनि के इतने जटिल नियमों द्वारा जकड़ी हुई कोई भाषा बोलचाल की भाषा हो ही नहीं सकती और न ही वह किसी की मातृभाषा हो सकती है, बेशक वह कितना ही विद्वान क्यों न हो।"[१]

इन दोनों ही मतों में अतिवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। मेरी अपनी धारणा है कि बिना मातृभाषा के अस्तित्व के किसी अपभाषा का जन्म नहीं हो सकता। मातृभाषा ही जब प्रमुखता प्राप्त होने के कारण काम-काज और साहित्य-रचना की भाषा होने लगती है तब अनिवार्यतः उसका रूप परिनिष्ठित व्याकरण-व्यवस्थित और प्रयोग-स्थिर होने लगता है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि वह भाषा बिना सीखे मातृभाषा की तरह नहीं बोली जा सकती है। हिन्दी के उदाहरण से ही यह बात बड़ी सहजतापूर्वक सिद्ध की जा सकती है। यह सर्वविदित है कि हिन्दी गढ़ी हुई भाषा नहीं है। मगर आज वह किसी की मातृभाषा भी नहीं है। हिन्दी क्षेत्र में मातृभाषा के रूप जहाँ ब्रज, अवधी, कन्नौजी, बुंदेली, अंगिका, वज्जिका, भोजपुरी, मैथिली आदि बोली जाती है वहीं शेष कार्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग होता है। इस हिन्दी को सीखना पड़ता है और सभी लोग सामान्यतः शुद्धतापूर्वक नहीं बोल पाते हैं।

आरम्भिक युग में संस्कृत के साथ ठीक यही स्थिति रही होगी। एकाधिक, बोलियों के योग से यह भाषा जब प्रमुख हो गयी तो इसमें वैदिक मन्त्रों की अभिव्यक्ति होने लगी। परिणामतः यह सामान्य व्यवहार से क्रमशः दूर

१. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० २८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती गई और अन्त में जनभाषा से पृथक होकर जड़ हो गई, जबकि जनभाषा अपनी राह बढ़ती रही।

पाणिनि ने जब प्रचलित जनभाषा एवं वैदिक साहित्यिक भाषा दोनों को दृष्टि-पथ में रखते हुए सामयिक प्रयोगों के आधार पर उसका व्याकरण स्थिर कर संस्कार किया तो वही संस्कार की हुई भाषा संस्कृत कहलाने लगी। अतः संस्कृत में वैदिक भाषा के उन्हीं तत्वों को ग्रहण किया गया जो आवश्यक थे और उनका योग तत्कालीन जनभाषा के विकासवान रूपों के साथ किया गया।

जिस प्रकार लक्ष्य ग्रन्थों की रचना के बाद ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण होता है और बाद में लक्षण ग्रन्थ के आधार पर लक्ष्य ग्रन्थ लिखे जाने लगते हैं उसी प्रकार पहले भाषा का विकास होता है तब व्याकरण बनते हैं। भाषा को निगमनात्मक विधि से नियमबद्ध कर व्याकरण तैयार करना एक बात है और कृत्रिम भाषा गढ़ना दूसरी बात। संस्कृत क्या कोई भी भाषा गढ़ी हुई और कृत्रिम नहीं है। अपने प्रभुत्व और उत्थान के युग में प्रत्येक भाषा व्याकरण की मांग करती है और व्याकरण के बाद वह इस प्रकार जड़ हो जाती है कि उसका व्यक्तित्व जनभाषा से अलग नदी के द्वीप की तरह पृथक भासित हो जाता है।

आगे चलकर यह जनभाषा पुनः किसी कारण से उत्थान को प्राप्त करती है तो फिर व्याकरण की मांग करती है और पूर्ववर्त्ती परिनिष्ठित भाषा के व्याकरणिक ढांचों और उस भाषा की निजी नवीनतम प्रवृत्तियों के योग से एक नई परिनिष्ठित भाषा का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पहली साहित्यिक भाषा को अवरुद्ध अथवा अपदस्थ कर दूसरी भाषा प्रधान हो जाती है। स्थान-भेद से एक समय में उस एक भाषा के ही कई भेद प्रमुख रह सकते हैं। यही भाषा के विकास का प्रकृत पथ है। डॉ० चन्द्रभान रावत की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत हैं :—"भाषा आरम्भ में सजीव जन-स्रोतों से अपना रूप संवारती है और कालान्तर में साहित्य-व्याकरण-रूढ़ हो जाती है। जन-भाषा विकास-पथ पर रुकती नहीं। यह कहना कि किसी रूढ़ भाषा से आगे की भाषा उत्पन्न हुई कुछ भ्रमपूर्ण लगता है।"[1]

चित्र द्वारा भाषा-विकास की इस प्रकृति को इस रूप में समझा जा सकता है—

---

१. हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण, पृ० ७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यगत विकास की संभावनाएँ

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा एव व्याकरण के तत्त्व + प्राकृत भाषा एवं व्याकरण के तत्त्व + अपभ्रंश भाषा एवं व्याकरण के तत्त्व + समानान्तर विकसित जनभाषाओं के तत्त्व + विदेशी भाषाओं के प्रभाव = आधुनिक आर्य भाषाओं का निर्माण एवं विकास ।

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का ढांचा + प्राकृत भाषाएँ एवं व्याकरण का ढांचा + समानान्तर विकसित जन भाषाओं के तत्त्व = अपभ्रंशों का निर्माण तथा विकास ।

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा तथा व्याकरण का ढांचा + समानान्तर विकसित जन भाषाओं के तत्त्व = प्राकृतों का निर्माण तथा विकास ।

वैदिक भाषा तथा व्याकरण का ढांचा + समानांतर विकसित जनभाषाओं के तत्त्व = सस्कृत भाषा का निर्माण तथा विकास ।

एकाधिक भाषाओं के योग से वैदिक भाषा का निर्माण और विकास ।

आदि जन-भाषा-समूह

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती गई और अन्त में जनभाषा से पृथक होकर जड़ हो गई, जबकि जनभाषा अपनी राह बढ़ती रही।

पाणिनि ने जब प्रचलित जनभाषा एवं वैदिक साहित्यिक भाषा दोनों को दृष्टि-पथ में रखते हुए सामयिक प्रयोगों के आधार पर उसका व्याकरण स्थिर कर संस्कार किया तो वही संस्कार की हुई भाषा संस्कृत कहलाने लगी। अतः संस्कृत में वैदिक भाषा के उन्हीं तत्वों को ग्रहण किया गया जो आवश्यक थे और उनका योग तत्कालीन जनभाषा के विकासवान रूपों के साथ किया गया।

जिस प्रकार लक्ष्य ग्रन्थों की रचना के बाद ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण होता है और बाद में लक्षण ग्रन्थ के आधार पर लक्ष्य ग्रन्थ लिखे जाने लगते हैं उसी प्रकार पहले भाषा का विकास होता है तब व्याकरण बनते हैं। भाषा को निगमनात्मक विधि से नियमबद्ध कर व्याकरण तैयार करना एक बात है और कृत्रिम भाषा गढ़ना दूसरी बात। संस्कृत क्या कोई भी भाषा गढ़ी हुई और कृत्रिम नहीं है। अपने प्रभुत्व और उत्थान के युग में प्रत्येक भाषा व्याकरण की माँग करती है और व्याकरण के बाद वह इस प्रकार जड़ हो जाती है कि उसका व्यक्तित्व जनभाषा से अलग नदी के द्वीप की तरह पृथक भासित हो जाता है।

आगे चलकर यह जनभाषा पुनः किसी कारण से उत्थान को प्राप्त करती है तो फिर व्याकरण की माँग करती है और पूर्ववर्त्ती परिनिष्ठित भाषा के व्याकरणिक ढाँचों और उस भाषा की निजी नवीनतम प्रवृत्तियों के योग से एक नई परिनिष्ठित भाषा का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पहली साहित्यिक भाषा को अवरुद्ध अथवा अपदस्थ कर दूसरी भाषा प्रधान हो जाती है। स्थान-भेद से एक समय में उस एक भाषा के ही कई भेद प्रमुख रह सकते हैं। यही भाषा के विकास का प्रकृत पथ है। डॉ० चन्द्रभान रावत की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत हैं :—"भाषा आरम्भ में सजीव जन-स्रोतों से अपना रूप सँवारती है और कालान्तर में साहित्य-व्याकरण-रूढ़ हो जाती है। जन-भाषा विकास-पथ पर रुकती नहीं। यह कहना कि किसी रूढ़ भाषा से आगे की भाषा उत्पन्न हुई कुछ भ्रमपूर्ण लगता है।"[१]

चित्र द्वारा भाषा-विकास की इस प्रकृति को इस रूप में समझा जा सकता है—

१. हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण, पृ० ७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यगत विकास की संभावनाएँ

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा एव व्याकरण के तत्त्व + प्राकृत भाषा एवं व्याकरण के तत्त्व + अपभ्रंश भाषा एवं व्याकरण के तत्त्व + समानान्तर विकसित जनभाषाओं के तत्त्व + विदेशी भाषाओं के प्रभाव = आधुनिक आर्य भाषाओं का निर्माण एवं विकास ।

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का ढाँचा + प्राकृत भाषाएँ एवं व्याकरण का ढाँचा + समानान्तर विकसित जन भाषाओं के तत्त्व = अपभ्रंशों का निर्माण तथा विकास ।

स्थानीय विभेद +

संस्कृत भाषा तथा व्याकरण का ढांचा + समानान्तर विकसित जन भाषाओं के तत्त्व = प्राकृतों का निर्माण तथा विकास ।

वैदिक भाषा तथा व्याकरण का ढाँचा + समानांतर विकसित जनभाषाओं के तत्त्व = सस्कृत भाषा का निर्माण तथा विकास ।

एकाधिक भाषाओं के योग से वैदिक भाषा का निर्माण और विकास ।

आदि जन-भाषा-समूह

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

जनभाषाओं का समानान्तर विकास तथा संघटन-विघटन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिप्राय यह है कि जन-भाषा-समूहों का विकास उसी प्रकार अबाध एवं अप्रतिहत रूप में होता रहता है जिस प्रकार गंगा का धारा-प्रवाह। समय-समय पर उसमें से एकाधिक भाषा-नहरें निकलती हैं जो जल प्राप्त तो करती हैं उसी मूल धारा से मगर उनका अपना विकास अवरुद्ध रहता है। आठ-दस आधुनिक आर्य भाषाओं के अतिरिक्त जो सैकड़ों उपभाषाएँ या बोलियाँ विभिन्न आर्य-भाषा-भाषी क्षेत्रों में बोली जाती हैं उनसे भी यह प्रमाणित हो जाता है कि आदि-भाषा समूह की ही कल्पना समीचीन है और विकास के युगों में भी एक ही जन भाषा नहीं रहती है बल्कि भाषा-समूहों की सत्ता रहती है। उनमें से किसकी प्रधानता किस युग में हो जायगी यह राजनीतिक प्रभुत्व, धार्मिक महत्त्व, साहित्यिक प्रतिष्ठा आदि कारणों पर निर्भर करती है। जब कोई भाषा प्रधान होती है तो स्वभावतः अनेक अन्य दुर्बल भाषाओं को आत्मसात कर लेती है और उनकी विशेषताओं से अपने को सम्पुष्ट कर समृद्ध बनती है।

भाषा-विकास के प्रकृत पथ के अनुसंधान के पश्चात् हम उन आर्य भाषाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे जो इस विकास-क्रम में प्रमुख रही हैं।

वैदिक भाषा—वेदों की भाषा बोलचाल की भाषा से पृथक आर्यों की पहली साहित्यिक भाषा है। ऋग्वेद में बोलचाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप के दर्शन होते हैं। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में भाषागत एकरूपता का अभाव है। भिन्न-भिन्न देश-कालों में रचित होने और एक बार संकलित होने के कारण यह तत्व ऋग्वेद में भले ही बहुत स्पष्ट न हो मगर वेदों से ब्राह्मणों में, ब्राह्मणों से आरण्यकों एवं उपनिषदों में यह भाषा-भेद अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होता है। तात्पर्य यह कि वैदिक वाङ्मय की भाषा में साहित्यिक व्याकरणिक परिनिष्ठता का क्रमशः विकास और आधार भूत बोलियों के तत्त्वों का परिष्कार होता रहा है। इतिहास की दृष्टि से इस वैदिक भाषा का काल ई० पूर्व पन्द्रह सौ से ई० पूर्व आठ सौ अर्थात् पाणिनि के काल तक का है। इसे छन्दस् या वैदिक संस्कृत या प्राचीन संस्कृत नाम से भी पुकारा जाता है।

वैदिक भाषा में नौ मूल स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ, आ, ई, ऊ, ॠ) तथा चार संयुक्त स्वर (ए, ओ, ऐ, औ) प्राप्त होते हैं। वैदिक भाषा स्वराघात प्रधान है। इसमें शब्दों के उच्चारण की शुद्धता-अशुद्धता का मानदंड स्वरों के आरोह-अवरोह को माना गया।[१] व्यंजन ध्वनियों में (क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म) ये पच्चीस स्पर्श

१. स्वराघात विषयक विशेष विवरण के लिए देखिए, पृ० ४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वनियाँ, य, र, ल, व चार अर्धस्वर ध्वनियाँ, श, ष, स तीन उष्म ध्वनियाँ, एक महाप्राण ह, एक अनुस्वार ं तथा तीन अघोष ध्वनियाँ : विसर्जनीय (:) जिह्वामूलीय ᳵ और उपध्मानीय (ᳶ) कुल सैंतीस व्यंजन थे। इसके अतिरिक्त ळ और ळ्ह् ध्वनियाँ भी थीं जिन्हें ड़ ढ़ का वाची कहा जा सकता है। मूल भारोपीय भाषा से वैदिक व्यंजनों की भिन्नता इस अर्थ में है कि इसमें ट- वर्गीय ध्वनियों का आगमन द्रविड़ भाषा परिवार के प्रभावस्वरूप हुआ है।

वैदिक भाषा के शब्द कहीं तो स्वरान्त हैं और कहीं व्यंजनान्त। इस आधार पर इसके शब्द दो वर्गों में विभक्त हैं। अजन्त और हलन्त। व्याकरण की दृष्टि से इसमें तीन लिंग (स्त्री०, पु०, नपु०) तीन वचन (एक, द्वि०, बहु) और आठ कारक हैं। आकृति की दृष्टि से वैदिक संयोगात्मक भाषा है और शब्दों में विभक्तियाँ जोड़कर उन्हें प्रयोग-योग्य बनाया जाता है।

इस प्रकार संयोगात्मकता, स्वराघात और द्रविड़ प्रभाव से ट-वर्ग का ग्रहण ये तीन मुख्य विशेषताएँ वैदिक भाषा की हैं।

संस्कृत:— इसे वैदिक संस्कृत की तुलना में लौकिक संस्कृत कहा जाता है। भाषा के अर्थ में संस्कृत का अर्थ होता है—संस्कार की हुई भाषा। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने ई० पूर्व आठ सौ के आसपास अपने समय के शिष्ट समाज में व्यवहृत भाषा को आदर्श मानकर अपने व्याकरण की रचना की। उन्होंने वैदिक भाषा को छन्दस् नाम दिया और अपने व्याकरण में विवेचित भाषा को लोक प्रचलित भाषा कहा।

इसका अभिप्राय यह समझा जा सकता है कि पाणिनि ने छन्दस् की भाषा की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए अपने समय में शिष्ट जनों के बीच प्रचलित सामान्य बोलचाल की भाषा को ही व्यवस्थित और व्याकरण-निबद्ध करने की चेष्टा की। इस अनुमान का सबसे प्रधान आधार पाणिनीय संस्कृत की वैदिक भाषा से भिन्नता है। संस्कृत और वैदिक की परस्पर भिन्नता का थोड़ा संकेत अनुपयुक्त न होगा।

(१) वैदिक की तुलना में लौकिक संस्कृत में स्वरों की संख्या सीमित है।
(२) वैदिक भाषा स्वराघात प्रधान थी जब कि लौकिक संस्कृत बलाघात प्रधान भाषा हो गई।
(३) वैदिक ऋ, ॠ और ऌ लेखन में तो रहे मगर बोलने में इनका उच्चारण परिवर्तित हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) वैदिक संस्कृत में व्यंजनान्त शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता है जब कि संस्कृत में मिलता है।

(५) ए, ओ वैदिक भाषा में सयुक्त स्वर थे, संस्कृत में मूल स्वर हो गये।

(६) वैदिक संस्कृत में स्वरभक्ति से युक्त रूप मिलते हैं मगर संस्कृत में ये रूप नहीं हैं।

(७) कुछ ध्वनियों का उच्चारण-स्थान भी लौकिक संस्कृत में परिवर्तित हुआ। जैसे दन्तमूलीय ल संस्कृत में लगभग मूर्द्धन्य हो गया।

इस प्रकार कालगत व्यवधान के कारण विकसित होनेवाली भाषा-प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर पाणिनि द्वारा भाषा का संस्कार किया गया। किन्तु, इस संस्कार के कारण संस्कृत विकासहीन बन गई, जिसका प्रयोग लोक-जीवन से हटकर केवल साहित्य तक ही रह गया। किन्तु भाषा का लोकसम्मत रूप अपनी अजस्रता में प्रवाहित होता रहा। इस प्रवाह में स्थानिक भिन्नता और नवीन प्रवृत्तियों का समावेश तो हुआ ही उसे साहित्यिक-व्याकरणिक आधार भी प्राप्त हो गया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के विकास का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ जिसे मध्य युग या प्राकृत-युग कहते हैं।

प्राकृत-युग—प्राकृत युग की मोटा-मोटी समय-सीमा ई० पूर्व पाँच सौ से लेकर एक हजार ई० तक मानी गई है। इस काल के तीन उपवर्ग किए गए हैं।

(१) आदि प्राकृत-काल (५०० ई० पूर्व से १ ई० तक)। इसके अन्तर्गत मुख्यतः पालि और शिलालेखों की प्राकृत भाषाएँ आती हैं।

(२) मध्य प्राकृत-काल (१ ई० से ५०० ई० तक) इसके अन्तर्गत प्राकृत भाषाएँ आती हैं।

(३) तृतीय प्राकृत-काल (सन् ५०० ई० से १००० ई० तक) इसके अन्तर्गत अपभ्रंश भाषाएँ आती हैं।

इन तीन कालों की भाषाओं पर विचार करने के पूर्व प्राकृत शब्द पर विचार आवश्यक है।

यह आज तक विवादास्पद है कि प्राकृत से क्या समझा जाय। इस सम्बन्ध में दो मत हैं। पहला मत उन संस्कृतज्ञों अथवा वररुचि, मार्कण्डेय आदि प्राकृत वैयाकरणों का है जो प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानते हैं। मार्कण्डेय कहते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं—प्रकृतिः संस्कृतां तत्र भवं प्राकृत मुच्यते । अर्थात् संस्कृत प्रकृति या मूल है और उससे उत्पन्न भाषा को प्राकृत कहते हैं । स्वयं हेमचन्द्र का कथन है—प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् । अर्थात् प्रकृति संस्कृत से जो आई है वह प्राकृत है । मगर दूसरा मत ठीक इसके विपरीत है । नमिसाधु कहते हैं—प्राकृतेति सकल जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहृत संस्कारः सहजो वचन व्यापारः प्रकृतिः प्रकृति तत्र भवः सेव वा प्राकृतम् ।" अर्थात् प्राकृत मूल अर्थात् प्रकृत भाषा है और इसीलिए वह प्राकृत कहलाती है । गउडवहो में वाक्पतिराज कहते हैं कि जिस प्रकार सागर से जल निकलता है और फिर उसी में प्रवेश करता है उसी प्रकार सभी भाषाएँ प्राकृत से निःसृत और फिर उसी में समाहित होती हैं ।

'सयलाओ इमं वाया विसंति एत्तो य णेंति वा याओ ।
एंति समुद्धं चिह णेंति सायराओ च्चिय जलाइं ॥"

इन परस्पर विरोधी मतों के बीच निर्णय करना कठिन है कि प्राकृत मूल है या संस्कृत । आधुनिक अनुसंधान के आलोक में कहा जा सकता है कि पाणिनि द्वारा सस्कार किए जाने पर भाषा का एक रूप तो जड़ हो गया मगर उसका लोकरूप प्रवाहित होता रहा । यही लोकरूप संस्कृत के समानान्तर प्रकृत या सहज या जनसामान्य की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण प्राकृत कहलाया । डॉ० उदय नारायण तिवारी कहते हैं—"प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृत (जनसाधारण) से है, अतः प्राकृत का अर्थ हुआ जनसाधारण की भाषा । शिष्ट समाज की भाषा संस्कृत से भेद प्रकट करने के लिए जनसामान्य की भाषा को प्राकृत संज्ञा दी गई ।"[1] प्रयोग की दृष्टि से भले ही प्राकृत संस्कृत की तुलना में अर्वाचीन है मगर उसका अभिप्राय संस्कृत के समानान्तर प्रयुक्त होनेवाली जनभाषा से ही है । आरम्भ में मैंने भाषा-विकास की जिस पद्धति का संकेत दिया है उससे भी इसकी पुष्टि होती है ।

किन्तु, इतना स्पष्ट है कि प्राकृत के उपर्युक्त विभिन्नकालिक रूपों अथवा स्थानगत भेदों में जनभाषा का तत्व शिथिल पड़ता गया और संस्कृत के व्याकरणिक ढांचों में भाषा की विकसित प्रवृत्तियों का समावेश करके एक ओर इनका व्याकरणिक रूप निर्मित किया गया और दूसरी ओर इन्हें साहित्यिक या धार्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम होने का गौरव प्राप्त हुआ । किन्तु, इस

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ११८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रवृत्ति के कारण ये भाषाएँ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश रूपों में जनभाषा से क्रमशः दूर हट-हटकर कृत्रिम बनती गईं।[१]

ऊपर हमने प्राकृत के तीन वर्ग किए हैं। यहाँ उनका क्रमशः परिचय दिया जाता है।

१. पालि—पालि के उत्थान का सम्बन्ध मूलतः बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव से है। गौतम बुद्ध ने लोकभाषा के जिस रूप में अपने उपदेश दिए उसी के लिए पालि का प्रयोग होता है।

पालि का प्रथम प्रयोग बौद्ध ग्रन्थ दीपवंस में मिलता है जो चौथी शताब्दी की रचना है। वहाँ उसका अर्थ है—बुद्ध-वचन। 'भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है।'[२] पालि शब्द की व्युत्पत्ति अनेक रूपों में दी गई है। उनमें मुख्य ये हैं :—

(१) इसका सम्बन्ध संस्कृत पंक्ति से है। पंक्ति >पन्ति >पट्ठि > पल्लि >पालि (विधुशेखर भट्टाचार्य)

(२) इसका सम्बन्ध प्राकृत से है। प्राकृत >पाकट >पाअड >पाअल > पालि (भंडारकर आदि)

(३) इसका सम्बन्ध सस्कृत (परियाय) से है। परियाय >पलियाय > पालियाय >पालि (भिक्षु जगदीश कश्यप)।

इनमें से भाषा का अर्थ कोई व्युत्पत्ति नहीं देती। इसलिए निश्चित रूप से इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। पालि के सम्बन्ध में अब यह स्पष्ट रूप से कहा जाने लगा है कि यह बोलचाल की भाषा नहीं थी बल्कि अनेक बोलियों के संश्लेष से अस्तित्व में आई थी। किन्तु इसका व्याकरणिक ढांचा किस बोली पर आधारित था, यह विवादास्पद है। परम्परागत धारणा यही है कि बुद्ध ने सर्वप्रथम मगध की जनभाषा मागधी में अपना

---

१. प्राकृत भाषाएँ जो अपने आदिम काल में जब वे बुद्ध और जैन धर्मों के साथ अस्तित्व में आईं, आम बोलचाल की भाषाएँ न होने पर भी उनके बहुत सन्निकट थीं। किन्तु यह नैकट्य क्रमशः कम होता गया और वे जनभाषाओं से दूर हटती-हटती धीरे-धीरे प्रामाणिक संस्कृत-सी कृत्रिम बन गईं।

—हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, शमशेर सिंह नरूला, पृ० ५७

२. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० ६२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपदेश दिया था अतः पालि का मूलाधार मागधी होना चाहिए। बुद्ध ने अपने को कोशल-खत्तिय कहा है, इस आधार पर राइस डेविस ने पालि को कोशल की भाषा माना है। गिरिनार के अशोकी शिलालेख की भाषा का पालि से अधिक नैकट्य होने के कारण वैस्टर गार्ड, फ्रैंक आदि मानते हैं कि वह उज्जैन की भाषा थी। सिल्वा लेवी तथा लूडर्स आदि ने यह मत व्यक्त किया है कि बुद्ध-वचन सर्वप्रथम मगध की किसी बोली में रचित हुए थे और पालि में उनका अनुवाद हुआ था। बाद में पालि अपने घर—मध्यदेश—से निकाल दी गयी। अब वह केवल विहारों और धर्मस्थानों की भाषा रह गई और दक्षिण के कांचीपुर तथा तंजौर जा पहुँची।[1]

उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि पालि मध्यदेश की ही कोई भाषा थी जिसमें मागधी से पर्याप्त अन्तर था। मेरा अनुमान है कि पालि बुद्ध की मातृभाषा थी और वह मगध में भी समझी जाती थी। यदि पालि मध्यदेश की भाषा थी तो मगध भी मध्यदेश की परिधि में ही आता है। एक जनपद की बोली का दूसरे पड़ोसी जनपद या राज्य में समझा जाना बहुत अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। सम्पर्क के कारण यह संभव है। आज भोजपुरी और मैथिली में प्रचुर पार्थक्य के बावजूद मैथिली भाषी भोजपुरी और भोजपुरी भाषी मैथिली समझ लेता है, वह उसे बोल भले ही न सके। कोशल और मगध के बुद्ध-कालीन संबंध अच्छे थे जिस कारण भाषा विनिमय के लिए प्रचुर अवकाश था। अजातशत्रु और विदूड़भ की मैत्री तथा दोनों का परस्पर सहायक बनकर वैशाली पर आक्रमण करना इसका प्रमाण है।

पालि वैदिक संस्कृत की भाँति विविध रूपोंवाली तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति की भाषा है फिर भी उसमें पर्याप्त सरलीकरण हुआ है। उसमें व्यंजनान्त प्रतिपदिकों का प्रायः अभाव है। सादृश्य के कारण अनेक भिन्न शब्दों के रूप एक हो गये हैं। पालि में द्विवचन की प्रायः विरलता है। व्याकरणिक ढांचा संस्कृत की तुलना में सरलीकरण की ओर झुका हुआ है।

२. प्राकृत—प्राकृत शब्द या प्राकृत भाषा से क्या अभिप्राय है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है : यहां इतना ही कहना है कि मध्यकालीन आर्यभाषा मूल प्रकृति की एकरूपता के बावजूद स्थान भेद से प्रभावित हुई और उसके अनेक भेद हो गए। आचार्यों ने विभिन्न आधारों पर प्राकृत के अनेक भेद किए हैं। भाषा-वैज्ञानिक स्तर पर शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी

१. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मागधी पांच भेद स्वीकार किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त पालि और प्राकृत के बीच के सन्धि-युग की प्राकृत भाषाओं जैसे अशोकी तथा अशोकेतर शिलालेखों-अभिलेखों की प्राकृत, निय-प्राकृत, खोतानी या धम्मपद की प्राकृत, अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत तथा मिश्रित बौद्ध-संस्कृत का भी उल्लेख किया जा सकता है। मगर इन प्राकृतों में अधिकांश उपर्युक्त प्राकृतों का प्राचीन रूप सिद्ध होते हैं अतः इनका अलग से उल्लेख अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ, अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत मागधी, शौरसेनी और अर्द्धमागधी का प्राचीन रूप है। अशोकी तथा अशोकेतर शिलालेखों के पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी-पश्चिमी, मध्यपूर्वी तथा पूर्वी भेदों के साथ भी यही स्थिति है। हाँ, खोतानी और निय प्राकृत अवश्य अलग से उल्लेख्य हैं। यहां हम उपर्युक्त पांच के अतिरिक्त इन दो अर्थात् सात प्राकृत रूपों की चर्चा करेंगे।

(१) शौरसेनी—यह शूरसेन प्रदेश (वर्तमान मथुरा और उसके आस-पास के क्षेत्र) की भाषा थी। संस्कृत प्रधान क्षेत्र की भाषा होने के कारण स्वभावतः इस पर संस्कृत का प्रभाव अधिक है। अवन्ती और आभीरी इसके अन्य स्थानीय रूप कहे गये हैं। ऋ का इ में विकास, क्ष का क्ख में विकास, संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति, संस्कृत की ओर झुकाव और केवल परस्मैपद धातुओं का प्रयोग शौरसेनी की मोटा-मोटी विशेषताएँ हैं।

(२) पैशाची— इसका क्षेत्र मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत है। कश्मीर के क्षेत्र में रहनेवाली पिशाच जाति की भाषा होने के कारण यह पैशाची कहलाती है। इसका साहित्य नहीं के बराबर है। घोष वर्णों का अघोष में परिवर्तित होने की सामान्य प्रवृत्ति, ष के स्थान पर श या स का प्रयोग, ण के स्थान पर न का प्रयोग इसकी सामान्य विशेषताएँ हैं।

(३) महाराष्ट्री— यह मूलतः महाराष्ट्र की भाषा थी। कोमलता इसका विशेष गुण है। दो स्वरों के बीच आने वाले अल्पप्राण स्पर्श व्यजनों का लोप, तथा महाप्राण स्पर्श व्यंजनों के स्थान में केवल हकार (अर्थात् महाप्राण का रह जाना) उष्म ध्वनियों का 'ह' में परिणत होना आदि इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

(४) मागधी— यह मगध की भाषा थी। गौड़ी, ढक्की, वाह्लीकी, शाबरी, चांडाली आदि इसकी सजातीय बोलियां थीं। स तथा ष के स्थान पर श का प्रयोग, र का ल में परिवर्तन, प्रथम एकवचन में विसर्ग के स्थान पर ए का प्रयोग इसकी मौलिक विशेषताएँ हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५) अर्द्धमागधी— यह मागधी और शोरसेनी के बीच वाले प्रदेश की भाषा थी। यह जैन साहित्य में प्रमुखता से प्रयुक्त हुई है। ष तथा श के स्थान में स का प्रयोग, चवर्ग के स्थान पर तवर्ग तथा दन्त्य के स्थान पर मूर्द्धन्य का प्रयोग, स्वरों के बीच के स्पर्श वर्ण के स्थान पर श्रुति (य) का प्रयोग इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं।

(६) निय प्राकृत—चीनी तुर्किस्तान के निय नामक स्थान में प्राप्त और खरोष्टी लिपि में लिखित तीसरी सदी की भाषा को निय स्थान के आधार पर निय प्राकृत कहते हैं। यह मूलतः पश्चिमोत्तरी प्राकृत पर आधारित भाषा है। दरद भाषा के एक रूप तोखारी के यह अधिक निकट है। ईरानी तथा मंगोली भाषाओं का भी इस पर प्रभाव है। ऋ का रि होना, स के प्रयोग की बहुलता के बावजूद श और ष का भी मिलना, नपुंसक लिंग का अभाव आदि इसकी विशेषताएँ हैं।

(७) खोतानी प्राकृत—खोतान प्रदेश में प्राप्त और खरोष्टी में लिखित धम्मपद की प्राकृत के लिए खोतानी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है। यह निय प्राकृत की अपेक्षा प्राचीन तथा संस्कृत प्रभावित भाषा है। निय प्राकृत की विशेषताओं से इसकी समानता है।

विभिन्न प्राकृतों में प्राप्त विशेषताओं को देख लेने के बाद संस्कृत की तुलना में सभी प्राकृतों की निम्नलिखित सामान्य विशेषताएँ कही जा सकती हैं—

(१) प्राकृत में व्यंजनान्त शब्द नहीं हैं।

(२) द्विवचन का प्रयोग नहीं मिलता है।

(३) न का ण में सामान्यतः प्रयोग मिलता है।

(४) संस्कृत योगात्मक भाषा थी जब कि प्राकृत की प्रकृति अयोगात्मकता की ओर है।

(५) प्राकृत में कृदन्त रूपों का प्रयोगाधिक्य मिलता है।

(६) कारक-रचना में विभक्तियों के स्थान पर स्वतंत्र शब्दों को जोड़ने की प्रवृत्ति चल पड़ी थी।

(७) ध्वनियों में अनेक प्रकार के नवीन परिवर्तन व्यापक पैमाने पर होने लगे थे। जैसे—अल्पप्राण स्पर्शो का महाप्राण में परिवर्तन, अघोष या घोष ध्वनियों का लोप, व्यंजनों की व्यापक पैमाने पर समाप्ति इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८) तत्सम के स्थान पर तद्भव रूपों का प्रयोग ।

(९) व्याकरणिक ढाँचे जैसे, काल, धातु, लिंग, वचन आदि में परिवर्त्तन और इस प्रकार संस्कृत की तुलना में सरलीकरण की सर्वतोमुखी प्रवृत्ति का विकास ।

(३) अपभ्रंश— आधुनिक आर्यभाषाओं के उदय के पूर्व आनेवाली संधिकालीन भाषाएँ जैसे अवहट्ठ आदि तथा तृतीय प्राकृत काल की भाषाओं की गणना अपभ्रंश में होती है। उपर्युक्त विकास-प्रक्रिया के अनुसार जब प्राकृत साहित्य-भाषा बनकर लोकभाषा से पृथक होकर जड़ हो गई तो भाषा के नैसर्गिक विकासवान रूप से परवर्त्तीकालीन अपभ्रंश का जन्म हुआ ।

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग व्याकरण में या शिष्ट प्रयोग की तुलना में विकृत शब्दों के लिए भरत के समय अर्थात् तीसरी सदी से ही मिलने लगता है। मगर भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रथम प्रयोग छठी शताब्दी में हेमचन्द्र द्वारा मिलता है। इसी सदी में भामह तथा वलभी नरेश द्वितीय धरसेन द्वारा भाषा के रूप में संस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत की तुलना में जनसामान्य की भाषा के शब्दों को अपभ्रष्ट या विभ्रष्ट कहा गया जो स्पष्ट ही जनभाषा के प्रति हीनतामूलक दृष्टिकोण था। किन्तु, बाद में चलकर इन अपभ्रष्टों की सत्ता ही प्रधान् हो गयी और तब उसे छठी शताब्दी के पूर्व की जनभाषा के अर्थ में स्वीकार कर लिया गया। डॉ० सरनाम सिंह शर्मा कहते हैं—प्राचीन पंडितों ने अपभ्रंश में जिस भ्रष्ट उच्चारण का खोट निकाला था, वास्तव में खोट नहीं है वह तो लोक भाषा की प्रकृति है। ... ... जिस प्रकार गोरे लोगों ने हमारी भाषा को वर्नाक्यूलर नाम से अभिहित किया था, उसी प्रकार उस समय के जातिवादी ब्राह्मणों ने साधारण जनभाषा को—लोकभाषा को—अपभ्रंश कहा था।[१] आगे चलकर वे अपभ्रंश शब्द के प्रयोग की व्याप्ति पर विचार करते हुए कहते हैं—"अपभ्रंश शब्द का प्रयोग देश विशेष या जाति विशेष की भाषा के लिए नहीं हुआ, बल्कि वैदिक और लौकिक संस्कृत का भ्रष्ट रूप, आर्ष प्राकृत या साधारण प्राकृत का भ्रष्ट रूप, मागधी का भ्रष्ट रूप, शौरसेनीका भ्रष्ट रूप अथवा भाषाओं का भ्रष्ट रूप—अपभ्रंश के भाव में समाविष्ट हो जाता है।"[२]

---

१. आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में अपभ्रंश तथा अन्य निबन्ध, पृ० ९

२. वही, पृ० १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तात्पर्य यह कि छन्दस, संस्कृत तथा प्राकृत की तुलना में जो शिष्टों के प्रयोग से भिन्न जनभाषा थी वह अपभ्रंश कहलाई।

अपभ्रंश के अनेक भेद माने गये हैं। नमिसाधु के अनुसार अपभ्रंश के उपनागर, आभीर और ग्राम्य तीन भेद हैं। मार्कण्डेय के अनुसार नागर, उपनागर और व्राचड तीन भेद हैं। पुरुषोत्तम के प्राकृतानुशासन में नागर, व्राचड, उपनागर, पाँचाल, ककेय, लाट, टक्क आदि अनेक भेदों का उल्लेख है। याकोबी ने पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी चार भेद किए हैं। डॉ० नामवर सिंह सिर्फ पूर्वी और पश्चिमी दो भेद मानते हैं।[1] डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी, केकय और व्राचड या पैशाची इन छः अपभ्रंशों का अस्तित्व तो हमें मानना ही पड़ेगा।[2]

अपभ्रंश के उपर्युक्त भेद स्थान पर आधृत हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राकृत के भेद। शौरसेनी का क्षेत्र उत्तर के पहाड़ी क्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रदेश का पश्चिमी भाग, राजस्थान तथा गुजरात था। महाराष्ट्री का क्षेत्र महाराष्ट्र था, मागधी बिहार, बंगाल, असम तथा उड़ीसा में बोली जाती थी। इसे पूर्वी अपभ्रंश भी कहते थे। व्राचड का क्षेत्र सिन्ध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों का कुछ भाग था। केकय का क्षेत्र प्राचीन केकय देश था जहां आजकाल पंजाब तथा कश्मीर और पहाड़ी प्रदेश का कुछ भाग है। मागधी तथा शौरसेनी के बीच अर्द्धमागधी बोली जाती थी।

भाषा की विकासात्मक प्रवृत्ति के अनुरूप अपभ्रंश में भी अनेक परिवर्त्तन हुए। कुछ परिवर्त्तन जो प्राकृत काल में हो रहे थे यहाँ आकर तीव्र और स्पष्ट हो गये। अपभ्रंश की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) उकार बहुलता अपभ्रंश की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है।

(२) इसमें संगीतात्मक के बदले बलात्मक स्वराघात की प्रवृत्ति अत्यधिक स्पष्ट है।

(३) अन्तिम स्वर के ह्रस्व होने की प्रवृत्ति प्रचुर है।

(४) म का वँ, ष्ण का न्ह, क्ष का क्ख या च्छ, ड, द, न, र के स्थान पर ल होना तथा व का ब होना अपभ्रंश की ध्वनिगत प्रमुख विशेषताएँ हैं।

---

१. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ५०-५१

२. हिन्दी भाषा, पृ० ६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५) संस्कृत और प्राकृत की तुलना में नाम और धातु दोनों की कमी के कारण भाषा में सरलीकरण की स्थिति स्पष्ट है।

(६) नपुंसक लिंग और द्विवचन लगभग समाप्त हो गये।

(७) मध्यम व्यंजनों के लोप की प्रवृत्ति भी प्रचुर रूप में विकसित हो गई।

(८) वैदिक से प्राकृत तक भाषा रूप-विज्ञान की दृष्टि से संयोगात्मक थी। प्राकृत में वियोगात्मकता दृष्टिगोचर होने लगी और अपभ्रंश में आकर यह प्रवृत्ति सर्वथा स्पष्ट हो गई।

(९) शब्द-भंडार की दृष्टि से तद्भव और देशज शब्दों की बहुलता तथा तत्सम शब्दों की विरलता भी अपभ्रंश की एक प्रमुख विशेषता है।

आर्य भाषाओं के विकास की इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म होता है। डॉ० उदय नारायण तिवारी ने वर्ण रत्नाकर, कीर्तिलता, ज्ञानेश्वरी, चर्यापद आदि की भाषा को अपभ्रंश और आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी माना है। डॉ० भोलानाथ तिवारी यद्यपि संक्रान्तिकालीन भाषा की स्थिति को अनुपयुक्त मानते हैं फिर भी वे मध्यवर्त्ती भाषा के रूप में अवहट्ठ आदि का विवेचन करते हैं। इसी संक्रान्तिकालीन भाषा-सेतु के सहारे अपभ्रंशों के गर्भ से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म होता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण और परिचय

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को पहली बार वर्गीकृत करने का श्रेय डॉ० हार्नले को प्राप्त है। हार्नले के अनुसार आर्य भारत में दो बार आए। दूसरी बार आये आर्यों ने पहलेवाले आर्यों को विस्थापित कर दिया और वे स्वतः मध्यदेश में बस गये। इस दो बार के आगमन के कारण उनकी भाषा में भेद होना स्वाभाविक था। इस भेद को स्पष्ट करने के लिए हार्नले ने बाद में आए आर्यों की भाषा को भीतरी वर्ग में रखा और पूर्ववर्ती विस्थापित आर्यों की भाषा को बाहरी वर्ग में। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

पूर्वी गौडियन—पूर्वी हिन्दी एवं बिहारी भाषाएँ, बंगला, असमी, उड़िया।

पश्चिमी गौडियन—पश्चिमी हिन्दी एवं राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरी गौडियन—गढ़वाली, नेपाली आदि ।

दक्षिणी गौडियन—मराठी ।

डॉ० ग्रियर्सन ने अपने भाषा-सर्वेक्षण भाग-१ में हार्नले के मत का पुरजोर समर्थन करते हुए किंचित संशोधन के साथ अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया ।[१]

(१) बाहरी उपशाखा—
 (क) पश्चिमोत्तरी समुदाय (लहंदा, सिन्धी)
 (ख) दक्षिणी समुदाय (मराठी)
 (ग) पूर्वी समुदाय (उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी) ।

(२) मध्यवर्त्ती उपशाखा—पूर्वी हिन्दी

(३) भीतरी उपशाखा—
 (क) केन्द्रीय (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, भीली और खानदेशी)
 (ख) उत्तरी (पूर्वी पहाड़ी या नेपाली, मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी) ।

डॉ० ग्रियर्सन ने जिन प्रमाणों के आधार पर उपर्युक्त वर्गीकरण किया था उसका खंडन करते हुए डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के मत को अवैज्ञानिक ठहराया । ग्रियर्सन की कुछ स्थापनाएँ और उनके सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी का मत यहाँ दिया जा रहा है । ग्रियर्सन ने ध्वनि, शब्द-समूह और व्याकरण तीनों को अपने विवेचन का आधार माना था, चटर्जी ने भी तीनों दृष्टियों से खंडन किया ।

(१) ग्रियर्सन के अनुसार ल या ड़ के लिए र का प्रयोग बाहरी वर्ग में होता है, मगर चटर्जी के अनुसार भीतरी वर्ग की भाषाओं में भी यह परिवर्त्तन प्राप्त होता है । जैसे—गला – गर, बीड़ा—बीरा ।

(२) ग्रियर्सन के अनुसार द का ड में परिवर्तन बाहरी की विशेषता है । किन्तु यह भीतरी में भी प्राप्त है । जैसे—दृष्टि—डीठि, दोलिका—डोली आदि ।

(३) महाप्राण का अल्पप्राण होना ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी का लक्षण है किन्तु चटर्जी भीतरी में भी इसकी सत्ता मानते हैं । जैसे—भगिनी से बहिन ।

---

१. भारत का भाषा सर्वेक्षण, भाग—२ खंड-१, पृ० १२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) बाहरी वर्ग में म्ब का म होता है किन्तु हिन्दी (जो भीतरी वर्ग की भाषा है) में जम्बुक का जामुन और निम्ब का नीम मिलता है।

(५) ग्रियर्सन कहते हैं कि बाहरी वर्ग में अन्त्य ध्वनियाँ इ, उ हैं। चटर्जी खंडन करते हुए कहते हैं कि ऐसा भीतरी वर्ग की कन्नौजी और ब्रजभाषा में भी मिलता है।

(६) ग्रियर्सन स्त्री प्रत्यय ई के आधार पर बाहरी वर्ग की पूर्वी और पश्चिमी को एक सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु ऐसा सभी आर्य-भाषाओं में मिलता है, भीतरी वर्ग की तो बात ही क्या !

(७) ग्रियर्सन के अनुसार बाहरा वर्ग की भाषाएँ पुनः संस्कृत की तरह संयोगात्मक हो रही हैं जबकि भीतरी वर्ग की भाषाएँ एक कदम पीछे, वियोगात्मक अवस्था में हैं। किन्तु, डॉ० चटर्जी के अनुसार भीतरी वर्ग की भाषाओं के कारकीय रूपों के अध्ययन से इसकी सत्यता खंडित हो जाती है।

(८) विशेषणात्मक प्रत्यय केवल बाहरी की ही विशेषता नहीं है। भीतरी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

इस तरह ग्रियर्सन के वर्गीकरण को अवैज्ञानिक मानते हुए डॉ० चटर्जी ने अपना वर्गीकरण इस प्रकार दिया:—

(क) उदीच्य—सिन्धी, लहंदा, पंजाबी

(ख) प्रतीच्य—गुजराती, राजस्थानी

(ग) मध्यदेशीय—पश्चिमी हिन्दी

(घ) प्राच्य—पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, असमी, बंगाली

(ङ) दाक्षिणात्य—मराठी

चटर्जी ने पहाड़ी को दरदी और राजस्थानी का सम्मिलित रूप माना है और खानदेशी तथा भीली को स्वतंत्र भाषा नहीं स्वीकार किया है। डॉ० चटर्जी के उपर्युक्त वर्गीकरण के विषय में डॉ० हरदेव बाहरी का मत है कि "इसे अधिक सरल, स्वाभाविक और वैज्ञानिक कहा गया है; किन्तु थोड़े से हेर-फेर के अतिरिक्त इसमें हमें कोई मौलिक विशेषता नहीं दिखाई देती।"[१] उन्हें इस वर्गीकरण में राजस्थानी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी को पश्चिमी हिन्दी

१. हिन्दी उद्भव, विकास और रूप, पृ० ४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से अलग वर्ग में रखने पर आपत्ति है। क्योंकि "भारतीय संविधान, लोकमत, साहित्यिक परम्परा आदि को ठीक से समझने पर राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी और मध्य पहाड़ी अलग-अलग भाषाएँ नहीं समूचे मध्यदेश की भाषा हिन्दी की पांच उपभाषाएँ हैं।"[१] उन्होंने इस स्थापना के आधार पर आधुनिक भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

(१) हिन्दी वर्ग—इसमें राजस्थानी, पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी, मध्य पहाड़ी और बिहारी ये पांच उपभाषा-वर्ग आते हैं।

(२) हिन्दीतर वर्ग—(क) उत्तरी (नेपाली)
(ख) पश्चिमी (लहंदा, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती)
(ग) दक्षिणी (सिंहली, मराठी)
(घ) पूर्वी (बंगला, उड़िया, असमी)

डॉ० बाहरी ने सिंहली को आर्य-कुल की भाषा मानकर उसे दक्षिणी वर्ग में स्थान दिया है तथा लहंदी को पश्चिमी पंजाबी नाम से पंजाबी की ही एक उपभाषा स्वीकार किया है जो भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है।

डॉ० बाहरी ने सर्वथा नवीन और आधुनिक दृष्टि से उपयुक्त आधार ग्रहण कर आधुनिक आर्य-भाषाओं का वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण में न उलझन है और न अवैज्ञानिकता। यहाँ डॉ० बाहरी के वर्गीकरण के आधार को ही स्वीकार करते हुए इन आधुनिक आर्य भाषाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

सिन्धी—यह सिन्ध की भाषा है। इसका एक ओर गुजराती से सम्बन्ध है और दूसरी ओर मुलतान की भाषा लहंदा से। सिन्धी की तीन उप-बोलियाँ हैं—(१) ऊपरी या सिरोभाग जिसकी बोली सिराकी कहलाती है, (२) बीच का भाग या विचोली जिसकी बोली विचोली है और (३) नीचे का भाग जिसे लाड़ या लाट कहते हैं। इसकी बोली लाड़ी है। कच्छ प्रदेश की बोली कच्छी को सिन्धी और गुजराती का मिश्रित रूप समझना चाहिए। साहित्यक और सामान्य भाषा के रूप में विचोली का प्रयोग होता है। साहित्य है तो लेकिन बहुत समृद्ध नहीं। शाह लतीफ का रिसालो लोकप्रिय काव्य है। शब्द भंडार में अरबी-फारसी की अधिकता है, जो मुसलमानों के प्रभाव और उनकी अधिक प्रतिशत आबादी के कारण स्वाभाविक है।

---

१. हिन्दी उद्भव, विकास और रूप, पृ० ४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिन्धी में शब्द प्रायः स्वरान्त हैं। पुल्लिंग संज्ञाएँ प्रायः ओकारान्त और उकारान्त होती हैं तथा स्त्रीलिंग संज्ञाएँ अकारान्त और आकारान्त। लिंग और वचन दो ही हैं जैसा हिन्दी आदि में है। संज्ञार्थक क्रियाएँ णुकारान्त हैं। संज्ञाओं और क्रियाओं में सार्वनामिक प्रत्ययों का योग एक उल्लेखनीय विशेषता है जैसे—भासि = उसका भाई, मारिआई = उसने उसको मारा। यहाँ संज्ञा और क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय जुड़े हुए हैं।

पंजाबी :—पंजाबी के दो रूप हैं। पश्चिमी पंजाबी जिसे लहंदा कहते हैं। मुलतानी, डेरावाली, पोठोवारी आदि इसकी कई उपबोलियाँ हैं। यह पंजाबी के पूर्वी रूप की अपेक्षा अधिक कर्कश एवं बलवान भाषा है। पूर्वी पंजाबी को भारतीय पंजाब की भाषा या पंजाबी कहते हैं। इसकी बोलियों में डोगरी मालवई, पोवाधी और माझी महत्त्वपूर्ण हैं। माझी ही आदर्श साहित्यिक भाषा है। पंजाबी में हिन्दी की सघोष महाप्राण ध्वनियों को क्‌ह, च्‌ह, ट्‌ह त्‌ह आदि करके बोलने की प्रवृत्ति है। संयुक्त व्यंजन स्वर भक्ति सहित बोले जाते हैं। जैसे—राजेन्द्र—राजिन्दर, मित्र—मित्तर, स्टेट—सटेट इत्यादि।

संज्ञा में लिंग-भेद और स्त्री प्रत्ययों का रूप हिन्दी की तरह है। स्त्रीलिंग विशेषणों को वचन प्रभावित करता है। जैसे, एकवचन में—अच्छी लड़की और बहुवचन में—अच्छियाँ लड़कियाँ। क्रिया में वर्त्तमान कृदन्त रूप दा, दे, दी होता है। हिन्दी की तरह ता, ते, ती नहीं। लिपि में प्रायः गुरुमुखी का प्रयोग होता है। पंजाबी का साहित्य उच्च कोटि का और अत्यन्त समृद्ध है।

गुजराती :—यह गुजरात की भाषा है जिसे बम्बई नगर की बहुत बड़ी जनसंख्या भी बोलती है। इसमें उपबोलियाँ नहीं हैं। केवल काठियावाड़ी का नाम लिया जा सकता है। नागरिक और ग्रामीण गुजराती में कुछ अन्तर मिलता है। बोलचाल की गुजराती में क, ख, ग का च, छ, ज; च छ का स; स का ह; और ह का अ हो जाता है। दन्त्य और मूर्द्धन्य व्यंजन परस्पर परिवर्तनीय हैं। वचन दो हैं जब कि लिंग तोन हैं। परसर्गों में का के अर्थ में नो, ना, नी और लिए के अर्थ में माटे उल्लेखनोय है। सहायक क्रिया राजस्थानी से मिलती-जुलती है जबकि कर्मवाच्य, संयुक्त क्रिया और प्रेरणार्थक की बनावट हिन्दी के समान है। गुजराती की अपनी लिपि है जो कैथी से मिलती-जुलती है। साहित्य पर्याप्त समृद्ध और उन्नत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मराठी :—महाराष्ट्र की भाषा मराठी है। इसकी तीन बोलियाँ हैं—खड़ी बोली मराठी, बरारी और कोंकणी। खड़ी बोली मराठी ही साहित्यिक भाषा है। कोंकणी पर द्रविड़ भाषाओं का अधिक प्रभाव है। साहित्य अत्यन्त समृद्ध और विकसित है। केवल साहित्य ही नहीं साहित्येतर विधाओं में भी उच्च कोटि की रचनाएँ मिलती हैं। मराठी में ळ और ऋ का रु, पदान्त न का ण, स का श, र का ल और च, ज, झ का क्रमशः त्स, द्ज, ध्झ हो जाता है। लिंग तीन हैं जिनका विधान जटिल है किन्तु सामान्य रूप से आकारान्त संज्ञाएँ पुल्लिग, ईकारान्त स्त्रीलिंग और सानुनासिक एकारान्त संज्ञाएँ नपुंसक लिंग होती हैं। क्रिया में वर्त्तमान काल के—त वाले रूप हिन्दी से, भूतकालिक—ल वाले रूप पूर्वी भाषाओं से और भविष्यत—ल वाले रूप राजस्थानी से मिलते-जुलते हैं। शब्द भंडार में तत्सम तद्भव, फारसी और द्रविड़ शब्दों की बहुलता है।

बंगला—बंगला अविभक्त बंगाल अर्थात् पश्चिमी बंगाल और बंगला देश की भाषा है। इसका साहित्य न केवल समृद्ध है बल्कि आधुनिक युगीन प्रवृत्तियों का संदेशवाहक भी। पाश्चात्य साहित्य की अनेक आधुनिक-प्रवृत्तियाँ बंगला के माध्यम से ही दूसरी आर्य भाषाओं के साहित्य में गृहीत हुई हैं। यों तो शब्द भंडार में विदेशी और देशज शब्दों की भी सत्ता प्राप्त है लेकिन प्रधानता संस्कृत के तत्सम शब्दों की ही है।

बंगला में अ का उच्चारण ओ की तरह होता है। ऐ और औ का उच्चारण संयुक्त स्वर की तरह ओइ और आए रूप में होता है। शब्द स्वारान्त होते हैं। य का ज और व का ब उच्चरित होता है। ण का न और ष तथा स का श उच्चरित होना अति सामान्य प्रवृत्ति है। संयुक्त व्यंजन वाले शब्द तद्भव रूपों में वर्ण द्वित्व के साथ लिखे जाते हैं। जैसे—लक्ष्मी—लक्खी, परीक्षा—पोरीक्खा, माहात्म्य—माहात्त इत्यादि।

विशेषण और क्रियाओं में संज्ञा के लिंग के अनुसार परिवतंन नहीं होता है। निर्जीव पदार्थों में व्याकरणिक लिंग-भेद नहीं होता है। परसर्गो का प्रयोग शब्द के साथ होता है। इस दृष्टि से बंगला बहुत अंशों में योगात्मक भाषा है। विशेषण प्रायः अकारान्त होते हैं। संस्कृत की तरह वाक्यों में प्रायः 'है' सहायक क्रिया को व्यक्त करनेवाले रूप लुप्त रहते हैं।

असमी—पहाड़ी जातियों के क्षेत्र को छोड़कर शेष असम प्रदेश के निवासियों की भाषा है। इस पर बंगला का अत्यधिक प्रभाव है। कर्म वाच्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बनाने के लिए 'है' का प्रयोग होता है। ध्वनियों में अधिकांश बंगला की भाँति ही हैं। ट, ड का उच्चारण त, द की तरह होता है। एक ही संज्ञार्थक क्रिया के कई रूप मिलते हैं। जैसे—बोला, बोलिबा और बोलोता। लिंग और वचनगत भेद नहीं होता है। परसर्गों में कर्म के लिए क, करण के लिए ए, एरे, सम्प्रदान के लिए लै, लैके, सम्बन्ध के लिए अर, अरे; और अधिकरण के लिए अत, अते रूप चलते हैं। असमी में लोक गीतों की अच्छी और समृद्ध परम्परा मिलती है। आधुनिक युग में इसमें अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकार पैदा हुए हैं।

उड़िया :—यह वर्तमान उड़ीसा राज्य की भाषा है। उड़ीसा का प्राचीन नाम कलिंग और बाद का नाम उत्कल है। इस आधार पर उड़िया भाषा को उत्कली भी कहते हैं। इसका साहित्य उन्नत और समृद्ध है।

उड़िया की ध्वनियाँ बंगला से साम्य रखती हैं। इस भाषा में स्वाभाविक लिंग हैं, व्याकरणिक लिंग नहीं। संज्ञा के सामान्य और लघु दोनों रूप मिलते हैं। शब्दों की रूप-रचना में सादृश्य और स्वर-सामंजस्य की सत्ता मिलती है। क्रियापदों में भूतकालिक रूप—ल्य अन्त वाले भविष्यत्कालिक रूप—ब अन्त वाले और वर्तमानकालिक रूप—करइ और करू अछि हैं।

नैपाली—यह नेपाल के शासक वर्ग की भाषा है जो सोलहवीं शती में उदयपुर से जाकर वहाँ राज्य स्थापित करने में समर्थ हुए थे। इस आधार पर डॉ॰ बाहरी आदि इसे गोरखाली (गोरक्षक राजपूतों की भाषा) कहना चाहते हैं। वहाँ के मूल निवासियों की भाषा नेवारी है जो तिब्बत-चीनी परिवार से सम्बद्ध है।

नेपाली में ब्रजभाषा की सभी ध्वनियाँ मिलती हैं। उच्चारण में अनुनासिकता की प्रधानता अवश्य है। शब्दान्त के अ उच्चरित होते हैं। लिंग भेद केवल सजीव पदार्थों में है। शेष सब पुल्लिग होते हैं। सर्वनामों में आप के स्थान पर तपाई का प्रयोग उल्लेख्य है। परसर्गों में कर्त्ता—ले, कर्म-सम्प्रदान—ताई, करण-अपादान—बाट; सम्बन्ध—को, अधिकरण—मा, माँ का प्रयोग होता है। साहित्य समृद्ध और उन्नत है।

सिंहली—यह श्रीलंका की भाषा है। ई॰ सन् के पूर्व गुजरात और दक्षिण सिन्ध के लोगों ने यहाँ अपना उपनिवेश बसाया। इस कारण पालि और तमिल के मिश्रण से जो भाषा बनी उसे सिंहली प्राकृत और उसी के आधुनिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप को सिंहली कहते हैं। यही इस समय सिंहल की राजभाषा है। ऋ का रू, च का स, स का ह तथा ह का अ उच्चरित होना, अंतिम वर्ण का लोप होना, महाप्राण ध्वनियों का अभाव आदि सिंहली की ध्वनिगत विशेषताएँ हैं। सिंहली पर मराठी और द्रविड़ परिवार का प्रभाव द्रष्टव्य है। सिंहली का साहित्य समुन्नत है।

इन भाषाओं के अतिरिक्त जो भाषाएँ हिन्दी वर्ग की हैं उनका विवेचन हिन्दी और उसकी उपभाषाओं के अन्तर्गत अलग शीर्षक में किया जा रहा है।

हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ

हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति, उसके अर्थ-विकास तथा उसकी अर्थ-व्याप्ति आदि के विषय में प्रथम अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। यहां केवल हिन्दी की उपभाषाओं का परिचय प्रस्तुत है। डॉ० हरदेव बाहरी ने हिन्दी के अन्तर्गत पाँच उपभाषा वर्ग माने हैं। (१) पूर्वी हिन्दी, (२) पश्चिमी हिन्दी, (३) राजस्थानी हिन्दी, (४) बिहारी हिन्दी और (५) (मध्य) पहाड़ी हिन्दी। डॉ० बाहरी के अनुसार 'हिन्दी प्रदेश में ऐतिहासिक दृष्टि से पांच प्राकृतें थीं—अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, मागधी और खस। जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह वास्तव में इन्हीं पांच प्राकृतों की उत्तराधिकारिणी विभाषाओं का संघ है। अपभ्रंश से राजस्थानी हिन्दी, शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, अर्द्धमागधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी हिन्दी और खस से पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ है।'[१]

पश्चिमी हिन्दी—हिन्दी क्षेत्र के पश्चिमी भाग की उपभाषाओं के समूह के लिए डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी हिन्दी नाम दिया था। क्षेत्र की दृष्टि से पश्चिमा हिन्दी का विस्तार पश्चिम में पंजाबी और राजस्थानी की सीमा से लेकर पूरब में अवधी और बघेली की सीमा तक, उत्तर में पहाड़ी हिन्दी की सीमा तक और दक्षिण में मराठी तक चला गया है। इसके अन्तर्गत खड़ी बोली (कौरवी) बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली ये पांच भाषाएँ मानी गयी हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी इन पांच के अतिरिक्त निमाड़ी को भी इसी वर्ग के अन्तर्गत मानते हैं।[२] इसके अतिरिक्त दक्षिण में बम्बई, मद्रास और हैदराबाद के आस-पास मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त दक्खिनी हिन्दी भी इसी वर्ग

१. हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, पृ० ६०
२. हिन्दी भाषा, पृ० १४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की भाषा है। डॉ० हरदेव बाहरी इन सभी बोलियों को दो वर्गों में बाँटते हैं, आकार बहुला और ओकार बहुला। पहले वर्ग में बांगरु, खड़ी बोली और दक्खिनी हिन्दी आती है तथा दूसरे वर्ग में बुन्देली, कन्नौजी और व्रजभाषा। यों इन दो वर्ग की बोलियों में परस्पर भेद तो है किन्तु वह भेद इस सीमा तक नहीं है कि इन्हें अलग-अलग उपभाषाएँ मान लिया जाय।[१]

पश्चिमी हिन्दी की सामान्य विशेषताएँ ये हैं—

(१) इसके उच्चारण में थोड़ा खरापन अधिक है।

(२) कर्त्ता परसर्ग का चिह्न 'ने' विशेष रूप से हमारा ध्यान खींचता है।

(३) पजाबी का अल्प किन्तु अनुपेक्षणीय प्रभाव है।

(४) आकार बहुला बोलियों में ड़ की अपेक्षा ड और न की अपेक्षा ण का प्रयोग अधिक होता है। ओकार बहुला बोलियों में ण की जगह न, श की जगह स और ड़ की जगह र का प्रयोग प्रचलित है। य और व अर्धस्वर सभी बोलियों में पाये जाते हैं। आकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं का तिर्यक एकवचन रूप एकारान्त हो जाता है। संज्ञा, विशेषण और क्रियाओं में लिंग और वचन के अनुसार परिवर्त्तन होता है। इस वर्ग की उपभाषाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

व्रजभाषा—डॉ० बाहरी के अनुसार यह ओकार बहुला भाषा है जिसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। ऐंकार और ओंकार व्रजभाषा की ऐसी ध्वनियाँ हैं जो उसकी प्रकृति को अलग करती है। वहाँ तो, जो, पे, में की जगह तौ, जौ, पै, मैं उच्चरित होता है। शब्दान्त आ की जगह ओ पाया जाता है। इसी आधार पर इसे ओकार बहुला कहा गया है।

परसर्ग निम्नलिखित हैं—कर्ता—ने, नैं; कर्म—को, कौ, कूं कैं; करण-अपादान—सो, सौं, तें, तैं; सम्बन्ध—कौ, के, अधिकरण में, मांझ, पे, पर। इसके अतिरिक्त काज, लगि, दिग, नाई, पाछें, लौं आदि शब्द परसर्गवत् प्रयुक्त होते हैं। विशेषण खड़ी बोली की तरह ही होते हैं केवल पुल्लिग एकवचन रूप में भिन्नता होती है। सर्वनाम मैं की जगह हौं का प्रयोग उल्लेखनीय है। सहायक क्रिया में खड़ी बोली हूँ के लिए हौं और हो के लिए हो ध्यान देने योग्य हैं। भूतकाल में हते, हती और हो रूप चलते हैं। भविष्य निश्चयार्थ मे ह्वै, हैं रूप व्रजभाषा की अपनी विशेषता है।

१. हिन्दी उद्भव विकास और रूप, पृ० ६२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रजभाषा कोमलप्राण भाषा मानी जाती है। इसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। कृष्ण काव्य का श्रेष्ठांश ब्रजभाषा में ही उपलब्ध है। ब्रजभाषा गद्य के नमूने वार्ता साहित्य में मिलते हैं। बोलनेवालों की संख्या अनुमानतः डेढ़ करोड़ है।

बुन्देली—यह बुन्देलखंड की भाषा है। इसके बोलनेवाले लगभग एक करोड़ हैं और क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। इसकी ब्रजभाषा से घनिष्ठता होते हुए भी कुछ भेद है। जैसे बुन्देली की संज्ञाएँ ब्रजभाषा की तरह इकारान्त और उकारान्त नहीं हैं। परसर्गों में 'के लिए' के अर्थ में के काजे या के लाने और को तथा का के अर्थ में खों और खो का प्रयोग विशिष्ट है। सहायक क्रिया होना के विभिन्न रूप चलते हैं किन्तु, हकार लुप्त होकर अऊं, आंय आदि रूप बच जाते हैं।

कन्नौजी—पूर्व में कानपुर, दक्षिण में यमुना नदी और उत्तर में शाहजहाँपुर, हरदोई, पीलीभीत तक इसका क्षेत्र है। पश्चिम में ब्रजभाषा से इसकी विभाजक रेखा अनिश्चित है। बोलने वालों की संख्या पैंतालीस लाख के आस-पास है। यह लोकमत की दृष्टि से ही भिन्न भाषा है अन्यथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रजभाषा की एक बोली। ध्वनियों में ब्रजभाषा ऐ औ की जगह ए, ओ चलता है। शब्द के मध्य में आनेवाले व का उच्चारण उ होता है। ऐ, औ संयुक्त स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। परसर्गों में कर्म—का, को, सम्बन्ध—कर, अधिकरण—माँ, महँ अवधि से आकर मिल गये हैं। इ और उ सर्वनाम अवधि से आए हैं। बहुवचन में हिन्दी 'लोग' के स्थान पर ह्वम का प्रयोग होता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में कन्नौजी वास्तव में कोई स्वतंत्र उपभाषा नहीं बल्कि ब्रजभाषा का ही एक उपरूप है।[१]

हरियाणी—यह वर्तमान हरियाणा प्रदेश की भाषा है। इसे ग्रियर्सन ने बाँगरू नाम दिया था जो करनाल जिले के आस-पास के क्षेत्र बांगर के नाम पर आधारित है। इसके बोलनेवालों की संख्या तीस-पैंतीस लाख है।

खड़ी बोली हिन्दी से इसकी बहुत समानता है। ध्वनियाँ दोनों में समान हैं। परसर्गों में सम्प्रदान का अतिरिक्त परसर्ग ल्याँ और अधिकरण का महँ, माँह विशिष्ट हैं।

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० ५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य पुरुष एकवचन के सभी पुल्लिग रूप भिन्न होते हैं। सहायक क्रिया है की जगह सैं मिलता है और वर्तमानकालिक कृदन्त का रूप दा और दा दोनों से युक्त मिलता है। जैसे—करता : करदा।

दक्खिनी—ऊपर दक्खिनी की स्थिति के विषय में कहा जा चुका है कि यह उत्तर से जाकर बस जानेवाले लोगों की भाषा है जिसमें साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। स्वरों में ह्रस्व की स्थिति और व्यंजनों में द्वित्व की स्थिति पंजाबी से इसकी समीपता सिद्ध करती है। ड़ की अपेक्षा ड का प्रयोग अधिक होता है। परसर्गों में कर्म—कू, सम्प्रदान—के तईं, करण—सू, सम्बन्ध—क्यां, केरा और अधिकरण—मने, पो आदि भी चलते हैं। सहायक क्रिया में अछे और है दोनों का प्रयोग होता है। अधिकतर प्रवृत्ति खड़ी बोली के समान है।

निमाड़ी—यह मध्य प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र की बोली है। परिनिष्ठित निमाड़ी खरगोन और खंडवा के बीच बोली जाती है। इस पर 'मालवी, मराठी, बुन्देली खानदेशी तथा भीली का प्रभाव पड़ा है।'[१] लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अब कलात्मक साहित्य भी रचा जा रहा है। ध्वनि विषयक परिवर्त्तनों में अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, अकारण अनुनासिकता आदि उल्लेख्य हैं। हिन्दी के पुल्लिग आकारान्त शब्द प्रायः ओकारान्त मिलते हैं। बहुवचन बनाने में न का अधिक प्रयोग होता है। क्रियार्थक संज्ञा—जो जोड़कर और कर्म वाच्य—जा जोड़कर बनाते हैं।

पूर्वी हिन्दी—प्राचीन कोशल राज्य का उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है। आधुनिक दृष्टि से कानपुर से मिर्जापुर और नेपाल की सीमा पर स्थित लखीमपुर से दुर्ग-बस्तर की सीमा तक के क्षेत्र में पूर्वी हिन्दी बोली जाती है। बोलनेवालों की संख्या ढाई करोड़ से अधिक है। इसमें कर्त्ता कारक का परसर्ग 'ने' नहीं प्रयुक्त होता है। क्रिया के सकर्मक-अकर्मक रूप का कर्त्ता पर प्रभाव नहीं पड़ता। क्रिया रूप कुछ जटिल है। एक तो बहुत-से तिङन्तीय रूप अभी चलते हैं और दूसरे क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय लगते हैं। जैसे—आइतई (मैं आता हूँ), पूछिस (उसने उससे पूछा)। विदेशी शब्दावली का प्रभाव कम है। विशेषण तथा क्रियाएं लिंग-भेद से प्रभावित नहीं होती हैं। इसके अन्तर्गत तीन उपभाषाएं आती हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवधी—पूर्वी हिन्दी वर्ग में इसका स्थान वही है जो पश्चिमी हिन्दी वर्ग में व्रजभाषा या खड़ी बोली का है। इसका क्षेत्र हरदोई जिले को छोड़कर सम्पूर्ण अवध प्रान्त है और बोलनेवालों की संख्या एक करोड़ नब्बे लाख है। अवधी में अ ध्वनि अर्द्धसंवृत है। ए, औ संध्यक्षर की तरह प्रयुक्त होते हैं। ण के स्थान पर न एवं श, ष के स्थान पर स का प्रयोग होता है। ऋ का उच्चारण रि की तरह होता है। व का प्रयोग ब रूप में होता है तथा ध्वनि-परिवर्त्तन में वह का उ तथा ओ हो जाता है। इसी तरह य का उच्चारण स्वर ए तथा व्यंजन ज के रूप में होता है। संज्ञा शब्दों के सामान्य, दीर्घ और अनावश्यक तीन रूप मिलते हैं। बहुवचन में न, न्ह, या नि, न्हि रूप प्रयुक्त होते हैं। विशेषण मूलतः अकारान्त होते हैं और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ रहने पर उनमें इ या ई स्त्री-प्रत्यय जोड़कर परिवर्तन कर लिया जाता है। सर्वनाम में आप के स्थान पर राउर का प्रयोग विशिष्ट है। सहायक क्रिया के रूप में आटे, बाटे, है, भए, रहै एवं अहै का प्रयोग होता है। अवधी की एक शाखा बैसवाड़ी में आहि और आप रूप भी प्राप्त हैं। संज्ञार्थक क्रियाएँ प्रायः ब अन्तवाली होती हैं। जैसे—कहब, खाएब, देखब इत्यादि।

बघेली—इसका क्षेत्र उत्तर में मध्य-प्रदेश एवं उत्तर-प्रदेश की सीमा से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक और पश्चिम में दमोह तथा बांदा की पूर्वी सीमा से लेकर पूर्व में मिर्जापुर, छोटानागपुर और बिलासपुर की पश्चिमी सीमाओं तक फैला हुआ है।[1] इसके बोलनेवाले पचास लाख से ऊपर हैं। साहित्य स्वल्प मात्रा में प्राप्त है। इसे अवधी की दक्षिणी शाखा कहना वैज्ञानिक है। व के स्थान पर ब का व्यापक प्रयोग, परसर्गों में कर्म-सम्प्रदान में 'कहा' तथा करण-अपादान में तार का अतिरिक्त प्रयोग ध्यान देने योग्य है। विशेषण रूप हा लगाकर बनाए जाते हैं। भविष्यत्कालीन रूपों में अवधी में—ब की प्रधानता है जबकि बघेली में—ह रूप की।

छत्तीसगढ़ी—मध्य प्रदेश के उत्तर-पूर्व में पलामू को छूते हुए भू-भाग से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड को छूते हुए पूर्व में उड़ीसा की सीमा तक फैले भू-भाग को छत्तीसगढ़ कहा जाता है और इसी क्षेत्र की भाषा छत्तीसगढ़ी कहलाती है। इसके बोलनेवाले सत्तर लाख हैं। साहित्य नगण्य है।

---

१. हिन्दी उद्भव विकास और रूप, डॉ० बाहरी, पृ० ७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वनिगत विशेषताओं में महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। स का कहीं-कहीं छ हो जाता है। कर्म-सम्प्रदान में ला और करण-अपादान में ले का प्रयोग विशिष्ट है। सम्बन्ध कारक का चिह्न के है जो लिंगभेद से नहीं बदलता। साधारणत: मन या मनन जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। विशेषणों और क्रियाओं के रूप अवधी से मिलते-जुलते हैं।

बिहारी हिन्दी—ग्रियर्सन ने बिहार में बोली जानेवाली वर्त्तमान आर्य भाषाओं को बिहारी नाम दिया है। किन्तु सच तो यह है कि बिहारी वर्ग की भाषाएँ न केवल बिहार में बोली जाती हैं और न बिहार में मात्र बिहारी वर्ग के अन्तर्गत आने वाली भाषाएँ ही प्रयुक्त होती हैं। इसलिए यह नाम एक साथ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनों दोषों से ग्रस्त है। इस तथाकथित बिहारी वर्ग के अन्तर्गत भोजपुरी, मैथिली, और मगही का नाम अब तक लिया जाता रहा है। जब कि इस वर्ग के अन्तर्गत बज्जिका और अंगिका का भी उल्लेख अपेक्षित है। ये दो उपभाषाएँ अभी हाल के वर्षों में अपने स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व को मैथिली के पंजे से मुक्त कर पायी हैं।

बिहारी वर्ग को हिन्दी के अन्तर्गत मानने में सबसे अधिक आपत्ति मैथिली भाषियों को है। इन पंक्तियों के लेखक का अनुभव है कि भोजपुरी, मगही या बज्जिका वालों को अपनी भाषा को हिन्दी वर्ग में मानने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन मैथिली भाषी समझते हैं कि हिन्दी वर्ग में अपने को सम्मिलित करना अछूत के साथ सम्बन्ध स्थापित करना है। वे अपने को या तो बंगला के निकट मानते हैं या फिर अलग से परम्परा शून्य भाषा के रूप में मैथिली की सत्ता मानते हैं।

ये भाषाएँ अकार बहुला हैं। संज्ञा के सामान्य, दीर्घ और अनावश्यक तीनों रूप पूर्वी हिन्दी की तरह मिलते हैं। बहुवचन में नि या न तथा लोग, लोकनि और सभ का प्रयोग होता है। सर्वनामों में तोहनी, हमनी, हमरहिन आदि विशिष्ट हैं।

सहायक क्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं। जैसे—भोजपुरी—बाटे, रहल; मगही—है, हल; मैथिली—छिक्, थिक्, छल; बज्जिका—हए, रहे इत्यादि। यहाँ इनका सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

भोजपुरी— यह हिन्दी क्षेत्र की सबसे बड़ी उपभाषा है। इसका क्षेत्र बनारस, बलिया, गाजीपुर, गोरखपुर, देवरिया और आजमगढ़ के जिले का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण तथा मिर्जापुर, जौनपुर तथा बस्ती जिले के कुछ भाग उत्तर प्रदेश में तथा शाहाबाद, छपरा का पूरा जिला एवं चम्पारण, राँची और पलामू के कुछ भाग तक बिहार राज्य में फैला हुआ है। बोलनेवालों की संख्या पौने दो करोड़ है। भोजपुरी में अब साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है जो भोजपुरी के निवासियों की सजगता का प्रमाण है।

भोजपुरी में शब्द के मध्य में आनेवाले रि का र लुप्त हो जाता है और केवल इ रह जाता है; जैसे—लरिका—लइका। कुछ अन्य परिवर्तन भी उल्लेखनीय हैं जैसे—न्द, न्ध का न, न्ह होना; म्ब, म्भ का म, म्ह होना इत्यादि। बहुवचन में संज्ञाएँ प्रायः अपरिवर्त्तित रहती हैं। लोग, लोगन आदि जोड़कर बहुवचन बनाते हैं। इकारान्त और ईकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। क्रियापदों में ल की प्रधानता है जैसे—कहल्, खायल् आदि। सहायक क्रिया में बाटे का प्रयोग विशिष्ट है।

मगही—मागधी अपभ्रंश से निकली यह आधुनिक भाषा है जिसे अपनी जननी का नाम भी प्राप्त है।[1] पटना, गया, हजारीबाग का पूरा तथा भागलपुर और मुंगेर का थोड़ा-सा भाग इसके क्षेत्र में सम्मिलित है। यह भोजपुरी से बहुत दूर तक समानता रखती है और राजधानी-क्षेत्र की भाषा होने के कारण हिन्दी के व्यापक प्रभाव से भी अछूती नहीं है। मगही में सम्प्रदान—ला, लेल और अधिकरण—मों परसर्ग अतिरिक्त हैं। सहायक क्रिया हल् है जो हिन्दी है का ही रूपान्तर है। इसके हकी, हथी, हलथिन आदि रूप द्रष्टव्य हैं। शब्दों में कुछ ऐसे हैं जो अर्थ-परिवर्तन के द्वारा मगही के विशिष्ट शब्द बन गये हैं। जैसे बच्चों के लिए बुतरु शब्द का प्रयोग।

मैथिली—यों तो मिथिला के लीगी मनोवृति वाले लोगों और मिथिला को शिव के त्रिशूल पर टिकी काशी की तरह सारी दुनिया से विशिष्ट समझने वाले मैथिल विद्वानों द्वारा मैथिली के क्षेत्र के विषय में बड़े-बड़ दावे किए जाते रहे हैं, यहाँ तक कि मगही को भी मैथिली में ही परिगणित करने का दुराग्रह किया जाता रहा है, लेकिन सच तो यह है कि मैथिली भाषा सम्पूर्ण दरभंगा जिला, (समस्तीपुर सबडिविजन को छोड़कर) सम्पूर्ण सहरषा जिला और पूर्णिया, मुंगेर तथा भागलपुर के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है। बोलने-वालों की संख्या एक करोड़ से नीचे है। प्राचीन साहित्य तो है ही, नवीन

---

१. मगही व्याकरण कोश : डॉ० सम्पत्ति अर्याणी, पृ० ११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साहित्य युद्ध-स्तर पर लिखा जा रहा है और उसे भाषाओं की अष्टम सूची में स्थान दिलाने का राजनीतिक प्रयत्न भी पुरजोर हो रहा है।

मैथिली में सभी शब्द स्वरान्त होते हैं। अ का उच्चारण संवृत होता है। ए ऐ, ओ और औ के ह्रस्व और दीर्घ दोनों उच्चारण मिलते हैं। संज्ञा के सामान्य, दीर्घ और अनावश्यक रूप अवधी की तरह हैं। करण कारक में एँ, कर्म में के, अपादान-करण में सँ, सौं तथा सम्बन्ध में क का प्रयोग अधिक होता है। सहायक क्रिया के रूप में छथि, छल आदि का प्रयोग होता है। साहित्यिक भाषा की प्रकृति तत्सम शब्दावली प्रधान है जो सिद्ध करती है कि मैथिली पडितों की भाषा है।

बज्जिका—यह प्राचीन बज्जि संघ की आधुनिक भाषा है जिसका क्षेत्र मुजफ्फरपुर जिला, चम्पारण का कुछ भाग तथा दरभंगा का समस्तीपुर सबडिविजन है। ग्रियर्सन ने अपने भाषा-सर्वेक्षण में इसे कभी पश्चिमी मैथिली कहा है और कभी भोजपुरी मैथिली। जिससे स्पष्ट ज्ञात है कि वे इसका स्वरूप निर्धारित नहीं कर सके थे। अब यह स्वतंत्र उपभाषा के रूप में विकसित हो रही है और मैथिलीवालों का दावा निराधार सिद्ध हो रहा है। इसमें मैथिली और भोजपुरी दोनों से भिन्नता है।

बज्जिका में शब्दारंभ के अ का उच्चारण विलम्बित होता है।[1] ष, श ण और ड़ व्यंजन नहीं चलते हैं। व का प्रायः ब या ओ हो जाता है और य का ए अथवा ज। ङ्ह बज्जिका की विशिष्ट ध्वनि है। बज्जिका में संज्ञा के केवल सामान्य और दीर्घ रूप मिलते हैं, अनावश्यक रूप नहीं। वर्णों को द्वित्व करने की प्रचुर प्रवृत्ति है। जैसे—निम्मन, दुन्नो, हम्मर इत्यादि। ही के लिए ए और भी के लिए ओ का प्रयोग होता है जो शब्द में ही अन्तर्भुक्त हो जाता है। जैसे—उ तऽ काल्हे गेलई। हमरो पइसा दऽ। लिंग विधान केवल सजीव पदार्थों में है; विशेषण का लिंग संज्ञा पद से कहीं प्रभावित होता है और कहीं नहीं। बहुवचन का निर्माण लोग और सब लगाकर होता है। सहायक क्रिया में हए और उसके अन्य रूप जैसे हथीन, होतई तथा रहे चलते हैं।

अंगिका—यह प्राचीन अंग देश और वर्तमान भागलपुर तथा पूर्णिया के अधिकांश क्षेत्र की भाषा है। कल तक यह मैथिली के चंगुल में फँसी थी।

---

१. बाज्जिका भाषा और साहित्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० १२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किन्तु अब इसका स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित होता जा रहा है। ध्वनिगत विशेषताओं और व्याकरणिक रूपों में एक ऐसी विशिष्टता है कि मैथिली से प्रभावाक्रान्त होकर भी यह अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं खो सकी है। इसके बोलनेवालों को संख्या साठ लाख के करीब है।

राजस्थानी हिन्दी—यह सारे राजस्थान, मध्यप्रदेश के मालवा जनपद और सिंध के एक छोटे से भाग में बोली जाती है। इसमें तीस के आसपास बोलियां और उपभाषाएँ हैं। ब्रजभाषा के आधिपत्य के पहले इसी के पुराने रूप डिंगल के साहित्य का बोलबाला था। राजस्थानी में एक ओर वीरता और शृंगार प्रधान रासो, दूहा आदि काव्य ग्रन्थों की प्रधानता है तो दूसरी ओर ख्यात, बात और वचनिकाओं में निबद्ध गद्य साहित्य की विशाल परम्परा है। बोलनेवालों की संख्या दो करोड़ पन्द्रह लाख के आसपास है। उपभाषाओं में मारवाड़ी, जयपुरी (ढूंढ़ाड़ी), मेवाती और मालवी चार प्रधान हैं। यह टवर्ग प्रधान भाषा है। ण, ळ, ड़ और उ का प्रयोग अधिक होता है। अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति अधिक है। सर्वनामों और क्रियाओं के रूप ब्रजभाषा की तरह हैं। बहुवचन में एँ का नहीं आँ का प्रयोग होता है। भविष्यत्कालीन रूप सकार प्रधान होते हैं। यहाँ राजस्थानी हिन्दी की चारों बोलियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

मारवाड़ी—राजस्थानी वर्ग की यह सबसे प्रधान उपभाषा है। शुद्ध मारवाड़ी का क्षेत्र जोधपुर का इलाका है। इसकी बारह उपबोलियां हैं। बोलनेवालों की संख्या बहत्तर लाख से ऊपर है।

इसमें डॉ० बाहरी के अनुसार थ और स दो क्लिक ध्वनियां हैं।[१] स का उच्चारण श की तरह होता है। विशेषण में तुलना करने के क्रम में सूं के अतिरिक्त करतां का भी प्रयोग होता है। सर्वनाम रूप विविधतापूर्ण हैं। सहायक क्रिया में ह्व रूप चलता है।

मालवी—उज्जैन के आसपास के क्षेत्र का 'प्राचीन नाम मालवा है। उसी की भाषा मालवी कहलाती है। उज्जैन, इन्दौर और देवास शुद्ध मालवी का क्षेत्र है। बोलनेवाले पचास लाख के ऊपर हैं। मालवी में ण ध्वनि नहीं है। ड़ की अपेक्षा ड अधिक प्रचलित है। के, कीने, कांई, कैं आदि विशिष्ट

१. हिन्दी उदमव विकास और रूप, पृ० ८७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वनाम हैं। बहुवचन बनाने के लिए हर जोड़ते हैं जैसे जजमान-हर = यजमान लोग।

मेवाती—यह अलवर, भरतपुर के उत्तर पश्चिम तथा गुड़गाँव के दक्षिण-पूर्व में बोली जाती है। सर्वनाम हरियाणी की तरह है। ऐंको, वैंको, झैंको विशिष्ट प्रयोग हैं। क्रिया रूप राजस्थानी की तरह है। भविष्यत्कालीन रूप —ग प्रधान हैं।

जयपुरी—यह जयपुर क्षेत्र की बोली है। बूँदी और कोटा में बोली जाने वाली हाड़ौती इसी की शाखा है। परसर्गों में कर्म-सम्प्रदान—नै, कै, करण-अपादान—सूं, सैं, अधिकरण—मैं, मालै विशिष्ट हैं। सर्वनामों में मारवाड़ी से कुछ भिन्नता है। सहायक क्रियाएँ ह्व से ही बनती हैं लेकिन उच्चारण की दृष्टि से कठिन होती हैं।

पहाड़ी हिन्दी—पहले कहा जा चुका है कि पहाड़ी वर्ग की तीन शाखाएँ हैं—पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और नेपाली। यहां पहाड़ी वर्ग से हमारा अभिप्राय मध्य पहाड़ी से है। डॉ० गोविन्द चातक ने मध्य पहाड़ी का बड़ा ही सर्वांगपूर्ण भाषावैज्ञानिक विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः दो उपभाषाएँ आती हैं—कुमाऊँनी और गढ़वाली।

कुमाऊँनी—इसका क्षेत्र नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौड़ागढ़ है। जन-संख्या नौ लाख है। राजस्थानी और खड़ी बोली का प्रभाव अधिक है। इसमें ए और ओ के स्थान पर या और वा हो जाते हैं। पुल्लिग एकवचन रूप ओकारान्त होते हैं। ने के स्थान पर ले और को के स्थान पर कणि परसर्ग इसकी अपनी विशेषता है। क्रियाओं में वर्तमानकालिक रूपों में—न लगता है, भूतकालिक रूपों में ओ, आ, इ लगता है तथा भविष्यत्कालिक रूपों में—ल लगता है। सहायक क्रिया छः होती हैं।

गढ़वाली—इसके क्षेत्र में गढ़वाल, टिहरी और चमोली जिला तथा उत्तर काशी का दक्षिणी भाग सम्मिलित है। गढ़वाल की बोली आदर्श है। इसमें क वर्गीय ध्वनियां कंठ और काकल के बीच से बोली जाती हैं। ल अन्तस्थ नहीं दन्ताग्र है। अनुनासिकता की प्रवृत्ति बहुत है। सर्वनाम ब्रजभाषा से मिलते-जुलते हैं। शेष में राजस्थानी से समानता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में अतर

भाषागत वैशिष्ट्य के आधार पर हिन्दी को जिन पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है उनमें पूर्वी और पश्चिमी वर्ग प्रधान हैं। ग्रियर्सन ने हिन्दी क्षेत्र के पश्चिमी भाग की उपभाषाओं को पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी क्षेत्र की उपभाषाओं को पूर्वी हिन्दी नाम दिया था। पश्चिमी की खड़ी बोली और बांगरू तथा पूर्वी की अवधी के बीच मध्यवर्त्ती कड़ी के रूप में ब्रजभाषा, बुन्देली और कन्नौजी का अस्तित्व है। हिन्दी की उपभाषाओं का यह वर्गीकरण भाषा-विज्ञान सम्मत होते हुए भी भौगोलिक आधार पर स्थित है। यहाँ इन दोनों वर्गों के मोटा-मोटी भेदों की चर्चा की जा रही है।

सामान्य अन्तर—पश्चिमी हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है और पूर्वी हिन्दी का अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश से। इसलिए इन दो अपभ्रंशों के मूलभूत साम्य-वैषम्य इनकी उपभाषाओं को भी प्राप्त है।

(२) प्रभाव की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी, विशेषतः खड़ी बोली और बांगरु, पजाबी से प्रभावित है तो पूर्वी हिन्दी बिहारी वर्ग की भाषाओं—विशेषतः भोजपुरी से प्रभावित।

ध्वनिगत अन्तर—(१) अ का उच्चारण दोनों वर्ग की भाषाओं में भिन्न होता है। पूर्वी हिन्दी का अ संवृत है जबकि पश्चिमी हिन्दी का अ अपेक्षाकृत अधिक विवृत है।

(२) पूर्वी हिन्दी के ह्रस्व स्वर इ तथा उ इतने अधिक ह्रस्व हैं कि वे प्रायः अ जैसे सुनाई पड़ते हैं। इसके विपरीत पश्चिमी हिन्दी में इनका उच्चारण ई, ऊ के अधिक समीप है।

(३) पूर्वी हिन्दी में दो स्वर प्रायः साथ आते हैं जैसे कउन, भँइस, गइल इत्यादि। पश्चिमी हिन्दी में ऐसे प्रयोग विरल हैं।

(४) ड़ और ढ़ पूर्वी हिन्दी में र और र्‌ह हो जाते हैं। यों पूर्वी हिन्दी में बाढ़ आदि शब्दों में ढ़ का प्रयोग मिल जाता है तथा पश्चिमी हिन्दी की खड़ी बोली को छोड़कर शेष में र और र्‌ह का प्रयोग भी विरल नहीं है। अतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि खड़ी बोली का ड़ और ढ़ पूर्वी हिन्दी में प्रायः र और र्‌ह हो जाता है।

(५) पूर्वी हिन्दी में ल की जगह र का प्रयोग मिलता है जब कि पश्चिमी हिन्दी में र की जगह ल ही अधिक चलता है। जैसे पूर्वी हिन्दी के केरा, फर, हर पश्चिमी हिन्दी में केला, फल, हल हो जाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६) पश्चिमी हिन्दी में ऋ का उच्चारण प्रायः र् की तरह होता है जब कि पूर्वी हिन्दी में रि की तरह। जैसे—लिखित रूप—कृपा पू० हि० में उच्चरित रूप-क्रिपा, प० हि० में उच्चरित रूप-क्रपा।

(७) संयुक्त स्वर ऐ और औ पश्चिमी हिन्दी में धीरे-धीरे मूल स्वर ए, ओ की तरह उच्चरित हो रहे हैं जब कि पूर्वी हिन्दी में इनका उच्चारण स्वर-संयोग अइ और अउ के रूप में होता है।

(८) पश्चिमी हिन्दी में य और व का प्रयोग होता है किन्तु पूर्वी हिन्दी में इसकी जगह इ और उ हो जाता है व्यंजनों में य का परिवर्तन ज के रूप में तथा व का परिवर्त्तन ब के रूप में मिलता है। पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य उपभाषाओं में भी ये रूप प्राप्य हैं।

संज्ञागत भेद—

पूर्वी हिन्दी में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं—सामान्य, -वा युक्त दीर्घ रूप और -वना युक्त दीर्घतर या अनावश्यक रूप। जैसे—लरिका, लरिकवा, लरिकवना। किन्तु पश्चिमी में एक ही रूप होता है—मूल या सामान्य रूप।

कारकीय दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी में आकारान्त पु० संज्ञा का विकारी रूप एक वचन में प्रायः ए हो जाता है। किन्तु पूर्वी हिन्दी में वह आकारान्त ही रह जाता है। जैसे—पू० हि० लरिका, घोड़ा, बेटा—प० हि० लड़के, घोड़े, बेटे।

कारकीय विभक्ति या परसर्ग की दृष्टि से सबसे उल्लेखनीय है—ने चिह्न का प्रयोग। यह पश्चिमी हिन्दी की अन्यतम विशेषता है जो पूर्वी हिन्दी में उपलब्ध नहीं है।

कर्म-सम्प्रदान में पश्चिमी हिन्दी में को, कौ तथा कूं मिलते हैं जबकि पूर्वी में काँ, के तथा को।

सम्बन्ध कारक का चिह्न दोनों में समान है। केवल पूर्वी में केर और कर अतिरिक्त हैं। इसी तरह करण-अपादान में सेनी, सन और ले का पूर्वी हिन्दी में प्रयोग विशिष्ट है।

सर्वनामगत भेद—सम्बन्धसूचक पुरुषवाची सर्वनाम के सार्वनामिक अंग और सम्बन्धसूचक रूप व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान हैं किन्तु प्रयोग में ध्वनिगत भेद है। पश्चिमी हिन्दी में जहाँ मेरा, तेरा या मेरो, तेरो रूप मिलते हैं वहाँ पूर्वी हिन्दी में मोर और तोर रूप मिलते हैं। पश्चिमी में उत्तम पुरुष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकवचन में मैं और बहुवचन में हम का प्रयोग होता है। किन्तु पूर्वी हिन्दी में एकवचन में हम और बहुवचन में हमलोग का प्रयोग होता है।

क्रियागत अन्तर—पश्चिमी हिन्दी में संज्ञार्थक क्रियाएँ प्रायः—न और ण रूपवाली होती हैं। व्रजभाषा में-बो वाले रूप भी मिलते हैं। पूर्वी हिन्दी में केवल-ब वाले रूप चलते हैं। जैसे—प० हि० चलना, चलनो, चलबो; पू० हि० चलब।

भविष्यत्कालिक क्रियाओं में प्रायः—ग वाले रूप पश्चिमी हिन्दी में मिलते हैं। पूर्वी हिन्दी में कई प्रकार के रूप आते हैं। कोई एकरूप नियम नहीं है।

सहायक क्रिया के रूप में पश्चिमी हिन्दी में भू धातु से निष्पन्न ह वाले रूप आते हैं। जैसे—होना, हूँ, है, हो इत्यादि। पूर्वी हिन्दी में ह वाले रूपों के अतिरिक्त आट् वाले रूप भी चलते हैं। जो स० वर्त्तते से निष्पन्न हैं। यह पूर्वी वर्ग पर बिहारी (भोजपुरी) का प्रभाव है। पश्चिमी हिन्दी में रह् वाले रूप कम प्रयुक्त होते हैं; किंतु पूर्वी हिन्दी में उनकी बहुलता है।

पश्चिमी हिन्दी में भूतकालिक रूप सं० भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य वाले रूपों से विकसित हैं। पूर्वी हिन्दी के रूप विकसित तो इन्हीं से हैं किन्तु उसके प्रत्यय पूर्वी भाषाओं (भोजपुरी आदि) के हैं। जैसे प० हि० मारा, मार्‍यो—पू० हि० मारेऊँ, मारिस इत्यादि।

इस तरह हम देखते हैं कि पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में अन्तर तो कई दृष्टियों से हैं किन्तु ये अन्तर निरपवाद रूप में दोनों वर्गों की सभी उपभाषाओं पर लागू नहीं होते हैं। पश्चिमी बोलियों में खड़ी बोला का पूर्वी से अधिक विभेद है जो पंजाबी प्रभाव की अधिकता का द्योतक है। डॉ० चन्द्रभान रावत का मत ठीक ही है कि "खड़ी बोली पंजाबी से अधिक प्रभावित होने के कारण पूर्वी हिन्दी से अधिक अन्तर रखती है। पर व्रज, कन्नौजी, बुन्देली इतना अन्तर नहीं रखती। एक प्रकार से व्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली पूर्वी हिंदी तथा खड़ी बोली के बीच की क्रमशः कड़ियाँ हैं।"[१]

आर्य भाषाओं में स्वराघात

ध्वनियों के तीन गुण होते हैं—मात्रा, सुर और बलाघात।

मात्रा काल के उस परिमाण का नाम है जो किसी ध्वनि के उच्चारण में लगता है।

---

१. हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण, पृ० १२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरतंत्रियों के तनाव से उत्पन्न ध्वनियों की विभिन्न स्थिति को सुर कहा जाता है।

उच्चारण में किसी विशेष ध्वनि, शब्द, पद अथवा वाक्य की अन्य ध्वनियों, पदों अथवा शब्दों से अधिक प्राण-शक्ति लगाना बलाघात कहलाता है।

बलाघात और सुर दोनों के मिले-जुले रूप को स्वराघात कहते हैं। स्वराघात शब्द का प्रयोग मूलतः अंग्रेजी शब्द 'Accent' के पर्याय रूप में किया जाता है। 'Accent' शब्द का भाषा-विज्ञान में तीन अर्थों में प्रयोग होता है :—(१) मात्रा, सुर, बलाघात, ध्वनि-प्रक्रिया तथा ध्वनि-प्रकृति आदि के अर्थ में। (पामर के अनुसार), (२) मात्र बलाघात (stress) के अर्थ में (पेई, प्रेटर आदि के अनुसार) और (३) सुर और बलाघात दोनों के अर्थ में। प्रायः तीसरा अर्थ ही प्रचलित और मान्य है। हिन्दी में इसी के लिए डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० उदय नारायण तिवारी आदि ने स्वराघात शब्द का तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने 'आघात' शब्द का प्रयोग किया है। तार्किक दृष्टि से दूसरा नाम उपयुक्त है एवं रूढ़ार्थ की दृष्टि से पहले को मान्यता मिली हुई है। यहाँ आघात के लिए ही स्वराघात का प्रयोग हुआ है। स्वराघात की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है :— 'स्वर तंत्रियों में तनाव के कारण कम्पन से उत्पन्न सुर के आरोह-अवरोह तथा वाक्य में किसी विशेष स्थल पर प्राण-वायु के अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग से उत्पन्न स्थिति के कारण ध्वनियों में जो विशिष्टता आती है उसे स्वराघात कहते हैं। यह विशिष्टता अर्थ, गुण, प्रभाव, वाग्मिता आदि किसी भी रूप में प्रकट हो सकती है।

स्वराघात के दो भेद होते हैं :—(१) संगीतात्मक स्वराघात और (२) बलात्मक स्वराघात।

संगीतात्मक स्वराघात में स्वरतंत्रियों के तनाव से उत्पन्न कम्पन के आधार पर सुरों के आरोह-अवरोह आदि का विवेचन किया जाता है। संगीतात्मक स्वराघात के सामान्यतः तीन भेद होते हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। उदात्त में सुर को ऊँचा किया जाता है, अनुदात्त में नीचा किया जाता है और स्वरित में उसे सम पर रखा जाता है। सामान्यतः उदात्त के लिए (/) अनुदात्त के लिए (\ ) और स्वरित के लिए (—) चिह्न का प्रयोग होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संगीतात्मक स्वराघात के उपर्युक्त भेद सुरों के आरोहण-अवरोहण पर आधारित हैं।

बलात्मक स्वराघात का सम्बन्ध स्वरतंत्रियों से न होकर फेफड़े से हवा फेंकने के ढंग पर होता है। इसकी उत्पत्ति वाक्य में ध्वनि, शब्द या पद-विशेष पर अपेक्षाकृत अधिक प्राणवायु लगाने से होती है।

बलात्मक स्वराघात के दो भेद होते हैं—(१) शब्द बलाघात और (२) वाक्य-बलाघात। एक तीसरा भेद ध्वनि-बलाघात भी माना जा सकता है। शब्द-बलाघात में वाक्य के सभी शब्दों पर समान बल न देकर किसी विशेष शब्द पर अधिक बल दिया जाता है। उदाहरणार्थ—राम पटना जा रहा है। यह एक सामान्य वाक्य है जिसके सभी शब्दों पर समान बल है। इसी में यदि राम पर अधिक बल दें तो अर्थ होगा केवल राम पटना जा रहा है अन्य कोई नहीं। इसी प्रकार यदि पटना पर बल दें तो उसका अर्थ होगा कि राम पटना ही जा रहा है, अन्यत्र नहीं।

वाक्य-बलाघात—जहाँ बहुत सारे वाक्यों के बीच किसी एक वाक्य पर अधिक बल लगाया जाय जिससे अन्य वाक्यों के अनुपात में उसकी विशिष्टता सूचित हो तो वहाँ वाक्यात्मक बलाघात होता है।

ध्वनि-बलाघात— इसमें किसी विशेष ध्वनि पर बल दिया जाता है। जैसे—दान में द+आ+न तीन ध्वनियाँ हैं इसमें 'आ' पर अधिक बल पड़ रहा है।

स्वराघात की संगीत-शास्त्र और रंगमंचीय वाग्मिता की दृष्टि से अधिक महत्व होता है। इतना ही नहीं स्वराघात से किसी भाषा के गठन की विशेषता का पता भी पाया जा सकता है। उदाहरणार्थ संगीतात्मक स्वराघात प्रधान भाषा अधिक कोमल और बलात्मक स्वराघात वाली भाषा अपेक्षाकृत अधिक ओजस्विनी होती है।

स्वराघात की उपर्युक्त तात्विक विशेषताओं के आलोक में हम भारतीय आर्य भाषाओं में स्वराघात की स्थिति का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

पारिवारिक दृष्टिकोण से भारतीय आर्य भाषाएँ भारत-योरोपीय परिवार की हैं। यह परिवार आरम्भ में संगीतात्मक स्वराघात प्रधान था। बाद में उसका स्थान बलात्मक स्वराघात ने ले लिया। विघटन के समय उसमें उदात्त और स्वरित दो ही रूप थे। भारत-इरानी वर्ग में आकर अनुदात्त विकसित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ। इस प्रकार वैदिक भाषा में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों भेदों से युक्त संगीतात्मक स्वराघात की स्थिति मिलती है।

वैदिक साहित्य में संगीतात्मक स्वराघात तो है किन्तु बलात्मक था या नहीं इस पर मतभेद है। अन्य लोग बलात्मक की सत्ता नहीं मानते हैं जब कि टर्नर के अनुसार उसमें बलात्मक स्वराघात भी था। वैदिक साहित्य में स्वराघात प्रकट करने की चार विधियाँ प्रचलित हैं।

(१) सामवेद को छोड़कर अन्य वेदों की प्रचलित संहिताओं में उदात्त-स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। प्रतिशाख्यों के अनुसार इसका कारण स्वरित के पूर्व भाग का उदात्त से भी ऊँचा बोले जाने के फलस्वरूप उदात्त और स्वरित का परस्पर स्थान परिवर्तन था। अनुदात्त के नीचे पड़ी लकीर और स्वरित के ऊपर खडी लकीर लगाई जाती है। जैसे अग्निना में अ अनुदात्त ग्नि उदात्त और ना स्वरित है अतः चिह्नित करने पर इसे इस प्रकार लिखा जायगा—अग्निना।

इसके अतिरिक्त पाद के आरंभ में आनेवाले सभी उदात्त चिह्न-हीन छोड़ दिए जाते हैं, प्रत्येक अनुदात्त को चिह्नित किया जाता है तथा स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों में केवल अन्तिम को चिह्नित किया जाता है।

(२) दूसरी पद्धति ऋग्वेद की मैत्रायनी और काठक संहिताओं में मिलती है जहाँ स्वरित के ऊपर खडी लकीर न देकर उदात्त के ऊपर खड़ी लकीर दी जाती है। अनुदात्त यथावत् रहता है और स्वरित के लिए कुछ भिन्न चिह्न लगाया जाता है। इस पद्धति के अनुसार अग्निना को इस प्रकार लिखा जायगा—अग्निना।

(३) तीसरी पद्धति में लकीरों के बदले अंकों का प्रयोग किया जाता है। उदात के लिए १ स्वरित के लिए २ और अनुदात्त के लिए ३ लिखा जाता है।

जैसे अग्निना को इस प्रकार लिखा जायगा—अग्निना (३ १ २)।

(४) चौथी पद्धति शतपथ ब्राह्मण में मिलती है। वहाँ केवल उदात्त को चिह्नित करके शेष को छोड़ दिया जाता है और उदात्त के लिए अनुदात्त के चिह्न (पड़ा लकीर) का प्रयोग करते हैं। जैसे अग्निना को इस प्रकार लिखेंगे—अग्निना। सब मिलाकर वैदिक भाषा संगीतात्मक स्वराघात प्रधान है जिसमें उदात्त स्वरों का प्रधानता ह।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लौकिक संस्कृत में संगीतात्मक के बदले बलात्मक स्वराघात की स्थिति प्राप्त होती है, यद्यपि वह बहुत विकसित नहीं है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृत काल से बलात्मकता का धीरे-धीरे विकास हो रहा था। संस्कृत में बलाघात की स्थिति प्रायः शब्दान्त के दीर्घ वर्ण पर रहती था। जैसे—"एकात पत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च" में क्रमशः त्रं, तः, त्वं, वं, यः, इदं और श्च पर बलाघात पड़ता है। आज भी श्लोकों के पाठ में प्रायः इसका ध्यान रखा जाता है। सच पूछा जाय तो संस्कृत की प्रकृति संगीत का अपेक्षा बलाघात में अविक सप्राणता से अभिव्यक्त होती है।

पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश जैसी मध्यकालीन भाषाओं में स्वराघात वैदिक संस्कृत का अनुगामी है। पालि में न्यूनाधिक रूप में संगीतात्मक स्वराघात था।

स्वराघात की दृष्टि से प्राकृतों के दो विभाग किए जाते हैं। प्रथम वर्ग में महाराष्ट्री, जैन-मागधी, काव्य की अपभ्रंश भाषा तथा जैन शौरसेनी रखी जाती है जिसमें किसी-न-किसी रूप में वैदिक सगीतात्मक स्वराघात की प्रधानता है।

दूसरे वर्ग में शौरसेनी, मागवी, केकय, व्राचड आदि हैं जिनमें बलात्मक स्वराघात की प्रधानता मिलती है। इनपर लौकिक संस्कृत का प्रभाव माना जा सकता है।

पूरे मध्यकाल में बलाघात की स्थिति को लेकर मत वैभिन्य है। ग्रियर्सन केवल बलाघात की, टर्नर दोनों की और ब्लाक किसी की भी सत्ता नहीं मानते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो केवल संगीतात्मक ही मानते हैं। मेरी समझ से पूरे मध्य काल में दोनों की स्थिति थी मगर प्रधानता बलात्मक स्वराघात की ही थी। कारण, भाषा जब एक प्रवृत्ति को छोड़ती है तो पुनः तुरत प्रत्यावर्तित होकर उसे ग्रहण नहीं कर पाती। परम्परा और प्रगति में जब प्रगति की ओर चरण बढ़ जाते हैं तो प्रायः परम्परा दुर्बल पड़ जाती है। यह भी स्पष्ट है कि इन मध्यकालीन भाषाओं में स्वराघात को अंकित करने की कोई पद्धति नहीं थी।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी लगभग मध्य-काल जैसी ही स्थिति है। हाँ, स्थिति अपेक्षाकृत स्पष्ट अवश्य है। ग्रियर्सन यहाँ भी केवल बलात्मक की सत्ता मानते है, टर्नर दोह स्वराघात की स्थिति मानते हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संगीतात्मक कोटि में मराठी को तथा बलात्मक कोटि में गुजराती को रखते हैं। ब्लाक दोनों में से किसी की सत्ता नहीं मानते हैं।

हिन्दी में केवल वाक्यों में संगीतात्मक स्वराघात की छाया कहीं-कहीं दीखती है, यद्यपि बलात्मक की सत्ता भी बहुत स्पष्ट नहीं है। अंग्रेजी की तरह इसमें न तो प्रत्येक शब्द में बलाघात की स्थिति निश्चित है और न उसे अंकित करने का कोई संकेत-चिह्न ही। सच तो यह कि वैदिक साहित्य को छोड़कर किसी भी आर्य भाषा में स्वराघात के किसा भी भेद को चिह्नित करने की कोई पद्धति नहीं मिलती है। हिन्दी में मात्रा-गुण की प्रधानता है और सुर-गुण प्राय: दीर्घ स्वरों पर रहता है अत: दोनों में भेद करना सर्वथा कठिन हो जाता है।

हिन्दी में स्वराघात सम्बन्धी नियम सामान्यत: इस प्रकार हैं। कामता प्रसाद गुरू के अनुसार (१) यदि शब्दान्त का अ लुप्त हो जाय और उच्चारण व्यंजनान्त की तरह हो तो बलाघात उपांत्य पर पड़ता है। जैसे—आ॑दमी, क॑मल।

(२) संयुक्त व्यंजन में पूर्ववर्ती स्वर या व्यंजन पर बलाघात होता है। जैसे—दौ॑त्य, च॑न्दा।

(३) विसर्ग वाले स्थलों पर बलाघात होता है। जैसे—दु॑:ख प्राय॑:, अन्त॑: करण।

(४) प्रेरणार्थक धातुओं में आ पर स्वराघात होता है। जैसे—करा॑ना, खिला॑ना, बुला॑ना।

डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार हिन्दी में दो प्रकार के बलाघात हैं। प्रथम को निरर्थक या अध्वनिग्रामिक बलाघात कहते हैं। इसमें बलाघात का अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे को सार्थक या ध्वनिग्रामिक बलाघात कहते हैं। इसमें बलाघात से अर्थ-भिन्नता आती है।

निरर्थक बलाघात के सम्बन्ध में कुछ मुख्य नियम ये हैं—

(१) यदि शब्द एक अक्षर का हो तो उसी पर बलाघात होगा। जैसे—वह, दिन् इत्यादि।

(२) यदि शब्द ह्रस्व स्वर वाला हो तो उपान्त्य अक्षर पर बलाघात होगा। जैसे म॑ति, अ॑लि, स॑जनि आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) महाप्राण ह, एवं विसर्ग रहने पर इन्हीं पर बलाघात होगा। जैसे सुलह, हजार, प्रायः, यशःकाय।

(४) संयुक्त अक्षर वाले शब्दों में बलाघात संयुक्त अक्षर पर ही होगा। जैसे - अनुभवी, साधु, नीति इत्यादि।

इसके अतिरिक्त अन्य छोटे-मोटे नियम भी हैं जो वर्णों की स्वरूप-योजना के आधार पर निर्मित हैं।

सार्थक बलाघात—यह स्वराघात पहले की अपेक्षा अधिक सशक्त किन्तु अनिश्चित होता है।

अक्षर स्तर पर—जैसे—कहो — (सामान्य)

कहो — (आज्ञाबोधक)

बताओ — (सामान्य)

बताओ — (जोर)

शब्द स्तर पर—राम ने बाजार में पुस्तक खरीदी—सामान्य 'राम ने, पर बल देने से राम ने ही खरीदी, दूसरे ने नहीं; बाजार पर जोर देने से बाजार में ही खरीदी, अन्यत्र नहीं; तथा पुस्तक पर जोर देने से पुस्तक ही खरीदी, अन्य कुछ नहीं, अर्थ होगा।

शब्द स्तर पर बलाघात का हिन्दी में सबसे अधिक प्रयोग होता है। यह कहीं पर ही, कहीं पर अधिक, कहीं पर तुलना और कहीं पर निश्चय का अर्थ देता है। जैसे—'राम आया और मार कर चला गया' में और संयोजक है जो अधिक का अर्थ सूचित करता है।

तुमने मारा है—तुमने मारा है (ही)

तुम थे—तुम थे। (निश्चय)

शब्दात्मक बलाघात प्रायः संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण और प्रधान क्रिया पर होता है।

वाक्य स्तर पर—तुम नहीं जा सकोगे (सामान्य)

तुम नहीं जा सकोगे (आज्ञा)

इस प्रकार हिन्दी में अर्थ की दृष्टि से सभी स्तरों पर स्वराघात की स्थिति मानी जा सकती है।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीय प्रकरण

हिन्दी ध्वनियों का विवेचन

हिन्दी में ध्वनि की दृष्टि से दो स्थितियाँ हैं।

(१) केवल परिनिष्ठित हिन्दी अर्थात् खड़ी बोली की ध्वनियाँ।

(२) हिन्दी की उपभाषाओं में प्रयुक्त अन्य ध्वनियाँ।

यहाँ केवल खड़ी बोली हिन्दी ध्वनि-समूह का विवेचन प्रस्तुत है। कोष्टक में उपभाषाओं वाले रूप भी दे दिए गए हैं।

स्वर—अ, आ, ऑ, इ (इ̥), ई, उ (उ̥) ऊ, ए (एँ) ऐ ओ औ।

व्यंजन—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, (र्ह), (म्ह), (ल्ह), ळ।

इन ध्वनियों का वर्गीकरण प्रयत्न, प्राणत्व, घोषत्व आदि की दृष्टि से इस प्रकार किया गया है—

स्वर—(क) स्थान की दृष्टि से—अग्र (इ, ई, ए) पश्च (उ, ऊ, ओ, आ) मध्य (अ)

(ख) वृत्तता की दृष्टि से—संवृत (इ, ई, उ, ऊ) अर्द्ध संवृत (ए, ओ) अर्द्ध विवृत (अ) विवृत (आ)

(ग) मूल और संयुक्त की दृष्टि से—मूल स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए, ओ) सयुक्त स्वर (ऐ,औ)

(घ) घोषत्व की दृष्टि से—घोष (सभी स्वर) अघोष (इ̥, उ̥ आदि रूप)

(ङ) अनुनासिकता—सभी स्वरों के मौखिक और अनुनासिक दोनो रूप होते हैं।

व्यंजन—(क) घोषत्व की दृष्टि से—अघोष (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, प, स, ह) घोप (ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, व, भ, म, ल, र. ढ. ड़, य, व)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) प्राणत्व की दृष्टि से—अल्पप्राण—(क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, ळ, व, ड़)
महाप्राण—(ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, ढ़)

(ग) प्रयत्न की दृष्टि से—स्पर्श (क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ) स्पर्श-संघर्षी (च, छ, ज, झ) नासिक्य (ङ, ञ, ण, न, म, न्ह, म्ह) संघर्षी (ह, ख़, ग़, ज़, श, स, फ़) पार्श्विक (ल, ल्ह) लुंठित (र, र्ह) उत्क्षिप्त (ड़, ढ़) अर्धस्वर (य, व)

(घ) उच्चारण स्थान की दृष्टि से—काकल्य (ह) कोमल तालव्य (क, ख, ग, घ, ङ) तालव्य (य) तालु-वर्त्स्य (च, छ, ज, झ, ञ, श) मूर्द्धन्य (ट, ठ, ड, ढ, ण, ष, ड़, ढ़) वर्त्स्य (न, न्ह, स, ल, ल्ह, र, र्ह) दन्त्य (त, थ, द, ध) दन्त्योष्ठ (फ, व) ओष्ठ्य (प, फ, ब, भ, म, म्ह)

हिन्दी ध्वनियों का परिचय— ऊपर स्वर तथा व्यजन ध्वनियों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है उनसे स्पष्ट है कि आधार-भेद से एक ही ध्वनि कई वर्गों में आती है। अतः एक ध्वनि के सम्बन्ध में उसके एतद्-विषयक सभी स्थितियों का एकत्र वर्णन अपेक्षित प्रतीत होता है। इसी दृष्टि से प्रत्येक ध्वनि का परिचय सोदाहरण प्रस्तुत है।

स्वर :—

अ—यह अर्द्ध-विवृत मध्य स्वर है। इसके उच्चारण में ओठ कुछ खुल जाता है और जीभ का मध्य भाग कुछ ऊपर उठ जाता है। मात्रा की दृष्टि से यह ह्रस्व है। इसका प्रयोग शब्द के आदि (अमल, अक्षर) तथा मध्य (सरल, कलम) में होता है। अन्त्य प्रयोग विवादास्पद है। अ का दूसरा रूप उदासीन कहलाता है। इसके इस रूप को सूचित करने के लिए लिखित रूप में अ को उलट कर लिखा जाता है। इसके उच्चारण में सभी अवयव अत्यन्त शिथिल या उदासीन रहते हैं। यह प्रायः बोलियों में ही उपलब्ध है। अवधी—सोरही, मैथिली—पाकल आदि शब्दों में इसकी स्थिति द्रष्टव्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आ—यह विवृत पश्च स्वर है। मात्रा की दृष्टि से इसे दीर्घ स्वर कहेंगे। इसके उच्चारण में मुख विवर पूर्णतः खुल जाता है और जीभ नीचे रहती है। किसी स्वर के उच्चारण में ओठों का इतना फैलाव नहीं होता। इसका प्रयोग शब्द के आदि, मध्य और अन्त—तीनों स्थानों में होता है। जैसे—आप, कमाल, कमला। इसे ह्रस्व का दीर्घ रूप समझना भ्रामक और अवज्ञानिक है।

ऑ—यह दीर्घ स्वर है जो स्थान की दृष्टि से पश्च और वृत्तता की दृष्टि से संवृत है। इसका प्रयोग हिन्दी में आगत अंग्रेजी शब्दों में O ध्वनि के स्थान पर होता है। सामान्य रूप में इसका प्रयोग आ की तरह होता है। यह हिन्दी की नवान आगत विशिष्ट ध्वनि है। जैसे— डॉक्टर, नॉरमल इत्यादि।

इ—यह संवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में ओठ कुछ खुल जाते हैं तथा जीभ का अग्रभाग पर्याप्त ऊपर उठ जाता है। इसका प्रयोग शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर होता है। जैसे—इतर कविता, ध्वनि। बोलियों में इसका फुसफुसाहट वाला रूप सुनाई पड़ता है। जिसे लिखने में इ के नीचे शून्य लगाकर इ॰ रूप में लिखते हैं। राति, वयारि, पोखरि आदि शब्दों में इसके प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

ई—यह संवृत अग्र स्वर है जो मात्रा की दृष्टि से दीर्घ होता है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्रभाग बहुत अधिक ऊपर उठ जाता है और ओठ चौड़ाई में खुल जाते हैं। स्थान की दृष्टि से तीनों स्थानों में आता है। जैसे—ईश्वर, महीन, बुनाई।

उ—संवृत पश्च ह्रस्व स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग पूरा ऊपर उठता है तथा ओठ वृत्ताकार रहते हैं। यह शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर आता है। जैसे—उथला, मधुर, गुरु। बोलियों में फुसफुसाहट वाला रूप उ॰ मिलता है जो मैथिली—सातु (सत्तू) तथा अवधी—रामु (जब तें रामु व्याहि घर आए) जैसे शब्दों में द्रष्टव्य है।

ऊ—यह संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग इतना ऊपर उठता है कि कोमल तालु के निकट पहुँच जाता है तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओठ गोलाकार हो जाते हैं। प्रयोग तीनों स्थानों पर होता है। यथा—ऊपर, सिन्दूर, उल्लू।

ए—अर्द्ध संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में ओठ ई की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं। जैसे—एक, अनेक, बुलाए। इसके कई रूप हो जाते हैं जिनका प्रयोग बोलियों में होता है। यथा—अर्द्ध संवृत ह्रस्व अग्र स्वर (ए̆) फुसफुसाहट वाला रूप (ए̥) अर्द्ध विवृत दीर्घ स्वर (ऍ) तथा अर्द्ध विवृत ह्रस्व अग्रस्वर (ए) इत्यादि।

ओ—अर्द्ध संवृत पश्च दीर्घ स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग ऊपर उठता है किन्तु उ के उच्चारण स्थान से कुछ नीचे रह जाता है। ओठ वृत्ताकार हो जाते हैं। यह शब्द में तीनों स्थानों में प्रयुक्त होता है यथा—ओल, प्रयोग, कमाओ। इसके अर्द्ध संवृत ह्रस्व, अर्द्ध विवृत दीर्घ एव अर्ध विवृत ह्रस्व रूप भी मिलते हैं।

ऐ तथा औ—ये दोनों संयुक्त स्वर हैं जिनका उच्चारण अएँ तथा अओं रूप में होता है। उच्चारण के क्रम में जीभ अ से एं की ओर तथा अ से ओं की ओर जाती है। चूंकि जीभ उच्चारण में नीचे से ऊपर की ओर जाती है अतः इन्हें आरोही संयुक्त स्वर कहते हैं।[1] पश्चिमी हिन्दी में ये संयुक्त स्वर अब ए तथा आ के निकट पहुँचने लगे हैं और इन्हें मूल स्वर माना जाने लगा है। इस स्थिति में ऐ को अर्द्ध विवृत दीर्घ अग्रस्वर तथा औ को अर्द्ध विवृत दीर्घ पश्च स्वर कहा जाता है। ऐ और औ शब्दान्त में प्रायः नहीं आते हैं। इनका प्रयोग आदि और मध्य में ही होता है। जैसे—कैसा, बलैया, और, कठौता इत्यादि।

अनुनासिक स्वर—उदासीन स्वरो को छोड़कर शेष स्वरों के अनुनासिक रूप भी प्राप्त होते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में विभिन्न स्वरों का स्थान तो मौलिक ही रहता है, केवल नयी स्थिति यह हो जाती है कि कोमल तालु और कौवे के नीचे झुकने से हवा नासिका मार्ग से भी निकलती है। चूंकि स्वरों के अनुनासिक-निरनुनासिक रूपों के कारण अर्थ में अन्तर पड़ जाता है अतः अनुनासिकता को ध्वनिग्रामिक मानना उचित है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं जहां अनुनासिकता अर्थ-भेद करती है।

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० २७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सवार—सँवार (अ—अँ)
भग —भग (अ—अं)
चाटा—चाँटा (आ—आं)
पूछ —पूँछ (ऊ—ऊँ)
चौक—चौंक (औ—औं)

अर्थ-भेद सरल है। अतः लिखना आवश्यक नहीं है।

स्वर-संयोग—जब दो या अधिक स्वर (बीच में बिना किसी व्यंजन की उपस्थिति के) आस-पास हों तो इस स्थिति को स्वर-सयोग कहते हैं। इसमें श्रुति के कारण कहीं-कहीं य और व का आगमन भी हो जाता है। ऐसे स्थलों पर भी स्वर-संयोग ही समझना चाहिए। जैसे—आइए, कहिए आदि में आ + इ + ए तथा इ + ए स्वर सयोग के उदाहरण हैं। नयी में अ और ई (श्रुति के कारण यी) का स्वर-संयोग है। हिन्दी में दो-तीन स्वरों का संयोग मिल जाता है। स्वर-सयोग का संयुक्त स्वर से अन्तर स्पष्ट है। सयुक्त स्वर में दो स्वर मिलकर एक हो जाते है जब कि सयोग में स्वर मिलकर एक नहीं होते। वे स्वतत्र रूप में किन्तु अनुक्रम से पास-पास रहते हैं। इसलिए स्वर-संयोग को स्वरानुक्रम भी कहते हैं।

व्यंजन :—

स्पर्श ध्वनियाँ—वे हैं जिनके उच्चारण में मुख-विवर के किन्हीं दो अवयवों का स्पर्श होता है। इसमें कवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग की ध्वनियाँ आती हैं।

क्—यह कोमल तालव्य अल्पप्राण अघोष स्पर्श ध्वनि है जिसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग से कोमल तालु का स्पर्श कराकर होता है। इसका प्रयोग तीनो स्थानो मे होता है। जैसे—कलम, ढक्ना, बालक। फारसी क़ ध्वनि (जो अल्पप्राण अघोष जिह्वामूलीय स्पर्श व्यंजन है।) के स्थान पर सामान्य लोग हिन्दी क् का ही उच्चारण करते है। जैसे—ताक़त, क़ाबिल आदि का उच्चारण ही नही लेखन भी ताकत और काबिल के रूप में होता है।

ख्—यह अघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनि है जिसका उच्चारण स्थान क् के उच्चारण-स्थान से थोड़ा पीछे है। उच्चारण-स्थान की दृष्टि से यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोमल तालव्य है। अंत्य ख् में महाप्राणत्व कम होता है और उसका उच्चारण क् की तरह हो जाता है। जैसे भूख का उच्चारण भूक ऐसा सुनाई पड़ता है। स्थान की दृष्टि से यह तीनों स्थानों पर आता है। अरबी-फारसी की ध्वनि ख़ है जो हिन्दी में ख हो जाती है।

ग्— घोष अल्पप्राण कोमल तालव्य स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण जीभ के पश्च भाग को कोमल तालु से स्पर्श कराकर किया जाता है। तुर्की, अरबी, फारसी की ध्वनि ग़ के स्थान पर हिन्दी ग् का ही प्रयोग होता है।

घ् — यह कोमल तालव्य घोष महाप्राण स्पर्श वर्ण है जिसका उच्चारण-स्थान ख् के स्थान से थोड़ा पीछे है। यह शब्द के आदि, मध्य और अन्त में आता है। ख् की तरह घ का महाप्राणत्व भी अंत्य की स्थिति में कम हो जाता है।

ट्— समस्त ट-वर्गीय ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलटकर उसके नीचे हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग को छूआ कर किया जाता है। इस स्थान को मूर्द्धा कहते हैं और इस स्थान से उच्चरित होने के कारण इन ध्वनियों को मूर्द्धन्य कहते हैं। ट् अल्पप्राण, अघोष स्पर्श वर्ण है जिसका प्रयोग शब्द के आदि मध्य और अन्त में होता है।

ठ्— उच्चारण-स्थान की दृष्टि से ट् और ठ् में भेद नहीं है। लेकिन प्राणत्व की दृष्टि से ठ महाप्राण है। अतः ठ् को महाप्राण, अघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन कहेंगे।

ड्— यह अल्प प्राण घोष मूर्द्धन्य स्पर्श वर्ण है जो शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर प्रयुक्त होता है।

ढ्— यह महाप्राण सघोष मूर्द्धन्य व्यंजन है। इसका प्रयोग केवल शब्दों के आदि में होता है।

त्— त-वर्गीय ध्वनियाँ स्थान की दृष्टि से दंत्य कहलाती हैं। क्योंकि इनका उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर वाली पंक्ति की जड़ में स्पर्श कराकर किया जाता है। प्राणत्व की दृष्टि से त् अल्पप्राण, घोषत्व की दृष्टि से अघोष और प्रयत्न की दृष्टि से स्पर्श व्यंजन है। प्रयोग तीनों स्थानों पर होता है।

थ्— यह अघोष, दंत्य महाप्राण स्पर्श व्यंजन है। अंतिम थ् में महाप्राणत्व कम रहता है। प्रयोग तीनों स्थानों में होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्— यह अल्पप्राण घोष दंत्य स्पर्श व्यंजन है जिसका प्रयोग तीनों स्थानों में होता है।

ध्— यह द् का महाप्राण रूप है। शेष स्थितियाँ यथावत् हैं अर्थात् यह घोष, दंत्य स्पर्श ध्वनि है।

प्— प-वर्गीय ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों के स्पर्श से होता है। अतः इन्हें ओष्ठ्य ध्वनियाँ कहते हैं। प् अल्पपाण अघोष स्पर्श ध्वनि है। प्रयोग तीनों स्थानों में होता है।

फ्—यह महाप्राण ओष्ठ्य ध्वनि है। शेष स्थितियाँ प् के समान हैं। प्रयोग तीनों स्थानों में होता है।

ब्—यह अल्पप्राण, घोष ओष्ठ्य स्पर्श ध्वनि है जो तीनों स्थानों में प्रयुक्त होता है।

भ्—यह महाप्राण घोष ओष्ठ्य स्पर्श ध्वनि है। प्रयोग तीनों स्थानों में होता है।

स्पर्श-संघर्षी—स्पर्श-संघर्षी वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में दो अंगों का स्पर्श इस प्रकार होता है कि भीतर की हवा रगड़ खाकर बाहर निकलती है। चवर्गीय ध्वनियाँ स्पर्श-संघर्षी हैं।

च्—यह अघोष अल्प प्राण स्पर्श-संघर्षी ध्वनि है जिसका उच्चारण तालु के अग्रभाग और जिह्वा के स्पर्श से होता है। अतः स्थान की दृष्टि से यह अग्रतालव्य है। डॉ० बाहरी ने इसे वर्त्स्य तालव्य कहा है। यह शब्द में तीनों स्थानों पर आता है।

छ्—यह महाप्राण अघोष वर्त्स्य तालव्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनि है। प्रयोग शब्द के तीनों स्थानों पर होता है। शब्दान्त के छ् में महाप्राणत्व कम होता है।

ज्— इसका उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूढ़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। यह अल्पप्राण घोष स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। शब्द में तीनों स्थानों पर प्रयुक्त होता है।

झ्—इसका भी उच्चारण उपर्युक्त पद्धति से ही होता है। अन्तर यही है कि यह महाप्राण घोष स्पर्श-संघर्षी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नासिक्य—नासिक्य या अनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण में कोमल तालु और कौवा इतना नीचे झुक जाता है कि हवा नासिका मार्ग से गूँजती हुई निकलती है। पंचवर्गों की अंतिम ध्वनियाँ अर्थात् ङ् ञ् ण् न् और म् ये पाँच नासिक्य ध्वनियाँ हैं।

ङ्—यह प्राणत्व की दृष्टि से अल्पप्राण, स्थान की दृष्टि से कवर्गीय ध्वनियों की तरह कोमल तालव्य, प्रयत्न की दृष्टि से स्पर्श और घोषत्व की दृष्टि से घोष नासिक्य व्यंजन है। वाङ्मय, पराङ्मुख आदि कुछ अपवादों को छोड़कर यह ध्वनि प्रायः कवर्गीय व्यंजनों के पूर्व संयुक्त व्यंजन के रूप में आती है। लेखन में इसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होता है। जैसे—भंग, तरंग, अंक इत्यादि। इसका महाप्राण रूप ङ्ह होता है जो जांघ आदि शब्दों में उच्चरित होता है। भोजपुरी, वज्जिका आदि पूर्वी हिन्दी की उपभाषाओं में इसका प्रयोग होता है। जैसे—उङ्हाइल (भोजपुरी) सुङ्हाएल, जाङ्ह (वज्जिका) इत्यादि।

ञ्—चवर्गीय (स्पर्श-संघर्षी) ध्वनियों के साथ वर्णमाला में इसका लेखन होता है। इसका उच्चारण न् अथवा यँ जैसा होता है। प्राणत्व की दृष्टि से अल्पप्राण तथा घोषत्व की दृष्टि से यह घोष नासिक्य ध्वनि है। स्थान की दृष्टि से यह वर्त्स्य तालव्य है। इसका प्रयोग केवल शब्दों के मध्य मे होता है। लेखन में इसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होता है। जैसे—चंचल आदि।

ण्—यह अल्पप्राण नासिक्य घोष मूर्द्धन्य स्पर्श ध्वनि है। प्राकृतों में ण का आदि प्रयोग मिलता है किन्तु हिन्दी में यह केवल मध्य और अन्त में आता है। जैसे—परिणाम, बाण। इसी का महाप्राण रूप ण्ह है। इसका प्रयोग अपभ्रंश में ण के महाप्राण रूप में मिलता है।

न्—यह अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्य नासिक्य ध्वनि है। प्रयोग तीनों स्थानों में होता है। इसका महाप्राण रूप न्ह है जो हिन्दी में मध्य तथा अन्त में प्रयुक्त होता है। जैसे—कान्ह, उन्होंने।

म्—अल्पप्राण घोष, ओष्ठ्य नासिक्य ध्वनि है। प्रयोग तीनों स्थितियों में मिलता है। म् का महाप्राण रूप म्ह है जो शब्द के मध्य में ही प्रायः प्रयुक्त होता है। जैसे—तुम्हारा, कुम्हार इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पार्श्विक—इसके अन्तर्गत ल् और उसका महाप्राण रूप ल्ह आता है। ल् के उच्चारण में जीभ की नोक मसूड़ों को छूती है और हवा दोनों पार्श्वों से निकलती है। इसीलिए इसे पार्श्विक कहते हैं। प्राणत्व की दृष्टि से यह अल्पप्राण और स्थान की दृष्टि से वर्त्स्य ध्वनि है। यह आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में प्रयुक्त होता है। इसके महाप्राण रूप ल्ह् की प्रयोगजन्य स्थिति भी यही है।

लुंठित—इसमें र और र्ह आते हैं। र् अल्पप्राण घोष वर्त्स्य ध्वनि है। प्रयत्न की दृष्टि से इसे लुंठित कहते हैं क्योंकि इसके उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स्य या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से दो-तीन बार छूती है। इसके उच्चारण में थोड़ी कठिनाई होती है इसीलिए प्रायः बच्चे र् का उच्चारण ल् की तरह करते हैं। र् का महाप्राण रूप र्ह है।

उत्क्षिप्त—इसके अन्तर्गत दो ध्वनियाँ आती हैं—ढ़, ड़। दोनों का उच्चारण स्थान एक ही है। उच्चारण के क्रम में जीभ लपेट खाकर झटके से मूर्द्धा को छूती हुई नीचे गिरती है। घोषत्व की दृष्टि से दोनों घोष ध्वनियाँ हैं किन्तु प्राणत्व की दृष्टि से दोनों में भेद है। ढ़ महाप्राण ध्वनि है और ड़ अल्पप्राण। इन दोनों का प्रयोग शब्द के आरम्भ में नहीं होता है। मध्य और अन्त में इनके प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

संघर्षी—संघर्षी ध्वनियों के उच्चारण में दो अवयव इतने समीप चले जाते हैं कि उनके बीच से निकलने वाली हवा घर्षित होकर बाहर निकलती है। इसीलिए ऐसी ध्वनियों को संघर्षी कहते हैं। हिन्दी में फारसी से आई फ़, ख़ ज़ ध्वनियाँ संघर्षी हैं। हिन्दी की अपना ध्वनियों में स, श, ष तथा ह संघर्षी ध्वनियाँ हैं।

स्—यह अघोष, वर्त्स्य संघर्षी ध्वनि है। हिन्दी में इसे श तथा ष से भेद करने के लिए दन्त्य स् कहा जाता है। लेकिन यह गलत है। क्योंकि स् का उच्चारण दन्त्य नहीं वर्त्स्य है।

श, ष—हिन्दी में ष् का उच्चारण श की तरह होता है। यों समझाने के लिए श को तालव्य और ष् का मूर्द्धन्य कहकर भेद स्थापित करते हैं। ये दोनों व्यंजन अघोष उत्थित पार्श्व संघर्षी हैं। प्रयोग आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ह्—इसमें संघर्ष अन्य संघर्षी ध्वनियों की अपेक्षा कम होता है। यह घोष स्वर-यंत्रमुखी संघर्षी ध्वनि कहलाता है। प्रयोग आदि, मध्य और अन्त तीनों में होता है।

अर्द्धस्वर—हिन्दी में य और व अर्द्धस्वर हैं। अर्थात् ये लिखे तो जाते हैं व्यंजन के अन्तर्गत, मगर बोले जाते हैं स्वर की तरह। इसीलिए अर्द्धस्वर कहलाते हैं।

य्—यह अल्पप्राण घोष तालव्य संघर्षहीन ध्वनि है। जीभ के अगले भाग को कठोर तालु के निकट ले जाकर इसका उच्चारण किया जाता है। तीनों स्थानों पर प्रयोग होता है। उच्चारण एअ या इअ के रूप में सुनाई पड़ता है।

व्—अल्पप्राण घोष संघर्षहीन ओष्ठ्य अर्धस्वर है। इसके उच्चारण में दोनों ओठ बीच में थोड़ा भाग छोड़कर एक-दूसरे का स्पर्श करते हैं। प्रयोग तीनों स्थानों पर होता है। उच्चारण ओअ या उअ के रूप में सुनाई पड़ता है।

हिन्दी ध्वनियाँ : ऐतिहासिक सन्दर्भ

हिन्दी ध्वनियों का जो रूप आज प्राप्त है वह परम्परा-विच्छिन्न नहीं है। ये ध्वनियाँ वैदिक ध्वनियों के क्रमागत विकास को अपनी प्रकृतिगत नवीनता से मंडित करती हुईं इस स्थिति तक आई हैं। हिन्दी ध्वनियों को समझने के लिए इस ऐतिहासिक सन्दर्भ का उल्लेख महत्वपूर्ण है।

स्वरों के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण परिवर्त्तन मिलते हैं।

(१) वैदिक में चार संयुक्त स्वर थे—ए, ऐ, ओ, औ। संस्कृत में ए और ओ मूल स्वर हो गये तथा ऐ और औ का उच्चारण आइ और आउ से बदलकर अइ और अउ हो गया। पालि में आकर ये संयुक्त ध्वनियाँ समाप्त होकर मूल स्वर ए और ओ में मिल गयीं। किन्तु हिन्दी में ये दोनों आज भी संयुक्त स्वर मानी जाती हैं।

(२) वैदिक में ऋ, ॠ तथा ऌ स्वर थे। संस्कृत में आकर ये लेखन में तो रहें मगर इनका उच्चारण क्रमशः रि, री, और लृ हो गया। अर्थात् इनकी स्वरगत सत्ता समाप्त हो गयी। हिन्दी में केवल ऋ का लेखन में प्रयोग होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। ॠ और लृ लुप्त हो गये हैं। उच्चारण की दृष्टि से पूरब में ऋ के लिए रि और पश्चिम में र् बोला जाता है।

वैदिक में प्राप्त ळ, ळ्ह जिह्वामूलीय ꣸ और उपध्मानीय ꣸ ध्वनियों का आगे चलकर लोप हो गया। हिन्दी में भी ये नहीं हैं। आजकल कुछ द्रविड़ भाषाओं में तथा राजस्थानी और पश्चिमी हिन्दी की कतिपय बोलियों में प्रयुक्त होने के कारण ळ को अलग ध्वनि पुनः स्वाकार कर लिया गया है और इसीलिए ळ्ह भा आ गया है।

व्यंजनों का परिवर्तन भी काफी मनोरंजक है। वैदिक भाषा में क, ख, ग, घ, ङ जिह्वामूलीय थे। संस्कृत में कण्ठ्य हो गये। हिन्दी में इसका उच्चारण-स्थान कंठ नहीं कोमल तालु है। अतः ये कोमल तालव्य हो गये हैं। वैदिक में चवर्गीय ध्वनियाँ तालव्य मानी गयी हैं। हिन्दी में चवर्गीय ध्वनियाँ तालु-वत्स्र्य हो गयी हैं। साथ ही ये चवर्गीय ध्वनियाँ स्पर्श नहीं रहकर स्पर्श-संघर्षी हो गयी हैं।

ट-वर्गीय ध्वनियों का आगमन आर्येतर स्रोत की देन है। इसका उच्चारण वैदिक में प्रतिवेष्टित ध्वनियों के रूप में होता था। लौकिक संस्कृत में इन्हें मूर्द्धन्य माना गया। अब पुनः इन्हें कुछ विद्वान (डॉ० बाहरी आदि) प्रतिवेष्टित मानने लगे हैं।

त-वर्गीय ध्वनियाँ वैदिक काल में दन्त्य और वत्स्र्य दोनों उच्चरित होती थीं। बाद में इन्हें केवल दन्त्य कहा गया। आज सभी तवर्गीय ध्वनियाँ दन्त्य नहीं हैं किन्तु इन्हें प्रायः दन्त्य ही मान लिया जाता है।

प-वर्गीय ध्वनियाँ अपने मूल रूप में आज भी चली आ रही हैं। इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, उच्चारण स्थान की दृष्टि से भी नहीं।

अनुनासिक ध्वनियों में ण का विकास डॉ० बाहरी के अनुसार परवर्ती है। वे कहते हैं—"धीरे-धीरे जब ऋ, र और ष का मूर्द्धन्यीकरण हुआ तो इनके संयोग में अथवा परिवेश में न का समीकृत मूर्द्धन्य रूप ण बनने लगा।"[१] हिन्दी में ण की स्थिति दो प्रकार की है। पश्चिमी हिन्दी में तो ण का प्रयोग होता है लेकिन पूर्वी हिन्दी तथा बिहारी वर्ग की भाषाओं में ण का न हो जाता है।

---

१. हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, पृ० ९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुनासिकता पहले व्यंजनों की विशेषता थी जबकि हिन्दी में स्वरों की विशेषता बन गयी है। न और म प्राचीन ध्वनियां हैं। किन्तु न का उच्चारण-स्थान बदल गया है। यह दन्त्य की जगह स्पष्टतः वर्त्स्य हो गया है।

वैदिक में श, ष और स तीनों मिलते हैं। संस्कृत में ष का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। पालि-प्राकृत में ष नहीं मिलता। हिन्दी में स और श ही चलते हैं। ष का उच्चारण श की तरह होता है। मध्ययुगीन हिन्दी अर्थात् अवधी आदि में इसके बदले ख का प्रयोग मिलता है। आधुनिक हिन्दी में ष की सत्ता लेखन में वर्त्तमान है। जैसे—ऋषि, वर्ष, षडानन आदि।

ह् प्राचीन ध्वनि नहीं है। डॉ० बाहरी इसे भ, ध, घ आदि ध्वनियों से विकसित मानते हैं। अर्थात् इन महाप्राण ध्वनियों के व्यंजन का लोप होने पर हकार बना है।

य् और व् का विकास इ, उ से हुआ है। कदाचित् इसीलिए हिन्दी में इन्हें अर्धस्वर समझा जाता है। र वेद में दन्तमूलाय, संस्कृत में मूर्द्धन्य और हिन्दी में लुंठित वर्त्स्य ध्वनि है। ल् पहले दन्त्य था अब पार्श्विक हो गया है।

ड़ और ढ़ ध्वनि रूप में पहले नहीं थे। अपभ्रंश काल में इनका विकास हुआ किन्तु अलग लिपि-चिह्न हिन्दी में आकर ही प्राप्त हुआ। ड और ढ से इनका भेद करने के लिए नीचे बिन्दु लगाकर लिखा जाने लगा। इनका उच्चारण स्थान भी बदल गया और प्रयत्न की दृष्टि से ये उत्क्षिप्त ध्वनियाँ हो गयीं।

अरबी-फारसी प्रभाव से ख़, ग़, ज़, फ़ ये चार ध्वनियाँ आयीं किन्तु जन सामान्य ने इन्हें हिन्दी ख, ग, ज और फ में गतार्थ कर दिया। आज पढ़े-लिखे भी इसे भिन्न करके लिखना-बोलना आवश्यक नहीं समझते। वस्तुतः यह परिवर्त्तन हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है।

अँग्रेजी के प्रभाव से ऑ ध्वनि का आगमन हुआ है। सामान्य रूप में इसकी जगह आ बोलते या लिखते हैं। किन्तु इधर ऑ के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। उदाहरणार्थ डाक्टर के स्थान पर अब डॉक्टर लिखा जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी ध्वनियों का वर्तमान रूप ध्वनि-विकास की एक जीवन्त परम्परा का प्रमाण है। अनेक प्रचीन ध्वनियों के संयोग-वियोग और बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया के उपरान्त हिन्दी ध्वनियों को यह रूप प्राप्त हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी में ध्वनि-परिवर्त्तन विषयक नियम

(१) स्वर-परिवर्त्तन सम्बन्धी नियम—

(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम—संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यंजन के पूर्व ह्रस्व स्वर रहने पर उन संयुक्त व्यंजनों में से एक रह जाता है और मात्रागत कमी को पूरा करने के लिए पूर्ववर्त्ती वर्ण को दीर्घ कर दिया जाता है। इसे ही क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम कहते हैं। इसमें प्रायः अ का आ, इ का ई एवं ए और उ का ऊ तथा ओ हो जाता है।

जैसे—

अ > आ—सर्प > सप्प > साँप, सप्त > सत्त > सात, कर्म > कम्म > काम, अष्ट > अट्ठ > आठ।

इ > ई—भिक्षा > भिक्ख > भीख, शिक्षा > सिक्ख > सीख।

इ > ए—छिद्र > छिद्द > छेद, विल्व > बिल्ल > बेल।

उ > ऊ—पुत्र > पुत्त > पूत, अंगुष्ठ > अंगुट्ठ > अंगूठा।

उ > ओ—कुष्ट > कुड्ढ > कोढ़, पुष्कर > पुक्खर > पोखर।

(ख) संस्कृत स्वर ऋ का विकास अ, इ, उ में हुआ है। जैसे—
कृष्ण > कन्हैया, वृश्चिक > बिच्छू, वृद्ध > बुड्ढ, बुड्ढा इत्यादि।

(२) व्यंजन-परिवर्तन सम्बन्धी नियम—

(क) महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन—सामान्यतः संस्कृत की महाप्राण ध्वनियाँ (शब्द के आदि में आनेवाली महाप्राण ध्वनियों को छोड़कर) लुप्त होकर हकार में परिणत हो जाती हैं। अर्थात् महाप्राण ध्वनियों का ह हो जाता है। जैसे—मेघ > मेह, मुख > मुँह, आखेट > अहेर, दधि > दहा, गर्दभ > गदहा, आभीर > अहीर।

(ख) घोषीकरण—संस्कृत की अल्पप्राण अघोष स्पर्शी ध्वनियाँ (शब्द के आरंभ में आनेवाली को छोड़कर) हिन्दी में घोष अल्पप्राण स्पर्शी या स्पर्श-संघर्षी हो गयी हैं। जैसे—काक > काग, शकुन > सगुन, घोटक > घोड़ा।

(ग) ण का न होना—संस्कृत, प्राकृत आदि का ण हिन्दी में प्रायः न हो गया है। जैसे—चणक > चना, कंकण > कंगन, कर्ण > कान।

(घ) म-नियम—म के प्रयोग की स्थिति विशिष्ट है। संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले म का विकास हिन्दी में व अथवा वँ के रूप में हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैस—आमलक >आँवला, ग्राम >गाँव, श्यामल >साँवला। कुछ शब्दों में यह व तथा उ में परिणत होकर फिर औ बन गया है। जैसे वामन >बौना, भ्रमर >भँवर >भौंरा।

(ङ) उष्म नियम—उष्म ध्वनियों श, ष का विकास प्रायः स में हुआ है। जैसे—शाक >साग, श्यालक >साला, वर्ष >बरस, आषाढ़ >असाढ़। श, ष, स का परिवर्त्तन ह में भी हुआ है। जैसे—केशरी, केसरी >केहरि, दश, दस >दह, पाषाण >पहाड़। ष का रूपान्तरण ख में भी हुआ है। पाषंड > पाखंड, मीन-मेष > मीन-मेख।

(च) अर्धस्वर व का परिवर्तन प्रायः ब में तथा य का परिवर्त्तन ज में हुआ है। जैसे—वधू—बहू, वारिद >बादल, वाटिका >बाड़ी, यमुना > जमुना, यंत्र >जंतर, योत्र >जोत।

(छ) प का परिवर्त्तन विशिष्ट है। प का सामान्यतः तो फ मिलता है लेकिन कई स्थानों पर यह व में परिणत होकर क्रमशः उ और औ हो जाता है। जैसे—परशु >फरसा, कपर्द >कौड़ी इत्यादि।

(३) संयुक्त व्यंजन सम्बन्धी नियम :—

बीम्स ने संयुक्त व्यंजनों के इतिहास को समझने के दृष्टिकोण से व्यंजनों का दो वर्ग किया—(१) बलवान व्यंजन (२) बलहीन व्यंजन। बलवान के अन्तर्गत पंचवर्गों (कवर्ग-पवर्ग) के प्रथम चार वर्णों को माना तथा बलहीन के अन्तर्गत पांच अनुनासिक तथा अन्तस्थ और उष्म ध्वनियों को माना। इस तरह संयुक्त व्यंजनों के तीन वर्ग हो गये—(१) बलवान + बलवान, (२) बलवान + बलहीन और (३) बलहीन + बलहीन। इनके परिवर्तन के सम्बन्ध में बीम्स ने नियम दिये कि—

(१) बली संयुक्त में प्रायः पहले का लोप होता है। जैसे सप्त में प् का लोप होगा।

(२) बलहीनों में जो सर्वाधिक दुर्बल होगा उसी का लोप होगा।

(३) मिश्र में प्रायः बलहीन का लोप होगा।

हिन्दी में बलवान और बलहीन व्यंजनों के चार वर्ग हैं—

(१) स्पर्श, (२) अनुनासिक, (३) अन्तस्थ और (४) उष्म। इन चारों के योग से जो युग्म बनेंगे उनके परिवर्त्तन का नियम इस प्रकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी में ध्वनि-परिवर्त्तन विषयक नियम

(१) स्वर-परिवर्त्तन सम्बन्धी नियम—

(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम—संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यंजन के पूर्व ह्रस्व स्वर रहने पर उन संयुक्त व्यंजनों में से एक रह जाता है और मात्रागत कमी को पूरा करने के लिए पूर्ववर्त्ती वर्ण को दीर्घ कर दिया जाता है। इसे ही क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम कहते हैं। इसमें प्रायः अ का आ, इ का ई एवं ए और उ का ऊ तथा ओ हो जाता है।

जैसे—

अ >आ—सर्प >सप्प >साँप, सप्त >सत्त >सात, कर्म >कम्म >काम, अष्ट >अट्ठ >आठ।

इ >ई—भिक्षा >भिक्ख >भीख, शिक्षा >सिक्ख >सीख।

इ >ए—छिद्र >छिद्द >छेद, विल्व >बिल्ल >बेल।

उ >ऊ—पुत्र >पुत्त >पूत, अंगुष्ठ >अंगुट्ठ >अंगूठा।

उ >ओ—कुष्ट >कुड्ढ >कोढ़, पुष्कर >पुक्खर >पोखर।

(ख) संस्कृत स्वर ऋ का विकास अ, इ, उ में हुआ है। जैसे—
कृष्ण >कन्हैया, वृश्चिक >बिच्छू, वृद्ध >बुड्ढ, बुड्ढा इत्यादि।

(२) व्यंजन-परिवर्तन सम्बन्धी नियम—

(क) महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन—सामान्यतः संस्कृत की महाप्राण ध्वनियाँ (शब्द के आदि में आनेवाली महाप्राण ध्वनियों को छोड़कर) लुप्त होकर हकार में परिणत हो जाती हैं। अर्थात् महाप्राण ध्वनियों का ह हो जाता है। जैसे—मेघ >मेह, मुख >मुँह, आखेट >अहेर, दधि >दहा, गर्दभ >गदहा, आभीर >अहीर।

(ख) घोषीकरण—संस्कृत की अल्पप्राण अघोष स्पर्शी ध्वनियाँ (शब्द के आरंभ में आनेवाली को छोड़कर) हिन्दी में घोष अल्पप्राण स्पर्शी या स्पर्श-संघर्षी हो गयी हैं। जैसे—काक >काग, शकुन >सगुन, घोटक >घोड़ा।

(ग) ण का न होना—संस्कृत, प्राकृत आदि का ण हिन्दी में प्रायः न हो गया है। जैसे—चणक >चना, कंकण >कंगन, कर्ण >कान।

(घ) म-नियम—म के प्रयोग की स्थिति विशिष्ट है। संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले म का विकास हिन्दी में व अथवा वँ के रूप में हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे—आमलक >आँवला, ग्राम >गांव, श्यामल >सांवला। कुछ शब्दों में यह व तथा उ में परिणत होकर फिर औ बन गया है। जैसे वामन >बौना, भ्रमर >भँवर >भौंरा।

(ङ) उष्म नियम—उष्म ध्वनियों श, ष का विकास प्रायः स में हुआ है। जैसे—शाक >साग, श्यालक >साला, वर्ष >बरस, आषाढ़ >असाढ़। श, ष, स का परिवर्त्तन ह में भी हुआ है। जैसे—केशरी, केसरी >केहरि, दश, दस >दह, पाषाण >पहाड़। ष का रूपान्तरण ख में भी हुआ है। पाषंड > पाखंड, मीन-मेष > मीन-मेख।

(च) अर्धस्वर व का परिवर्तन प्रायः ब में तथा य का परिवर्त्तन ज में हुआ है। जैसे—वधू—बहू, वारिद >बादल, वाटिका >बाड़ी, यमुना > जमुना, यंत्र >जंतर, योत्र >जोत।

(छ) प का परिवर्त्तन विशिष्ट है। प का सामान्यतः तो फ मिलता है लेकिन कई स्थानों पर यह व में परिणत होकर क्रमशः उ और ओ हो जाता है। जैसे—परशु >फरसा, कपर्द >कौड़ी इत्यादि।

(३) संयुक्त व्यंजन सम्बन्धी नियम :—

बीम्स ने संयुक्त व्यजनों के इतिहास को समझने के दृष्टिकोण से व्यंजनों का दो वर्ग किया—(१) बलवान व्यंजन (२) बलहीन व्यंजन। बलवान के अन्तर्गत पंचवर्गों (कवर्ग-पवर्ग) के प्रथम चार वर्णों को माना तथा बलहीन के अन्तर्गत पांच अनुनासिक तथा अन्तस्थ और उष्म ध्वनियों को माना। इस तरह संयुक्त व्यंजनों के तीन वर्ग हो गये—(१) बलवान + बलवान, (२) बलवान + बलहीन और (३) बलहीन + बलहीन। इनके परिवर्तन के सम्बन्ध में बीम्स ने नियम दिये कि—

(१) बली संयुक्त में प्रायः पहले का लोप होता है। जैसे सप्त में प् का लोप होगा।

(२) बलहीनों में जो सर्वाधिक दुर्बल होगा उसी का लोप होगा।

(३) मिश्र में प्रायः बलहीन का लोप होगा।

हिन्दी में बलवान और बलहीन व्यंजनों के चार वर्ग हैं—

(१) स्पर्श, (२) अनुनासिक, (३) अन्तस्थ और (४) उष्म। इन चारों के योग से जो युग्म बनेंगे उनके परिवर्त्तन का नियम इस प्रकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) स्पर्श + स्पर्श—दो स्पर्शों का योग होने पर पहला लुप्त होगा और पूर्ववर्त्ती वर्ण दीर्घ हो जायगा। जैसे—सप्त > सत्त > सात। दुग्ध > दुद्ध > दूध।

(२) स्पर्श + अनुनासिक—इस स्थिति में स्पर्श के पहले आने पर अनुनासिक का लोप होता है। जैसे—अग्नि > अग्गि > आग। ज्ञ (ज् + न्) का परिवर्त्तन या तो ग्य में होता है या न में। जैसे—आज्ञा > आग्या। राज्ञी > रानी। अनुनासिक के पहले और स्पर्श के बाद में रहने पर अनुनासिक लुप्त तो होता है मगर पूर्व स्वर अनुनासिक हो जाता है। जैसे—चन्द्र > चाँद।

(३) स्पर्श + अन्तस्थ—इस स्थिति में अन्तस्थ पहले रहे या बाद में मगर लोप उसी का होता है। जैसे—व्याघ्र > बाघ, योग्य > जोग, पक्व > पक।

उपनियम—दंत्य स्पर्श वर्ण का अन्तस्थ से संयोग होने पर अन्तस्थ लुप्त हो जाता है और साथ के स्पर्श व्यंजन में इस प्रकार का परिवर्त्तन होता है—

दंत्य + य् > तालव्य स्पर्श (चवर्ग) में जैसे—सत्य > सच, नृत्य > नाच
दत्य + र् > मूर्द्धन्य स्पर्श (टवर्ग) में जैसे—कर्तरी > कटारी, कपर्द > कौड़ी
दंत्य + व > ओष्ठ्य स्पर्श (पवर्ग) में जैसे—द्वादश > बारह।

(४) स्पर्श + उष्म—इसमें लोप उष्म का होता है और अल्पप्राण स्पर्श महाप्राण हो जाता है। जैसे—अक्ष > अक्ख > आँख। हस्त > हत्थ > हाथ, पश्चिम > पच्छिम।

(५) नासिक्य + नासिक्य—यह विरल स्थिति है और कोई परिवर्तन भी नहीं होता। दोनों यथावत् रह जाते हैं। जैसे—जन्म > जनम।

(६) अनुनासिक + अन्तस्थ—इसमें अंतस्थ का लोप हो जाता है। क्योंकि उपर्युक्त दोनों बलहीनों में अन्तस्थ ज्यादा बलहीन है। जैसे—शून्य > सूना, कर्ण > कान, कर्म > काम।

(७) अनुनासिक + उष्म—इसमें तीन विकल्पात्मक स्थितियाँ हैं। कभी अनुनासिक लुप्त होता है, कभी उष्म और कभी दोनों रह जाते हैं। विरल स्थितियों में उष्म ह् में परिणत हो जाता है। यथा—श्मशान > मसान (उष्म श का लोप), रश्मि > रास (अनुनासिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

म का लोप) स्नेह > सनेह (दोनों की सत्ता) कृष्ण > कान्ह (ष् का ह में परिवर्त्तन)।

(८) अन्तस्थ + अन्तस्थ—यहाँ भी वैकल्पिक स्थिति है। कभी एक अन्तस्थ लुप्त होता है और कभी दोनों रह जाते हैं। जैसे—मूल्य > मोल, व्रत > बरत, सूर्य > सूरज।

(९) अंतस्थ + उष्म—यहाँ भी उपर्युक्त प्रकार की वैकल्पिक स्थिति है। जैसे—पार्श्व > पास, जिह्वा > जीभ, श्याला > साला।

इसके अतिरिक्त स्वर तथा व्यंजन दोनों में आगम, लोप और विपर्यय की स्थिति होती है जो शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में होता है।

हिन्दी ध्वनियों का इतिहास-विकास

स्वर :—

अ—सं० अ, स्वराघात रहित आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ओ, अरबी-फारसी अ तथा अंग्रेजी आॅ, ए ध्वनियों का परिवर्त्तन हिन्दी अ में हुआ है। जैसे—आभीर > अहीर, परीक्षा > परिक्खा > परख, नारिकेल > नारियल, आॅफिसर > अफसर, एलबम > अलबम आदि। कुछ शब्दों में अ का आगम हुआ है। जैसे—भक्त > भगत, स्तंभित > अचंभित।

आ—सं० आ, अ, अक (सार्थे प्रत्यय) ऋ, फारसी-तुर्की अह् आदि का विकास हिन्दी आ में हुआ है। जैसे—काक > काग, कार्य > कज्ज > काज, चक्र > चक्क > चक्का, अंचल > आँचल, चणक > चना, पूपक > पूअअ > पूआ, चित्रक > चित्रअ > चीता, नृत्य > नाच। दारोगह् (दारोगः) दारोगा, किनारः > किनारा इत्यादि।

इ—सं० अ, इ, ई, ऋ, ए तथा फारसी-तुर्की इ, पुर्तगाली ए, अंग्रेजी ए का विकास इ में हुआ है। जैसे—अम्लिका > अम्बिलिया > इमली, मृत्तिका > मिट्टिआ > मिट्टी। गोपन्द्र > गोविन्द।

ई—सं० इ, ई, इका, ऋ, ॠ फारसी-तुर्की इ, ई तथा अंग्रेजी इ आदि का परिवर्त्तन ई में हुआ है। जैसे—तीक्ष्ण > तिक्ख > तीखा, इक्षु > इक्खु > ईख, जिह्वा > जिब्भ > जीभ, होलिका > होलिआ > होली, गृद्ध > गिद्ध > गीध इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उ—सं० उ, ऊ, अ, ऋ तथा फारसी-तुर्की-अंग्रेजी—उ का हिन्दी उ में विकास हुआ है। जैसे—उड्ड >उड >उड़, प्रभूत >बहुत्त >बहुत, मधूक > महुअ >महुआ, पश्च >पुच्छ >पूँछ, विरूप >बुरुअ >बुरा, वृद्ध > बुड्ढ़ >बुड्ढ़ा।

ऊ—उ, ऊ, ऋ, औ, उक, उका, इक आदि का उ में विकास हुआ है। जैसे—पुत्र >पुत्त >पूत, सूत्र >सुत्त >सूत, बालुका >बालुआ >बालू, गैरिक >गरअ >गेरू, पौष >पुस्स >पूस।

ए—सं० ए, ऐ, अ, इ, अो तथा अय का विकास ए में हुआ है। जैसे—क्षेत्र >खेत्त >खेत, तैल >तेल, सन्धि >सेंध, छिद्र >छिद्द >छेद, गोधूम >गेहूँ, त्रयोदश >तेरस >तेरह।

ऐ—सं० ऐ, इ, अय, तुर्की तथा फारसी अइ का विकास ऐ में है। जैसे—चैत्र >चइत्त >चैत। नयन >नैन।

ओ—सं० ओ, औ, अ, उ, ऊ, व, उप आदि का विकास ओ में हुआ है। जैसे—ओष्ठ >ओट्ठ >ओठ, होंठ, पुष्कर >पुक्खर >पोखर, मूल्य >मोल्ल > मोल, सौभाग्य >सोहग्ग > सोहाग, स्वर्ण > सोण्ण > सोन, सोना, उपल + क >उवल + अ >ओला।

औ—सं० औ, अय, आम, अउ, अव, आदि का विकसित रूप औ है। गौरव >गौरव, सपत्नी >सौत, अपर >अवर >और, चामर >चौर, वामन >बौना, यव >जौ, चतुष्क >चउक्क >चौक।

व्यंजन :—

क—संस्कृत क्य, क्र, क्ल, क्व, क्म, क्न, त्क, त्क्र, कक, र्क, स्क इत्यादि ध्वनियों का परिवर्त्तन क में हुआ है। जैसे—माणिक्य, माणिक्क > मानिक, क्रोश >कोस >कोस, चक्र >चक्क >चाक, स्कन्ध >कंधअ > कंधा, पक्व >पक्क >पाक, रुक्म >रुक्क >रोक, चिक्कण >चिक्कण > चिकना, कर्कर >कंकड़, वल्कल >वक्कल >बाकल।

ख—सं० ख्य, ख्र, क्ष, क्ष्य, क्षण, क्ष्म, ख्न, स्क, स्ख, ष्क, क्ख, र्ख, ष्यं, ष्य इत्यादि की परिणति ख में हुई है। जैसे—तीक्ष्ण >तिक्ख >तीखा, व्याख्यान >वक्खान >बखान, पुष्कर >पोक्खर >पोखर, क्षीर >खीर, लक्ष्मण >लक्खमण >लखन इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग—सं० ग्य, क्, घ, ग्र, ग्ल, ग्व, ग्न, द्ग, द्ग्र, र्ग, ल्ग इत्यादि से विकसित। जैसे—भाग्य >भाग, अग्र >अग्ग >आगे, अग्नि >अग्गि >आग, मुद्ग > मुग्ग >मूंग, कन्दुक >गेंदुअ >गेंद, घट >गढ़ >गढ़ + ना (क्रिया) इत्यादि।

घ—सं० घ्य, घ्र, घ्न, द्घ, र्घ, र्घ्य इत्यादि से विकसित। जैसे—गृह >घर, व्याघ्र >बाघ, उद्घाट >उग्घाड़ >उघाड़, अर्घ्य >अरघ इत्यादि।

च—च्य, त्य, च्य, र्च, र्च्य इत्यादि की परिणति हिन्दी च में हुई है। जैसे—सत्य >सच्च >साँच, कूर्चिका >कूँची, उच्च >ऊँचा इत्यादि।

छ—सं० च्छ, छ, र्च्छ, श्च, श्र, त्स, प्स आदि का विकास। कच्छपक > कच्छवअ >कछुआ, क्षमा >छमा, लक्ष्मण >लछमन, उत्साह > उच्छाह >उछाह इत्यादि।

ज—ज्य, द्य, र्य, य्य, ग्ज, ज्र, ज्व, ज्म, र्ज, र्ज्य आदि से। कार्य >कज्ज > काज, अद्य >अज्ज >आज, कज्जल >काजल, गुर्जर >गुज्जर >गूजर इत्यादि।

झ—सं० ध्य, क्ष, ह्य का रूपान्तरण झ में हुआ है। संध्या >संझ >सांझ।

ट—सं० त्र, र्त, ट्र, ट्व, ह, ष्ट, ट्य आदि का परिवर्तन। चित्र >छींट, कर्त्त >कट्ट >काट, तिलक >टीका, हट्ट >हाट, अकाट्य >अकाट, काष्टफल >कटहल, लिंगपट्टिका >लिंगवट्टिआ >लंगोटी। उष्ट्र > उट्ट >ऊंट।

ठ—र्थ, ट्ठ, ठ्य, ष्ठ, ष्ट, स्थ इत्यादि से। जैसे—अंगुष्ट >अंगुट्ठ >अंगूठा, ग्रंथि >गंठि >गांठ इत्यादि।

ड, ड़—र्द, घ्र, ड्र, ड्य, ड्म आदि। जैसे—घोटिका >घोडिअ >घोड़ी, दोलिका >डोली, दंश >डँस इत्यादि।

ढ, ढ़—र्घ, घ्र, ढ, ढ्य ड्ढ इत्यादि से। वृद्ध >वुड्ढअ >बुड्ढा, बूढ़ा; अर्द्धतृतीय >अडढ़तिय >अड्ढइ >अढाई, ढाई, शिथिल >ढील।

त—त्र, त्व, त्न, क्त, वत्र, त, र्त, प्त इत्यादि से। जैसे—सप्त >सत्त >सात, त्रीणि >तिण्णि >तीन, त्वरित >तुरत, आदित्यवार >इतवार, पुत्त-लिका >पुतली, कार्तिक >कातिक, वर्त्तिका >वत्तिआ >बत्ती, भक्त > भगत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थ—स्त, स्थ, त्थ, र्थ इत्यादि का परिवर्त्तन थ में हुआ है। जैसे—पुस्तक > पोत्थिअ > पोथी, हस्त > हत्थ > हाथ, सार्थ > सत्थ > साथ, मत्थनिका > मत्थणिआ > मथनी।

द—द्र, द्व, द्न, द्य, ब्द, द्द, र्द इत्यादि से। जैसे—द्रम्म > दम्म > दाम, द्रोणक > दोणअ > दोना, चतुर्दश > चउद्दह > चौदह, द्वौ > दो, चन्द्र > चन्द > चाँद इत्यादि।

ध—ध्र, ध्व, ध्न, द्ध, ब्ध, र्ध इत्यादि से। अर्द्धक > अद्धअ > आधा, गृध्र > गिद्ध > गीध, दुग्ध > दुद्ध > दूध।

प—त्व, त्म, प्य, प्र, प्ल, प्व, प्न, प्प, र्प, ल्प इत्यादि। जैसे—सर्प > सप्प > साँप, उत्पद्य > उप्पज्ज > उपज, पिप्पल > पिप्पल > पीपल, स्पर्श > परस, वाष्प > भाप, आत्मन > अप्पा > आपा > आप इत्यादि।

फ—प, स्प, स्फ, ष्प इत्यादि। जैसे—स्फूर्ति > फूर्ती, परशु > फरसा, पाश > फाँस, वाष्प > भाप, भाफ इत्यादि।

ब—द्व, व्य, ब्ब, भ, प, व्र, ब्र, र्व, ब्भ आदि से। जैसे—द्वादश > बारह, वाटिका > बाड़ी, व्याघ्र > बग्घ > बाघ, निम्बुक > निम्बुअ > नींबू, अभ्रक > अबरख, प्रा० रब्ब > हि० राब, सर्व > सब्ब > सब इत्यादि।

भ—म्य, भ्र, म, प, ब, र्भ, ह्व का परिवर्त्तन भ में हुआ है। जैसे—भ्रमर > भवँरअ > भौंरा, महिष > महिस > भैंस, अपि > भी, गर्भिणी > गब्भिणि > गाभिन, जिह्वा > जिब्भा, जिब्भं > जीभ।

न—ण, ण्य, ज्ञ, र्ण, आदि का परिवर्त्तन न में हुआ है। जैसे—विज्ञप्तिका > विण्णतिआ > विनती, चणक > चणअ > चना, शून्य > सुन्न > सूना, कर्ण > कण्ण > कान। इत्यादि।

म—म्र, श्म, व, र्म, म्ब, भ आदि का परिवर्त्तन म में होता है। जैसे—आम्र > आम, श्मश्रु > मुच्छु > मूंछ, बकुलश्री > बउलसिरी > मौलश्री, वल्लभ > बालम, निम्ब > णिम्म > नीम इत्यादि।

ल—सं० य, ल्ल, र, र्ल, द्र, ड़ आदि का परिवर्तन ल में हुआ है। जैसे—यष्टिका > लट्ठिआ > लाठी, भल्लुक > भल्लुअ > भालू, हरिद्री > हलिद्दी > हल्दी, दुर्लभ > दुल्लह > दुलहा, तडाग > तडाअ, तलाब, तालाब इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र—सं० ऋ, द, ल, ट का परिवर्त्तन र में हुआ है तथा कुछ शब्दों में र का आगम भी हुआ है। जैसे—ऋक्ष >रिच्छ >रीछ, एकादश >ग्यारह, प्रक्षाल >पक्खाल, पखार, वाटिका >वाडिआ >वाड़ी, बारी इत्यादि।

स—सं० स्व, श, ष, श्य, स्य, स्र, स्न, र्श, र्स, र्ष, श्म आदि का परिवर्त्तन स में हुआ है। जैसे—गोस्वामी >गोसाईं, शाटिका >साडिआ >साड़ी, शाक > साग, वर्ष >बरस, कांस्य >कँस्स >काँसा, श्वास >सास >साँस, श्यामल >साँवलअ >साँवला।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिन्दी तक आने में स्वर व्यंजनों में समीकरण की प्रवृत्ति के कारण पर्याप्त परिवर्त्तन हुआ है। संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों को इस आधार पर व्यापक पैमाने पर सरल किया गया है। यहाँ हिन्दी ध्वनियों के इतिहास-विकास के सम्बन्ध में डॉ० हरदेव बाहरी के मूल्यवान मत का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। वे कहते हैं—'प्राचीन आर्य भाषा के उच्चारण की जो बहुत बड़ी कठिनाई थी, उसे मध्य भारतीय आर्य-भाषाओं ने समीकरण के द्वारा दूर कर दिया। भारतीय भाषा-शास्त्र के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसका आरम्भ पालि से हुआ और जिसने प्राकृत से आगे चलकर हिन्दी को हिन्दी बनाया। इस एक प्रवृत्ति के कारण सहस्रों शब्द संस्कृत से बिछुड़कर तद्भव रूप में आ गए। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के साथ सभी आधुनिक आर्य भाषाओं के बहुत बड़े शब्द-भंडार को समझने की यह नियामक कुंजी है। समीकरण की प्रक्रिया ने पहले पालि की संस्कृत से भिन्न सत्ता प्रतिष्ठित की। इस प्रक्रिया का पूर्ण विकास प्राकृत में आकर हुआ जब कि संयुक्त व्यंजन नियमतः द्वित व्यंजन में परिवर्तित हो गये। अपभ्रंश में इस द्वित्त व्यंजन की जगह एक सामान्य व्यंजन और उससे पूर्व के स्वर का दीर्घीकरण आरम्भ हुआ। हिन्दी में इस नयी प्रक्रिया की परिणति हुई—पश्चिम में आंशिक और पूर्व में लगभग सम्पूर्ण और व्यापक।'[१]

विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्त्तन

हिन्दी शब्द-भंडार में एक महत्वपूर्ण अंश विदेशी शब्दों का है। ये विदेशी शब्द समय-समय पर विदेशियों के भारत पर आक्रमण और उनके द्वारा स्थापित शासन के कारण आए हैं। इन विदेशी शब्दों को हिन्दी में स्वीकार

१. हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, पृ० ११०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने की कोई सर्वमान्य सीमा नहीं है । जो लेखक जितने प्रचलित विदेशी शब्दों से परिचित हैं उन सबको अपने प्रयोग की सीमा मानता है लेकिन दूसरे लेखक या जन-सामान्य के लिए उन सभी शब्दों को हिन्दी में गृहीत मान लेने में कठिनाई होती है । फिर भी शब्दों का एक अंश तो ऐसा है ही जो सामान्यत: सब लोगों के द्वारा प्रयुक्त होता है । इन विदेशी शब्दों को हिन्दी ने अपनी प्रकृति और भाषिक गठन के अनुरूप ग्रहण किया है । इस क्रम में शब्दों की ध्वनियों में परिवर्त्तन हुआ है । यहाँ इन्हीं ध्वनि-परिवर्त्तनों पर विचार किया जाता है ।

हिन्दी में विदेशी शब्दों के कई स्रोत हैं—(१) अरबी, (२) फारसी, (३) तुर्की, (४) अंग्रेजी, (५) फ्रेंच, (६) पुर्त्तगाली, (७) डच तथा (८) चीनी-जापानी आदि के दो-चार शब्द । इनमें से प्रधानता अरबी-फारसी और अंग्रेजी शब्दों की है । यहाँ दो वर्गों के अन्तर्गत इन पर विचार किया जा रहा है । प्रथम वर्ग में अरबी, फारसी और तुर्की हैं तथा दूसरे वर्ग में अंग्रेजी ।

अरबी-फारसी शब्दों में ध्वनि परिवर्तन:—

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० चटर्जी आदि विद्वानों का मत है कि तुर्की और अरबी के शब्द फारसी के माध्यम से हिन्दी में आए । डॉ० भोलानाथ तिवारी का मत है कि अरबी के सम्बन्ध में तो यह ठीक है लेकिन तुर्की के सम्बन्ध में नहीं । क्योंकि तुर्क बाबर के साथ भारत आए और यहाँ अपना शासन स्थापित करने में सफल हुए । अत: तुर्की शब्द सीधे आए होंगे । यहाँ हम दोनों मतों को मानते हुए केवल अरबी-फारसी-तुर्की शब्दों में होने वाले ध्वनि-परिवर्त्तनों पर विचार कर रहे हैं ।

(१) फारसी स्वर ध्वनियों में अ अग्र विवृत स्वर था, हिन्दी में यह अर्द्ध विवृत मध्य स्वर हो गया है । जैसे—

फारसी—क़ॅदॅम : हिन्दी — कदम
अॅन्दाज— ” अन्दाज इत्यादि ।

(२) फारसी का संयुक्त स्वर अई हिन्दी में ऐ (अऍ) हो गया है । जैसे—खइर—खैर, शइतान—शैतान इत्यादि ।

(३) तुर्की-फारसी और अरबी शब्दों का अनुच्चरित ह् (हा-इ-मुस्तफ़ी) अपने पूर्ववर्त्ती अ से मिलकर हिन्दी में आ हो गया है । जैसे—किनारह्—किनारा, तमाशह्—तमाशा, बेचारह्—बेचारा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) स्वर-लोप तथा स्वरागम के कारण भी हिन्दी में आकर फारसी शब्दों में परिवर्त्तन हो गया है। जैसे—हुक्म—हुकुम, मुवाफ़िक़्—माफिक ।

(५) व्यंजन ध्वनियों में फारसी दंत्य संघर्षी ध्वनि स़ हिन्दी में वर्त्स्य संघर्षी स हो गया है। जैसे—साहब, सफर, सलाह, आसान इत्यादि ।

(६) फारसी की तीन ध्वनियों ज़े, झे और जाल हिन्दी में ज़ हो गयीं। यों तो ज़ फारसी से गृहीत ध्वनि है लेकिन यह उपर्युक्त किसी ध्वनि से नहीं मिलती है। हिन्दी में इस ज़ का भी ज हो गया है। जैसे—कागज़—कागज, ज़रा—जरा, ज़हर—जहर ।

(७) फारसी की न, च, ज, य, र और ल ध्वनियों का हिन्दी में आकर केवल उच्चारण-स्थान परिवर्त्तित हो गया है ।

(८) कुछ फारसी शब्दों का हिन्दी में आकर ह्रस्वीकरण हो गया है। जैसे—नव्वाब—नवाब, हक्क—हक, जिद्द—जिद ।

(९) लोप के कारण भी कुछ ध्वनियां बदली हैं—जैसे—ब्रोय—बू, मज़दूर—मजूर ।

(१०) मूर्द्धन्यीकरण से परिवर्त्तन—जैसे—शरक—सड़क ।

(११) विपर्यय— कुफ्ल़—कुल्फी, फ़तीलह्—पलीता ।

(१२) अंत्य न का आनुनासिक हो गया है—जैसे—हारून—हारूँ, कारून—कारूँ, खान—खाँ इत्यादि ।

इस तरह अरबी-फारसी-तुर्की की कठिन ध्वनियाँ हिन्दी की सरल प्रकृति के अनुरूप ढल गयीं। विपरीत इसके, जो ध्वनियाँ सरल थीं वे सहज रूप में यथावत् गृहीत हो गयीं। उनमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। एक बात और हुई कि अरबी-फारसी शब्दों का हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुरूप व्याकरणिक परिवर्त्तन भी हुआ यथा मकान का बहुवचन फारसी में मकानात् होता है, किन्तु हिन्दी ने त को लुप्त कर अपना ओं लगाकर ही उसे बहुवचन बनाया है। इस वर्ग की ध्वनियों के विषय में एक बात और है। इस वर्ग की अरबी और तुर्की का भारतीय भाषा-परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं है, जब कि फारसी भारोपीय कुल की ही ईरानी शाखा की भाषा है। अवेस्ता तथा ऋगवेद की भाषा में समता द्रष्टव्य है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंग्रेजी शब्दों में ध्वनि-परिवर्त्तन :—

अंग्रेजी शासन और प्रभुत्व के कारण भारत में अंग्रेजी पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति हुई। शासक-वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग यहाँ के सामान्य जन से अपने को विशिष्ट समझने लगे। यह विशिष्टता एक रूप में भाषा में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग द्वारा भी व्यंजित होती है। स्वतंत्रता के बाद तो इस देश में अंग्रेजी के प्रति भक्ति और बढ़ी है।

हिन्दी में लगभग चार-पाँच सौ शब्द अंग्रेजी के हैं। ये शब्द सम्पूर्ण जन-समुदाय में समग्र रूप से नहीं बल्कि व्यवसाय गत भेद के कारण अलग-अलग वर्गों में प्रचलित हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो सभी क्षेत्रों में समान रूप से प्रचलित हैं। हिन्दी में ग्रहण करने के क्रम में इन शब्दों की ध्वनियों में कुछ परिवर्त्तन हो गया है। अंग्रेजी की निम्न ध्वनियों में परिवर्त्तन हुआ है।

(१) अंग्रेजी में अ के दो उच्चारण हैं। एक अर्द्ध विवृत मध्य स्वर है और दूसरा उदासीन। इनको क्रमशः Λ और ə से व्यक्त करते हैं। हिन्दी में इन दोनों की जगह अ का प्रयोग होता है। कुछ शब्दों में पहला अ आ तथा दूसरा अ आ एवं ए हो जाता है। जैसे—सलाद, ड्रामा, करेंट।

(२) अंग्रेजी का अर्द्ध संवृत इ हिन्दी में संवृत इ हो जाता है। कभी-कभी मध्यवर्त्ती इ और प्रायः अंत्य इ का परिवर्त्तन ई में हो जाता है। जैसे—मील, अर्दली इत्यादि।

(३) अंग्रेजी एँ का उच्चारण हिन्दी में इ तथा अ हो गया है। जैसे—डेपुटी—डिप्टी, हॉस्टेल—होस्टल इत्यादि।

इसी तरह ऐं के स्थान पर हिन्दी में शुद्ध ऐ बोलते हैं।
जैसे—बैंण्ड—बैण्ड

(४) अंग्रेजी संयुक्त स्वर एइ हिन्दी में ए हो जाता है। जैसे—मेइल—मेल, रेइल—रेल।

(५) अंग्रेजी संयुक्त स्वर ओउ हिन्दी में ओ हो जाता है। जैसे—होउटेल—होटल, कोउट—कोट।

(६) अइ और अउ—इसके स्थान पर हिन्दी में आइ और आउ हो जाता है। जैसे—पइप—पाइप, टइम—टाइम, अउट—आउट, टउन—टाउन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७) अंग्रेजी ध्वनियाँ क्, प् और ट् ईषत् महाप्राण होती हैं। हिन्दी में आकर ये शुद्ध अल्पप्राण बन जाती हैं।

(८) अंग्रेजी ट और ड ध्वनियाँ हिन्दी में त और द हो जाती हैं। जैसे—अगस्ट—अगस्त, डॉजेन—दर्जन, एकेडमी—अकादमी, गार्ड—गारद।

(९) अंग्रेजी में व के लिए दो ध्वनियाँ हैं V और W। हिन्दी में इनके लिए व अर्थात् V का ही ज्यादा प्रयोग होता है। जैसे—लव, वेटर इत्यादि। कहीं-कहीं हिन्दी की प्रकृति के अनुसार व का ब हो जाता है। जैसे—वार्निश—बार्निश।

(१०) झ अंग्रेजी में श का घोष रूप है। हिन्दी में इसके स्थान पर ज हो जाता है। जैसे—रूझ—रूज, गैरिझ—गैरिज इत्यादि।

(११) अंग्रेजी का र हिन्दी में आकर अनेक स्थानों पर अनुच्चारित रह जाता है। जैसे—फर्स्ट—फस्ट, रिपोर्ट—रपट, रिपोट।

(१२) घोषीकरण के द्वारा परिवर्त्तन। जैसे—कार्क—काग, रिक्रूट—रंगरूट।

(१३) आगम :—स्टेशन—इस्टेशन, स्कूल—इस्कल, ब्रश—बुरुश, ग्लास—गिलास, टोमेटो—टमाटर।

(१४) लोप :—सेप्टेम्बर—सितम्बर, पंक्चर—पंचर।

(१५) विपर्यय :—सिगनल—सिगल, कोलतार—तारकोल इत्यादि।

(१६) अंग्रेजी में अंतिम इ के बाद आने वाले र का उच्चारण प्रायः नहीं होता है। जैसे—फादऽ। लेकिन हिन्दी में पूरा उच्चारण होता है—फादर।

अंग्रेजी शब्दों में ध्वनि-परिवर्त्तन की ये ही मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

•

पु. नं. १७८८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थ प्रकरण

व्याकरण-भाग

संज्ञा

(क) मूल तथा विकृत रूप—

व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि शब्द विकारी होते हैं, क्योंकि, व्यवहार में लिंग, वचन, कारक आदि के प्रभावस्वरूप इनके मूल रूपों में सामान्यतः विकार आ जाता है।

जब संज्ञा शब्द अपने सामान्य रूप में प्रयुक्त होते हैं तब उन्हें मूलरूप कहते हैं। जैसे राम, घर, हाथी, किताब, कवि इत्यादि। मगर, 'कारक चिह्न लगाने के पूर्व हिन्दी संज्ञा के मूल रूप में जब परिवर्त्तन किया जाता है तो ऐसे रूपों को संज्ञा का विकृत रूप कहते हैं।'[1] जैसे—लड़के, घोड़े, कवियों हाथियों, घरों, लड़कियाँ, लड़कियों इत्यादि। संज्ञा के इस रूप-विकास को हिन्दी भाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति कहा जा सकता है।

हिन्दी संज्ञाओं के इस रूप-विकार को समझने के लिये पृष्ठभूमि के रूप में संस्कृत संज्ञाओं की रूपात्मक स्थिति का ज्ञान अपेक्षित है। क्योंकि संस्कृत संज्ञा-रूपों की तुलना में हिन्दी संज्ञाओं की प्रवृत्ति सरलीकरण की ओर रही है।

संस्कृत में एक संज्ञा के तीन वचनों और आठ कारकों में चौबीस रूप होते हैं। इसके अतिरिक्त लिंग-भेद शब्द-रूपावली को प्रभावित करता है। अर्थात् स्त्रीलिंग या नपुंसक लिंग वाले शब्द की रूपावली वही नहीं होती है जो पुल्लिग शब्द की होती है। जैसे—पुल्लिग 'राम' शब्द का रूप कर्त्ता कारक के तीनों वचनों में रामः—रामौ—रामाः है तो नपुंसक लिंग 'फल' शब्द का रूप इसी कारक में फलम्—फले—फलानि है। इसी प्रकार स्त्रीलिंग शब्द नदी का रूप होगा—नदी—नद्यौ—नद्यः। इतना ही नहीं यदि शब्द एक ही लिंग का है और उसमें अन्त की दृष्टि से भिन्नता है तो उसकी रूपावली

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भिन्न हो जायगी। जैसे राम शब्द अकारान्त पुल्लिग है तो उसका रूप है—रामः—रामौ—रामाः। मगर मुनि शब्द पुल्लिग होने पर भी इकारान्त है अतः इसका रूप हो जायगा—मुनिः—मुनि—मुनयः। इस प्रकार चौबीस शब्द रूपों के अतिरिक्त संज्ञा के कोटिगत भेद और लिंगगत भेद को जानने के बाद ही कोई संस्कृत संज्ञाओं का सही प्रयोग कर सकता है।

संस्कृत की इसी जटिलता के कारण मध्यकालीन आर्य भाषाएँ सरलीकरण की ओर अग्रसर होती हैं। इन भाषाओं में ध्वनि-परिवर्त्तन के द्वारा संस्कृत की भिन्न-भिन्न अन्तवाली संज्ञा कोटियों को तोड़ने का प्रयत्न मिलता है।[1] उदाहरण के लिये संध्या, शय्या आदि शब्द संस्कृत में आकारान्त थे। प्राकृत में उनके परिवर्त्तित रूप सेज्ज आदि अकारान्त हो गये। सरलीकरण की यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में इतनी बढ़ी कि वहाँ संज्ञाएँ प्रधानतः स्वरान्त हो गईं।

हिन्दी में आकर सरलीकरण की यह प्रक्रिया इतनी स्पष्ट हो जाती है कि दोनों का भेद स्पष्ट नजर आने लगता है। अब यदि संस्कृत और हिन्दी संज्ञा रूपों की तुलना करें तो निम्नलिखित अन्तर दृष्टिगत होंगे।

(१) संस्कृत की विभक्तियाँ हिन्दी में स्वतंत्र कारक चिह्न बन गई हैं। उनकी प्रकृति योगात्मक के बदले अयोगात्मक है।

(२) संस्कृत का द्विवचन हिन्दी में गृहीत नहीं हुआ और इस प्रकार आठ रूप अनायास कम हो गये।

(३) नपुंसक लिंग की सत्ता समाप्त हो गई। फलतः लिंग भेद से होनेवाले रूप परिवर्त्तन भी सरल हो गये।

(४) कारक-चिह्नों की स्वतंत्र सत्ता के कारण विभिन्न कारकों के दोनों वचन रूपों में शब्द ज्यों-के-त्यों रह गये। जैसे—घर का—घरों का। आम से—आमों से।

इस प्रकार विभक्तियों के प्रयोग के अतिरिक्त संज्ञा के केवल चार रूप अवशिष्ट रह गये। यथा :—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	घर	घरों
अन्य सभी	घर को, से, के लिए	घरों को, से, के लिए

१. हिन्दी भाषा और उसका इतिहास, डॉ० रामगोपाल शर्मा, पृ० १९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः स्पष्ट है कि हिन्दी की शब्द रूपावली न केवल स्वतंत्र और मौलिक है बल्कि संस्कृत की तुलना में अत्यधिक सरल भी ।

ऊपर हमने निवेदन किया है कि हिन्दी में संज्ञा के केवल चार कारकीय रूप होते हैं जिनमें विभक्तियाँ अलग से लगाकर अन्य रूप बनाये जाते हैं। इन चार रूपों में से कर्त्ता कारक के दोनों वचनों के रूप मूल रूप कहे जाते हैं और अन्य कारकों के दोनों वचनों के रूप विकृत रूप कहे जाते हैं ।

जैसे—

मूल रूप (कर्त्ता कारक)	लड़का	लड़के
विकृत रूप (अन्य कारक)	लड़के	लड़कों

चूंकि ये विकृत रूप सभी संज्ञाओं में समान रूप से प्राप्त नहीं होते इसलिए एतद्विषयक सभी परिवर्त्तन विभिन्न संज्ञाओं के उदाहरण द्वारा नीचे स्पष्ट किये जाते हैं ।

(i) आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाएँ

	रूप		परिवर्त्तक प्रत्यय	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप—	लड़का	लड़के	×	ए
विकृत रूप—	लड़के	लड़कों	ए	ओं

(ii) अन्य पुल्लिंग संज्ञाएँ

मूल रूप—	घर, हाथी—घर, हाथी	×	×
विकृत रूप—	घर, हाथी—घरों, हाथियों	×	ओं, यों

(iii) इकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ

मूल रूप—	जाति, घड़ी—जातियाँ, घड़ियाँ	×	याँ
विकृत रूप—	जाति, घड़ी—जातियों, घड़ियों	×	ओं

(iv) इयान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ—

मूल रूप—	गुड़िया	गुड़ियाँ	×	आँ
विकृत रूप—	गुड़िया	गुड़ियों	×	ओं

(v) अन्य स्त्रीलिंग संज्ञाएँ—

मूल रूप—	पुस्तक, जटा, वस्तु—पुस्तकें, जटाएँ, वस्तुएँ	×	एँ
विकृत रूप—	पुस्तक, जटा, वस्तु—पुस्तकों, जटाओं, वस्तुओं	×	ओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अब तक विद्वानों (डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा उ० ना० तिवारी आदि) ने रूपों के प्रसंग में केवल अविकारी-विकारी ही लिया है। किन्तु संबोधन रूप अविकारी-विकारी रूपों से सर्वथा भिन्न होते हैं। इसीलिए यहाँ उन्हें अलग रखा गया है।'[१] इस टिप्पणी के साथ डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक में संबोधन रूपों के परिवर्तन को अलग रखकर विवेचित किया है। उन्होंने विभिन्न संज्ञा शब्दों के संबोधन रूप देते हुए उनके दो प्रत्ययों की स्थापना की है। ए (जो आकारान्त संज्ञा के विकृत रूप के एकवचन में आता है) तथा ओ जो अन्य सभी संज्ञा रूपों के बहुवचन के साथ आता है। वर्गीकरण की दृष्टि से यह भले ही स्पष्टतापूर्ण लगे मगर इसमें कोई मौलिकता नहीं है। क्योंकि संबोधन का एक प्रत्यय ए तो निश्चित रूप से वही है जो अन्य आकारान्त पुल्लिग शब्दों के विकृत रूप के एकवचन में आता है। रह गया ओ तो इस सम्बन्ध में मुझे दो बातें कहनी हैं। प्रथम यह कि संबोधनात्मक ध्वनियों के उच्चारण में तनाव होता है तथा उनमें नासिका का कोई उपयोग नहीं हो पाता इसलिए बहुवचनात्मक ओं ही सम्बोधन में अनुस्वार रहित होकर ओ के रूप में प्रयुक्त होता है।

दूसरी बात यह कि यदि थोड़ी देर के लिए उपर्युक्त तर्क को छोड़ भी दें तो सामान्य व्यवहार में हम सम्बोधन के लिए क्या सचमुच 'ओ' का प्रयोग करते हैं? बहुत लोग संबोधन को भी अनुस्वारान्त ही बोलते हैं और भाइयो या साथियो के बदले भाइयों और साथियों रूप उच्चरित करते हैं। इसलिए दोनों ही दृष्टि से "ओ" को भिन्न प्रत्यय मानने का कोई औचित्य नहीं दीखता।

इस प्रकार संज्ञा में रूप-विकार लानेवाले कुल चार प्रत्यय प्राप्त होते हैं। एक शून्य को भी प्रत्यय ही मान लें तो संख्या पाँच हो जाती है। ये रूप निम्नलिखित हैं।

(१) शून्य, (२) ए, (३) एँ, (४) आँ, याँ, (५) ओं, यों।
अब हम इनकी व्युत्पत्ति पर विचार करें।

(१) शून्य—आकारान्त एकवचन पुल्लिग संज्ञा के मूलरूप में, अन्य संज्ञाओं के मूलरूप के दोनों वचनों एवं विकृत रूप के एकवचन तथा सभी स्त्रीलिंग शब्दों के एकवचन के मूल तथा विकृत रूपों में शून्य प्रत्यय का प्रयोग

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। अर्थात् शब्दों के मूल रूप ही अवशिष्ट रहते हैं। संस्कृत में इसके लिए स् या विसर्ग का प्रयोग होता है। यह विसर्ग या स् प्राकृत में ओ तथा अपभ्रंश में उ रूप में रूपान्तरित हुआ है। पदान्त स्वर होने के कारण उ हिन्दी में आकर स्वरलोप के प्रवृत्यानुसार लुप्त हो गया। इसी कारण हिन्दी में शब्द का प्रतिपदिक[१] रूप ही एकवचन में प्रयुक्त होता है।

(२) ए—प्रयोग की दृष्टि से इसके दो रूप होते हैं।

(क) आकारान्त संज्ञाओं के वहुवचन मूलरूप में तथा (ख) आकारान्त संज्ञाओं के एकवचन विकृत रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों को हिन्दी के भाषा वैज्ञानिक एक नहीं मानते हैं।

एकवचन ए के सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा केवल इतना कहते हैं कि 'इस विकृत रूप की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः समस्त विद्वानों का एकमत है। यह रूप संस्कृत एकवचन की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवशेष मात्र माना जाता है।'[२] मगर डॉ० वर्मा उन एकवचन रूपों को स्पष्ट नहीं करते जिनसे ये निकले हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'मध्य भाषा काल में सम्बन्ध कारक के चिह्न स्य > स्स > ह तथा अधिकरण कारक के चिह्न स्मिन् > हिं का उपयोग कर्म, सम्प्रदान तथा अपादान कारकों के लिए किया जाने लगा था। अको > अओ रूप से अन्त होने वाले शब्दों में हि, हिं जोड़े जाने पर ह के लोप से अइ शेष रहा और पश्चिमी हिन्दी में यही ए में परिणत होकर विकारी कारकों के एकवचन के प्रत्यय के रूप में गृहीत हुआ। घर जैसे अन्य शब्दों में हि प्रत्यय सर्वथा लोप होकर विकारी कारकों में भी प्रतिपदिक रूप ही रह गया।'[३] (डॉ० तिवारी का उपर्युक्त मत केलाग के मत का समर्थन मात्र करता है।)

डॉ० भोलानाथ तिवारी (उपर्युक्त दो अर्थात् 'स्य' और 'स्मिन्' के अतिरिक्त) तृतीया एकवचन रूप एन (रामेण, बालकेन इत्यादि) तथा सप्तमी एकवचन रूप ए से भी इसका विकास मानते हैं।

---

१. टिप्पणी :—धातु और प्रत्यय के अतिरिक्त जो भी सार्थक मूल शब्द होता है उसे प्रतिपदिक कहते हैं—'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रतिपदिकम्।' जैसे—लड़का, लड़के, लड़कों में जो मूल सार्थक रूप लड़का है वही प्रतिपदिक है।

२. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २४९

३. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ४२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस सम्बन्ध में मैं समझता हूँ कि तृतीया एन से ही ए की व्युत्पत्ति मानना अधिक युक्तिसंगत है। क्योंकि संज्ञा के विकारी रूप के साथ को, से, में, के लिए आदि कारक चिह्नों का प्रयोग बहुलता से होता है। व्याकरण की दृष्टि से जिन वाक्यों में सप्रत्यय संज्ञा का प्रयोग होता है वे प्रायः कर्मवाच्य में होते हैं। संस्कृत के कर्मवाच्य में करण कारक की प्रधानता होती है। जैसे—बालकेन ग्रंथं दीयते। इसलिये यह मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि करण की विभक्ति एन ही कालान्तर में न के व्यंजन लोप नियमानुसार लुप्त होने से विकारी संज्ञा का एकवचन प्रत्यय ए बना। यों अन्य रूपों जैसे—स्मिन्, स्य, आदि का प्रयोग भी हमें अमान्य नहीं है।

ए का दूसरा प्रयोग आकारान्त संज्ञा के बहुवचन मूल रूप के साथ होता है। निश्चय ही एकवचन के लिए प्रयुक्त रूप बहुवचन के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता भले ही उसमें आकारिक एकरूपता क्यों न हो। इसलिए बहुवचन विभक्ति ए का उत्स किसी बहुवचनान्त विभक्ति से ही ढूँढ़ना उचित होगा। हार्नली तथा केलाग दोनों ए को मूलतः एकवचन विभक्ति मानते हैं जिसका प्रयोग बहुवचन में भी चल पड़ा। मगर यह अटकल मात्र है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के करण कारक की विभक्ति एभिः से मानते हैं। एभिः > अहि > अइ > ऐ > ए। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसकी उत्पत्ति सर्वनाम ए (सर्वे) से संभव मानते हैं। मगर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहते। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे संदिग्ध मानते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी चतुर्थी तथा पंचमी के बहुवचन रूप 'एभ्यः' से निष्पन्न होने की सब से अधिक संभावना मानते हैं—एभ्यः > एभि > एहि > एइ > ए।[1] मेरी दृष्टि में इसे ही मान लेने में कोई असंगति नहीं है।

(३) एँ—इसका प्रयोग इकारान्त, ईकारान्त, इयान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं को छोड़कर शेष स्त्रीलिंग संज्ञाओं के बहुवचन मूलरूप के साथ होता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत नपुंसक शब्दों के बहुवचन प्रत्यय आनि से हुआ है। सं० आनि > प्रा० आई > हि० एँ यही विकास की प्रक्रिया है।

(४) आँ—इसका प्रयोग इकारान्त, ईकारान्त तथा इयान्त स्त्रीलिंग संज्ञा के बहुवचन मूल रूप के साथ होता है। वस्तुतः आँ और एँ दोनों एक ही हैं इसलिए इनका मूल भी एक ही है। नपुंसक बहुवचन के प्रत्यय आनि

१. हिन्दी भाषा, डॉ भोलानाथ तिवारी पृ० १६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। अर्थात् शब्दों के मूल रूप ही अवशिष्ट रहते हैं। संस्कृत में इसके लिए स् या विसर्ग का प्रयोग होता है। यह विसर्ग या स् प्राकृत में ओ तथा अपभ्रंश में उ रूप में रूपान्तरित हुआ है। पदान्त स्वर होने के कारण उ हिन्दी में आकर स्वरलोप के प्रवृत्यानुसार लुप्त हो गया। इसी कारण हिन्दी में शब्द का प्रतिपदिक[१] रूप ही एकवचन में प्रयुक्त होता है।

(२) ए—प्रयोग की दृष्टि से इसके दो रूप होते हैं।

(क) आकारान्त संज्ञाओं के बहुवचन मूलरूप में तथा (ख) आकारान्त संज्ञाओं के एकवचन विकृत रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों को हिन्दी के भाषा वैज्ञानिक एक नहीं मानते हैं।

एकवचन ए के सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा केवल इतना कहते हैं कि 'इस विकृत रूप की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः समस्त विद्वानों का एकमत है। यह रूप संस्कृत एकवचन की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवशेष मात्र माना जाता है।'[२] मगर डॉ० वर्मा उन एकवचन रूपों को स्पष्ट नहीं करते जिनसे ये निकले हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'मध्य भाषा काल में सम्बन्ध कारक के चिह्न स्य > स्स > ह तथा अधिकरण कारक के चिह्न स्मिन् > हिं का उपयोग कर्म, सम्प्रदान तथा अपादान कारकों के लिए किया जाने लगा था। अको > अओ रूप से अन्त होने वाले शब्दों में हि, हिं जोड़े जाने पर ह के लोप से अइ शेष रहा और पश्चिमी हिन्दी में यही ए में परिणत होकर विकारी कारकों के एकवचन के प्रत्यय के रूप में गृहीत हुआ। घर जैसे अन्य शब्दों में हि प्रत्यय सर्वथा लोप होकर विकारी कारकों में भी प्रतिपदिक रूप ही रह गया।'[३] (डॉ० तिवारी का उपर्युक्त मत केलाग के मत का समर्थन मात्र करता है।)

डॉ० भोलानाथ तिवारी (उपर्युक्त दो अर्थात् 'स्य' और 'स्मिन्' के अतिरिक्त) तृतीया एकवचन रूप एन (रामेण, बालकेन इत्यादि) तथा सप्तमी एकवचन रूप ए से भी इसका विकास मानते हैं।

---

१. टिप्पणी :—धातु और प्रत्यय के अतिरिक्त जो भी सार्थक मूल शब्द होता है उसे प्रतिपदिक कहते हैं—'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रतिपदिकम्।' जैसे—लड़का, लड़के, लड़कों में जो मूल सार्थक रूप लड़का है वही प्रतिपदिक है।

२. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २४६

३. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ४२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस सम्बन्ध में मैं समझता हूँ कि तृतीया एन से ही ए की व्युत्पत्ति मानना अधिक युक्तिसंगत है। क्योंकि संज्ञा के विकारी रूप के साथ को, से, में, के लिए आदि कारक चिह्नों का प्रयोग बहुलता से होता है। व्याकरण की दृष्टि से जिन वाक्यों में सप्रत्यय संज्ञा का प्रयोग होता है वे प्रायः कर्मवाच्य में होते हैं। संस्कृत के कर्मवाच्य में करण कारक की प्रधानता होती है। जैसे—बालकेन ग्रंथं दीयते। इसलिये यह मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि करण की विभक्ति एन ही कालान्तर में न के व्यंजन लोप नियमानुसार लुप्त होने से विकारी संज्ञा का एकवचन प्रत्यय ए बना। यों अन्य रूपों जैसे—स्मिन्, स्य, आदि का प्रयोग भी हमें अमान्य नहीं है।

ए का दूसरा प्रयोग आकारान्त संज्ञा के बहुवचन मूल रूप के साथ होता है। निश्चय ही एकवचन के लिए प्रयुक्त रूप बहुवचन के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता भले ही उसमें आकारिक एकरूपता क्यों न हो। इसलिए बहुवचन विभक्ति ए का उत्स किसी बहुवचनान्त विभक्ति से ही ढूँढ़ना उचित होगा। हार्नली तथा केलाग दोनों ए को मूलतः एकवचन विभक्ति मानते हैं जिसका प्रयोग बहुवचन में भी चल पड़ा। मगर यह अटकल मात्र है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के करण कारक की विभक्ति एभिः से मानते हैं। एभिः > अहि > अइ > ऐ > ए। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसकी उत्पत्ति सर्वनाम ए (सर्वे) से संभव मानते हैं। मगर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहते। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे संदिग्ध मानते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी चतुर्थी तथा पंचमी के बहुवचन रूप 'एभ्यः' से निष्पन्न होने की सब से अधिक संभावना मानते हैं—एभ्यः > एभि > एहि > एइ > ए।[1] मेरी दृष्टि में इसे ही मान लेने में कोई असंगति नहीं है।

(३) एँ—इसका प्रयोग इकारान्त, ईकारान्त, इयान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं को छोड़कर शेष स्त्रीलिंग संज्ञाओं के बहुवचन मूलरूप के साथ होता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत नपुंसक शब्दों के बहुवचन प्रत्यय आनि से हुआ है। सं० आनि > प्रा० आई > हि० एँ यही विकास की प्रक्रिया है।

(४) आँ—इसका प्रयोग इकारान्त, ईकारान्त तथा इयान्त स्त्रीलिंग संज्ञा के बहुवचन मूल रूप के साथ होता है। वस्तुतः आँ और एँ दोनों एक ही हैं इसलिए इनका मूल भी एक ही है। नपुंसक बहुवचन के प्रत्यय आनि

१. हिन्दी भाषा, डॉ भोलानाथ तिवारी पृ० १६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से इसकी भी उत्पत्ति है। सं० आनि > प्रा० आई, आँ > हि० आँ। यही श्रुति के कारण यां हो जाता है।

(५) ओं—यह सभी स्त्रीलिंग-पुल्लिग शब्दों के बहुवचन विकृत रूप के साथ निर्वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त होता है। इकारान्त, ईकारान्त तथा इयान्त स्त्रीलिंग एवं पुल्लिग शब्दों में श्रुति के कारण यह यों के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे—कवि, हाथी (दोनों पु०)—कवियों, हाथियों। जाति, नदी (दोनों स्त्री०)—जातियों, नदियों। मगर अन्य स्त्रीलिंग-पुल्लिग शब्दों में यह ओं ही रहता है। जैसे—लड़का, फल (दोनों पुं०), लड़कों, फलों। माला, पुस्तक (दोनों स्त्री०)—मालाओं, पुस्तकों। प्राचीन हिन्दी तथा बोलियों में इसके अन, अन्ह, वन, वन्ह, न्ह, न्हि, न्, नि, नु आदि रूप मिलते हैं। जैसे लड़िकन, घोड़वन, देवन्ह इत्यादि। ओं की व्युत्पत्ति संस्कृत के षष्ठी बहुवचन रूप आनाम् से है। सं० आनाम् > पालि आनं > प्रा० एवं अप० आणं, आण > प्राचीन हि० अन, वन > ओ > औं > ओं, यही विकास की प्रक्रिया है।

इन प्रत्ययों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द हैं जो बहुवचन के रूप में, विभिन्न कारकों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कहीं तो वे शब्द ज्यों-के-त्यों हैं और कहीं उनमें थोड़ा विकार आ गया है। मगर अन्ततः उनका संज्ञा शब्दों से पृथक ही अस्तित्व है। जैसे—लोग, वृन्द, गण, जन इत्यादि स्वतंत्र शब्द हैं और मारे (मार+ए), तले (तल+ए), घरे (घर+ए) इत्यादि में स्वतन्त्र शब्द में एकार का योग हो गया है।

(ख) कारक चिह्न[१]

संज्ञादि के साथ क्रिया का सम्बन्ध जोड़नेवाले शब्द कारक कहे जाते हैं :— 'क्रियान्वयी कारकः।' इस दृष्टि से कर्त्ता, कर्म, सम्प्रदान, अपादान, करण और अधिकरण ही ऐसे कारक हैं जिनमें संज्ञा और क्रिया के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसी आधार पर संस्कृत में कारकों की स्वीकृत संख्या छः है। पालि में सम्बन्ध कारक की प्रधानता हुई और बाद में भी रही। इन कारकों की रचना में शब्द के मूल रूपों के साथ जो सम्बन्ध-तत्व जोड़े जाते हैं उन्हें विभक्ति या कारक-चिह्न या परसर्ग कहते हैं। जैसे—'वृक्षात पत्रं पतति' में 'आत' और 'वृक्ष से पत्ता गिरता है' में 'से' कारक-चिह्न हैं।

१. टिप्पणी—इस प्रसंग में कारक चिह्न, कारकीय प्रत्यय और विभक्ति तीनों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप-रचना की दृष्टि से योगात्मक होने के कारण संस्कृत में विभक्तियाँ शब्दों के साथ जुड़ी रहती थीं किन्तु अयोगात्मक प्रकृति के कारण हिन्दी में ये अलग लिखी जाती हैं। दूसरे शब्दों में कहना चाहेंगे कि भाषा का विकासात्मक प्रकृति के कारण संस्कृत से हिन्दी तक आने में ये विभक्तियाँ पर्याप्त परिवर्त्तित हुई हैं।

संस्कृत की कारक-विभक्तियाँ मध्ययुगीन भाषा काल में इतनी घिस गई कि स्पष्ट अर्थाभिव्यक्ति में कठिनाई का अनुभव होने लगा। इस कठिनाई के परिहार के लिए घिसी विभक्तियों के साथ स्वतन्त्र शब्दांशों का भी प्रयोग होने लगा। हिन्दी के कारक-चिह्न इन्हीं घिसी विभक्तियो या स्वतन्त्र शब्दों के अवशिष्ट रूप हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'इनमें अब इतना ध्वनि-परिवर्त्तन और कभी-कभी अर्थ-परिवर्त्तन हो गया है कि इनके मूल रूप को जान पाना कठिन है।'[१] इसके अतिरिक्त 'भाषा के साधारण शब्द-समूह में इनका पृथक अस्तित्व नहीं रह गया है। इसी कारण इन्हें संज्ञा के मूल रूपों के साथ लिखने की प्रवृत्ति हो रही है।'[२] यह प्रवृत्ति कहाँ तक उपयुक्त है, इसपर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सामान्यतः सर्वनामों के साथ ये कारक-चिह्न इस प्रकार मिले हुए हैं कि कहीं तो शब्दों में आकारिक परिवर्तन हो गया है और कहीं इन चिह्नों से युक्त शब्द का स्वतन्त्र अस्तित्व बन गया है। जैसे—मेरा (मैं + का), तुम्हारी (तुम + की) में आकारिक परिवर्त्तन है तथा इसका, आपका आदि में आप और का मिलकर एक शब्द बन गए हैं।

सर्वनामों के अतिरिक्त प्रायः अन्य शब्दों के साथ कारक चिह्न जोड़कर नहीं लिखे जाते हैं। क्योंकि इससे अर्थभ्रान्ति की संभावना बनी रहती है। जैसे मन का—मनका, सनकी—सन (पाट) + की, रामके लिए—राम के लिए।

इसलिए जो लोग विभक्तियों को शब्दों के साथ जोड़कर लिखने के पक्षपाती हैं उनसे, और जो लोग इन चिह्नों को मूल रूप मानकर सर्वथा अलग लिखने के समर्थक हैं उनसे भी मेरा मतभेद है। मेरी दृष्टि में सर्वनामों को छोड़कर अन्य शब्दों के साथ इन विभक्तियों को जोड़कर नहीं लिखना ही उत्तम है। इससे एक तो अर्थ-भ्रान्ति नही होती दूसरे भाषा सीखनेवालों को व्यावहारिक कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़तीं।

१. हिन्दी भाषा, पृ० १६४

२. हिन्दी भाषा का इतिहास, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी में विभक्ति-प्रयोग संस्कृत की अपेक्षा अत्यधिक सुगम है। यहाँ द्विवचन नहीं है इसलिए आठ रूपों से तो अनायास ही मुक्ति मिली हुई है। शेष सोलह विभक्तियों की जगह भी सात ही से काम चल जाता है। इसके दो कारण हैं (१) कर्म तथा सम्प्रदान और करण तथा अपादान—इन चार कारकों की सिर्फ दो विभक्तियाँ हैं—को और से। (२) शब्द के लिंग-वचन का विभक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

लड़का को—लड़कों को (वचन)

लड़की को—लड़कियों को (लिंग)

इन कारणों के परिणामस्वरूप हिन्दी कारक-चिह्न अत्यन्त सरल हो गये हैं।

ऊपर कहा गया है कि मध्य काल में विभक्तियाँ घिसकर टूट गई थीं, फलतः अलग से शब्द जोड़ने की आवश्यकता अनुभव हुई। इससे दो तथ्य उपलब्ध होते हैं। (१) हिन्दी के कारक-चिह्न संस्कृत विभक्तियों के अवशेष हैं जो पर्याप्त घिसकर हल्के-फुल्के और स्वतन्त्र हो गये हैं। (२) ये मध्यकाल में जोड़े गये स्वतन्त्र शब्दों के अवशेष हैं। अर्थात् हिन्दी के कुछ कारक-चिह्न संस्कृत की उन विभक्तियों के विकसित रूप हैं जो घिसते-घिसते पृथक तो हो गये मगर नष्ट नहीं हुए और कुछ चिह्न निश्चित रूप से मध्ययुग में जोड़े गये स्वतन्त्र शब्दों के विकसित रूप हैं। इन दोनों ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखकर ही हम हिन्दी कारक-चिह्नों की सही व्युत्पत्ति तक पहुँच सकते हैं।

हिन्दी में निम्नलिखित कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	शून्य, ने	शून्य, ने
कर्म	शून्य, को	शून्य, को
करण	से	से
सम्प्रदान	को, के लिए	को, के लिए
अपादान	से	से
सम्बन्ध	का, के, की	का, के, की
अधिकरण	में, पर	में, पर
सम्बोधन	शून्य	शून्य

ऊपर की सारिणि के अनुसार शून्य, ने, को, से, के लिए, का, में और पर—ये आठ कारक चिह्न हैं। इनमें ने की स्थिति वैकल्पिक है, के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ ही स्थलों पर आता है और के तथा की स्वतन्त्र चिह्न न होकर का चिह्न के लिंग और वचनगत विकार हैं। के बहुवचन पुल्लिग है और की एकवचन स्त्रीलिंग। अब उपर्युक्त चिह्नों की व्युत्पत्ति पर विचार करें।

१. कर्त्ता—

शून्य—कर्त्ता कारक का चिह्न वस्तुतः शून्य ही है। संस्कृत में सुगन्त प्रत्यय के योग से शब्द प्रयोग योग्य बनते हैं। संस्कृत में इस प्रत्यय के सूचनार्थ कर्त्ता कारक में कहीं विसर्ग और कहीं अम् लगता है। जैसे रामः, फलम् इत्यादि। कहीं कोई चिह्न नहीं लगता जैसे मुनि में। ऐसी स्थिति में जहाँ विभक्ति आकर लुप्त हो जाय वहाँ शून्य चिह्न माना जाता है। हिन्दी में अम् या विसर्ग की जगह केवल शून्य का ही प्रयोग होता है।

ने—कर्त्ता कारक का यह चिह्न वैकल्पिक है। अकर्मक क्रिया रहने पर भूतकाल के सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भेदों में कर्त्तरि प्रयोग के रूप में तथा कर्मणि और भावे प्रयोगों में इसका व्यवहार किया जाता है।

हिन्दी के अतिरिक्त पंजाबी, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी यह कर्त्ता या कर्म या करण या सम्प्रदान कारक के चिह्न-रूप में प्रयुक्त होता है। इसका अधिकतर प्रयोग पश्चिमी हिन्दी में होता है और प्रयोग-प्राचीनता की दृष्टि से इसकी सीमा कबीर से आगे नहीं जाती। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी भाषा के अध्येताओं के लिए न केवल विवादास्पद है बल्कि सिरदर्द भी।

ट्रम्प आदि कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने इसका विकास संस्कृत के तृतीया एकवचन की विभक्ति एन से माना है। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है :—एन > एण > एन > (वर्ण विपर्यय से) ने। किन्तु डॉ० उदय नारायण तिवारी तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अनेक विरोधी तर्कों द्वारा इस मान्यता का खंडन किया है। वस्तुतः एन से ने का निर्माण ध्वनि-परिवर्त्तन की अस्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता।

बीम्स ने करण कारक के चिह्न के रूप में ने पर विचार किया है। उनके मतानुसार प्राचीन हिन्दी के कर्म कारक का चिह्न ने आधुनिक हिन्दी के कर्त्ता कारक का ने, नेपाली करण कारक का ले, गुजराती कर्म-सम्प्रदान का ने, और मराठी करण का ने वस्तुतः एक है। पंजाबी प्रभाव के कारण आधुनिक हिन्दी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में कर्म कारक के चिह्न के स्थान पर ने का प्रयोग होने लगा है। इससे स्पष्ट है कि कर्त्ता कारक का यह चिह्न कर्म, करण और सम्प्रदान के लिए प्रयुक्त होता रहा है। इन सब की एकता मानकर केलाग ने इसका विकास संस्कृत लग् धातु के भूतकालिक कृदन्त रूप लग्य से माना है। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है—सं० लग्य >प्रा० लग्गिओ >हि० लागि >लइ >ले >ने।[१] डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि "मेरे विचार में यदि इसे इस रूप में रखा जाय तो विकास अधिक स्पष्ट हो सकेगा। स० लग् धातु का भूत-कृदन्त रूप लग्य + कः >प्रा० लग्गिओ >लग्गिअ >लागिअ (>लागी >लाई) >लागि >लाइ >लै >नै >ले >ने।[२]

इस व्युत्पत्ति की स्थापना, गुजराती, नेपाली, हिन्दी, मराठी आदि को एक मानकर की गई है। नेपाली के सम्प्रदान कारक की विभक्ति लाइ और करण की विभक्ति ले से ने की व्युत्पत्ति जोड़ने का प्रयास किया गया है। नेपाली में ल का न तो होता ही है मैथिली, वज्जिका आदि में भी ल का न में और न का ल में परिवर्तन मिलता है। किन्तु, ये दोनों भाषाएँ पूर्वी उत्तरी क्षेत्र की हैं जब कि ने पश्चिमी हिन्दी की विशेषता है। ऐसी स्थिति में इसकी उत्पत्ति लग्गि से मानना उचित नहीं प्रतीत होता। मेरी समझ में इसकी व्युत्पत्ति पजाबी से ढूँढ़नी चाहिए। क्योंकि इतना तो स्पष्ट है कि ने संस्कृत की किसी विभक्ति का विकसित रूप नहीं है बल्कि मध्ययुगीन भाषाकाल में जोड़े गये किसी स्वतन्त्र शब्द का अवशेष है।

कर्म कारक—इसके दो चिह्न हैं—शून्य और को। शून्य की व्युत्पत्ति पर विचार ऊपर कर आये हैं। यहाँ को की व्युत्पत्ति पर विचार प्रस्तुत है।

ट्रम्प के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति कृतं से है। कृतं >कितो >किदो >किओ >को। लेकिन कृतं से इसकी व्युत्पत्ति मानने में एक आपत्ति यह उठाई जाती है कि प्राचान हिन्दी में प्रयुक्त कहँ, कहुँ आदि रूप इससे सिद्ध नहीं होते हैं। इसलिए इसकी व्युत्पत्ति कक्षं से माननी उपयुक्त है। कक्षं >कक्खं >काखं >काहं >कहँ >कहुँ >कौं >को यही विकास की प्रक्रिया है। अधिकांश विद्वान इसी को मानते हैं।

---

१. ए ग्रामर आव दि हिन्दी लैंगवेज, केलाग, पृ० १३२
२. हिन्दी भाषा, पृ० १६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करण—करण कारक के चिह्न से का प्रयोग बीम्स के अनुसार 'साथ' और 'अलग होना' दोनों अर्थों में होता है। अतः करण और अपादान दोनों के लिए अर्थ-भेद के बावजूद एक ही विभक्ति 'से' प्रयुक्त होती है। हिन्दा की विभिन्न बोलियों में से के ही विविध रूप जैसे—सों, सौं, सूं आदि प्रयुक्त होते हैं।

हार्नली के अनुसार से की व्युत्पत्ति अस् धातु से है। अस > संतो > सुतों > सों, सूं > से। बीम्स के मतानुसार यह संस्कृत अव्यय समं से व्युत्पन्न है। समं > सौं > सौ > सों > सो > से। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसी को मानते हैं। केलाग इसे संगे से व्युत्पन्न मानते हैं तो चटर्जी समहि > प्रा० सअइ > से के रूप में व्युत्पन्न। डॉ० उदय नारायण तिवारी सं० सम—एन > सएं > सइं > सें > से, इस विकास-प्रक्रिया को मानते हैं।[1] डॉ० भोलानाथ तिवारी सभी रूपों को वर्गीकृत करते हुए उन्हें क्रमशः समं, संगे और अस् तीनों से व्युत्पन्न मानते हैं। से की व्युत्पत्ति जिस वर्ग में आती है उसका विकास वे केलाग की तरह संगे से मानते हैं।[2] ध्यान देने की बात है कि तिवारी जी का सम-एन और केलाग या भोलानाथ तिवारी का संगे दोनों विकास की अगली ही प्रक्रिया में मिलकर एक रूप सएं में परिणत हो जाते हैं। अतः डॉ० उदय नारायण तिवारी, केलाग और डॉ० भोलानाथ तिवारी के मत लगभग समान ही कहे जायेंगे। फिर भी बीम्स का मत इन व्युत्पत्तियों से अधिक वैज्ञानिक है।

सम्प्रदान—इसकी दो विभक्तियाँ हैं :—(१) को, (२) के लिए। को की व्युत्पत्ति वही है जो कर्म कारक के चिह्न को की है! के लिए की व्युत्पत्ति सं० 'कृते लग्ने' से मानी जाती है। सत्यजीवन वर्मा 'के लिए' में के, की व्युत्पत्ति केरक से मानते हैं जबकि डॉ० उदय नारायण तिवारी कृते > कए > के रूप में व्युत्पन्न मानते हैं। दूसरा रूप ही सर्वमान्य है। लिए की व्युत्पत्ति हार्नली के अनुसार लब्धे से है जबकि अन्य लोग लग्ने से मानते हैं। लग्ने > लग्गे > लग्गि > लागि >··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· > लिए।

अपादान—इसके चिह्न 'से' की व्युत्पत्ति पर करण के सन्दर्भ में विचार किया जा चुका है।

---

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ४३३

२. हिन्दी भाषा, पृ० १७०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्बन्ध—ऊपर कह आए हैं कि सम्बन्ध का चिह्न एक ही है—का वस्तुतः चिह्न क् है जिसमें पुल्लिग वाची प्रत्यय आ लगा हुआ है। इसी के योग से सम्बन्ध का एकवचन पुल्लिग चिह्न का बना है। के और की उसके वचनगत और लिंगगत विकार हैं। का की व्युत्पत्ति बीम्स और हार्नली दोनों के मतानुसार कृतः से है। मगर बीम्स विकास की प्रक्रिया कृतकः > करितो > करिओ > केरको > केरओ, केरो > केर > के > का मानते हैं जबकि केलाग सीधे संस्कृत कृतः > किद > कद > कअ > का के रूप में इसका विकास मानते हैं। प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के मतानुसार यह इक प्रत्यय से व्युत्पन्न है। इक में इ के लोप और क के दीर्घीकरण से का प्राप्त हो जाता है। नैतिक आदि में यही इक प्रत्यय है। अधिकांश भाषाविदों की दृष्टि में कृतः से ही इसकी व्युत्पत्ति मानना वैज्ञानिक है। विकास की प्रक्रिया चाहे जो हो।

अधिकरण—इसके दो चिह्न हैं—में और पर। में की व्युत्पत्ति मध्ये (मध्य का सप्तमी एकवचन) से है। मध्ये > मज्झे > मज्झि > माझि > मांहि > महि > मई > मैं > में।

पर की व्युत्पत्ति उपरि से है। उपरि > परि > पर। डॉ० उदय नारायण तिवारी और हार्नली इसे परे से व्युत्पन्न मानते हैं :—परे > परि > पर। दोनों ही व्युत्पत्तियाँ युक्तिसंगत हैं।

सम्बोधन—इसके लिये प्रयुक्त विभक्तियाँ हे, रे, ओ, अहो आदि हैं। ये परसर्ग न होकर पूर्वसर्ग हैं।[1] ये सभी मूल संस्कृत रूपों में ही प्रायः प्रयुक्त होते हैं। अतः इनकी व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती। वैसे भी संस्कृत में सम्बोधन को कारक नहीं माना जाता।

उपर्युक्त विभक्तियों के अतिरिक्त हिन्दी में कुछ अन्य शब्दों का प्रयोग भी विभिन्न कारक-चिह्नों के अर्थ में होता है। ये शब्द व्याकरण की दृष्टि से सम्बन्धसूचक अव्यय हैं।[2] जैसे—

(१) करण—द्वारा, जरिए, कारण, मारे।

(२) सम्प्रदान—हेतु, निमित्त, वास्ते, खातिर।

(३) अपादान—सामने, आगे, साथ।

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १७४

२. हिन्दी भाषा का इतिहास, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४) अधिकरण—मध्य, बीच, भीतर, अन्दर, ऊपर, नीचे, पास, बाहर, पीछे, ओर इत्यादि।

इन शब्दों में द्वारा, कारण, हेतु, निमित्त, मध्य, बीच आदि संस्कृत रूप हैं।

वास्ते, खातिर, जरिए आदि अरबी हैं। शेष शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

मारे—मारितेन (सं०) > मारिएन > मारिए > मारे।

सामने—सम्मुख (सं०) > सामने।

आगे—अग्रे > अग्गे > आगे।

साथ—सार्थे > सत्थि > साथि > साथ।

भीतर—अभ्यन्तरे > भिन्तरे, भित्तरे, भित्तरि > भीतरे भीतरि > भीतर।

ऊपर—उपरि > उप्परि > ऊपर।

ओर—अवार > ओर।[1]

बाहर—बहिर > बाहिर > बाहर।

नीचे—नीचैः > नीचे।

पीछे—पश्चे > पच्छे > पिच्छे > पीछे या पश्चे > पच्छे > पाछे।

लिंग

हिन्दी व्याकरण का एक महत्वपूर्ण अंग है—लिंग-विचार। यह न केवल संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रिया-विशेषण को प्रभावित करता है अपितु प्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक दुरूह भी है। हिन्दी-विरोध और हिन्दी के सरलीकरण का नारा लगाने वालों की दृष्टि सबसे पहले इसी की ओर जाती है। काश! यदि ये लोग हिन्दी-लिंग-विधान के ऐतिहासिक विकास को जानने की कोशिश करते तो देखते कि उनके विरोध में कोई दम नहीं है। यहाँ हम हिन्दी-लिंग-प्रयोग पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करेंगे।

सामान्यतः लिंग का अर्थ वह हेतु, कारण या चिह्न है जिसके सहारे प्रकृति में प्राप्त चेतन-अचेतन तत्वों की जाति पहचानी जाती है। सामान्यतः नर जीव के लिए पुल्लिग, मादा के लिए स्त्रीलिंग और निर्जीव पदार्थों के लिए नपुंसक लिंग का प्रयोग किया जाता है। किन्तु यह प्रकृति-जगत की बात है। व्याकरण का क्षेत्र इससे पृथक होता है और उसके लिंग विधान न केवल स्वतंत्र होते हैं बल्कि प्रकृति-जगत की सीमा का अतिक्रमण करनेवाले भी। प्राकृतिक

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १७६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिंग से व्याकरणिक लिंग की इस पृथकता का कारण बताते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं—'मूलतः भाषाओं में इस प्रकार के अनियमित लिंग-विधान का विकास प्राकृतिक लिंग को छोड़कर उसके स्थान पर अन्त्य ध्वनि या प्रत्ययों को आधार मानने के कारण हुआ है।'[१] किसी भाषा में इन दोनों प्रकार के लिंगों की स्थिति के सम्बन्ध में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं—'प्राकृतिक लिंग भेद तो प्रत्येक भाषा में समान रूप से वर्त्तमान हैं किन्तु व्याकरण-सम्बन्धी लिंगों की संख्या तथा मात्रा भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक्-पृथक् है।'[२]

हिन्दी लिंगों का विकास स्पष्ट ही संस्कृत से हुआ है। विकास प्रक्रिया में एक ओर तो सरलीकरण हुआ है और दूसरी ओर अनेक प्रभावों के कारण दुरूहता भी आई है।

संस्कृत में स्त्री०, पु० और नपु० तीन लिंग थे। इनका विधान मूलतः व्याकरणिक था, अतः जटिल भी। मध्यकालीन आर्य भाषाओं में लिंग-संख्या तो तीन ही रही मगर अनेक शब्दों का लिंग परिवर्त्तित हो गया और अधिकांश नपुंसक लिंग पुल्लिग के निकट आने लगे। अपभ्रंश काल में आकर नपुंसक लिंग प्रायः लुप्त हो गया।

अपभ्रंश के गर्भ से जन्म लेने के कारण स्वभावतः हिन्दी में नपुंसक लिंग का अभाव मिलता है। नपुंसक का जो थोड़ा-बहुत रूप अपभ्रंश में अवशिष्ट था वह हिन्दी में आकर सर्वथा लुप्त हो गया और हिन्दी में स्त्रीलिंग और पुल्लिग दो ही लिंग बच गये। स्वभावतः सभी नपुंसक शब्दों का तिरोभाव स्त्रीलिंग और पुल्लिग के अन्तर्गत हो गया। निश्चय ही यह विलयन किसी नियम के आधार पर नहीं हुआ होगा। भाषा और शब्द की प्रकृति के अनुरूप प्रयोग के अनुसार शब्द स्त्रीलिंग या पुल्लिग वर्ग में मिलते चले गये होंगे। संक्रान्तिकालीन भाषाओं में प्रायः विकास की यही प्रक्रिया देखी जाती है।

इस प्रक्रिया में न केवल नपुंसक शब्द दो वर्गों में विभक्त हुए बल्कि कुछ स्त्रीलिंग-पुल्लिग शब्दों का भी पारस्परिक परिवर्तन हुआ। देह, बाँह जैसे पुल्लिग शब्द स्त्रीलिंग बने और देवता, तारा जैसे स्त्रीलिंग शब्द पुल्लिग हो गये। डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं—'हिन्दी को प्राचीन भाषाओं की

---

१. हिन्दी भाषा, पृ० १५१

२. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लैंगिक अनियमितताएँ तो मिली हीं साथ ही कुछ नपुंसक शब्दों के पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग हो जाने से भी जटिलता आ गई। यहा कारण है कि हिन्दी का लैंगिक विधान अत्यन्त दुरुह हो गया।' मेरी दृष्टि में यह प्रक्रिया यहीं तक सीमित नहीं रही आगे भी बढ़ी। अरबी-फारसी के प्रभावस्वरूप अनेक शब्दों का लिंग-विधान बदला और अपवादों की सृष्टि हुई। जैसे—आत्मा शब्द रूह के प्रभावस्वरूप स्त्रीलिंग हो गया। आय और व्यय एक ही प्रकृति-प्रत्यय से बने होकर भी दो लिंगों में बँट गये। आमद के प्रभाव से आय स्त्रीलिंग और खर्च के प्रभाव से व्यय पुल्लिग हो गया। यह लिंग-विधान की जटिलता में दूसरा योग था। हिन्दी में अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग आधुनिक काल में होने लगा है। इन शब्दों के कारण भी यह जटिलता बढ़ी है। जैसे कोई कहता है—फिल्म अच्छी थी तो उसके दिमाग में फिल्म का लिंग तस्वीर के लिंग से निरूपित हो रहा है और दूसरा कहता है—फिल्म अच्छा है, तो उसके दिमाग में स्पष्ट ही चलचित्र शब्द का लिंग-विधान वर्तमान है। अब पाठक समझ नहीं पाता कि फिल्म को स्त्रीलिंग माने या पुल्लिग या दोनों। जटिलता में यह तीसरा योगदान है।

इस प्रकार हिन्दी लिंग-विधान की दुरूहता तबतक बढ़ती जायगी जबतक विभिन्न भाषाओं के शब्दों का आगमन होता रहेगा। इसलिए इस विकास को सहज रूप से स्वीकृत करके इसे भाषा की प्रकृति मान लेनी चाहिए उसकी सबलता-दुर्बलता नहीं। इन प्रभावों के कारण हिन्दी लिंग-विधान में जो जटिलता आई है उसे न समझनेवाले लोग हिन्दी पर नियमहीनता और दुरूहता का आरोप लगाते हैं। ऐसे लोगों की शंका का समाधान करते हुए डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ठीक ही कहते हैं—"प्रत्येक शब्द के लिंग का पुरातन इतिहास खोजने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में, अनेक जटिलताएँ होने पर भी, उचित व्याकरणिक लिंग-विधान है।"[१]

हिन्दी में लिंग-विचार निम्नलिखित व्याकरण-रूपों के साथ किया जाता है। (१) संज्ञा, (२) सर्वनाम, (३) विशेषण और (४) क्रिया। इन सब पर अलग-अलग विचार करना अपेक्षित प्रतीत होता है।

(क) संज्ञा—संज्ञा में लिंग-भेद प्रत्ययों के सहारे सूचित किया जाता है। प्रायः अकारान्त शब्द पुल्लिग और इकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। किन्तु इन दोनों ही नियमों के अनेक अपवाद मिलते हैं। जैसे—पानी, घी, मोती,

---

१. हिन्दी भाषा और उसका इतिहास, पृ० १७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यात्री, स्वामी इत्यादि पुल्लिग हैं तथा चील, कोयल, भीड़, कथा, यात्रा आदि स्त्रीलिंग हैं। संज्ञा के लिंग-निर्णय की समस्या और उसके नियमों का निर्धारण-विवेचन व्याकरण का विषय है, भाषा-विज्ञान का नहीं। अतः हम यहाँ केवल उन प्रत्ययों पर विचार करेंगे जो स्त्रीलिंग या पुल्लिग को सूचित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं।

स्त्री-प्रत्यय—

(१) ई—यह स्त्री प्रत्ययों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रायः सभी ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। इसका विकास दो स्रोतों से माना जाता है। (क) संस्कृत इका से, जिसकी विकास-प्रक्रिया इस प्रकार है—इका > इआ > ई। जैसे—घोटिका > घोडिया > घोड़ा। (ख) सस्कृत ई > प्रा० ई > हि० ई। जैसे—सुन्दरी > सुन्नरी > सुनरी।

(२) इआ—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत इका से है। सं० इका > प्रा० इआ > हि० इआ। जैसे—पुटिका > पुडिआ > पुड़िया।

(३) आनी—यह संस्कृत आनी, आणी से व्युत्पन्न है। आनी > प्रा० आणी > आनी। जैसे—भवानी > भवाणी > भवानी।

(४) इन—यह संस्कृत आनी, आणी से व्युत्पन्न है। आनी, आणी > आणा > णी > इण > इन्। जैसे—पुजारिन > पुजारिण > पुजारिन।

(५) नी—यह संस्कृत के नी या णी अन्त्यवाले स्त्रीलिंग शब्द का प्रत्यय है जो प्राकृत में णी हिन्दी में नी रह गया है। जैसे—गृहिणी > घरिणी > घरनी।

पुरुष-प्रत्यय—

आ—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत अक से है। सं० अक > प्रा० अ > हि० आ। जैसे—घोटक > घोड्अ > घोड़ा। इसके अतिरिक्त संस्कृत अन् और तृ से भी यह व्युत्पन्न माना जाता है।[1] कुछ शब्दों में 'अ' पुल्लिग प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। उसकी व्युत्पति भी इसी से समझनी चाहिए।

ऊपर जिन स्त्री और पुरुष प्रत्ययों की चर्चा की गई है। उनके अतिरिक्त भी प्रत्यय मिलते हैं। मगर वे सामान्य नियम न होकर अपवाद या अल्प प्रचलित हैं।

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वनाम और लिंग-भेद—

सर्वनामों का लिग या तो क्रियापद से निर्धारित होता है या उनमें आकारान्त इकारान्त प्रत्ययों का प्रयोग होता है । जैसे—(क) पु०—वह जाता है । स्त्री०—वह जाती है । यह मेरा है । यह मेरी है । इन शब्दों में प्रयुक्त स्त्री और पुरुष प्रत्ययों की व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है ।

विशेषण और लिंग-भेद—

विशेषण का लिंग कहीं-कहीं तो पुल्लिग रूप में रहता है और कहीं अप्रभावित रह जाता है । जैसे सुन्दर पुरुष, सुन्दर स्त्री, मधुर फल, मधुर वाणी । किन्तु यह प्रायः संज्ञा के लिंग से प्रभावित होता है । संज्ञा से प्रभावित विशेषण में ई और आ लगाकर लिंग-भेद सूचित किया जाता है । जैसे—बड़ी बात, बड़ा घर इत्यादि । यहाँ विशेषण का लिंग-भेत निरूपित करने वाले प्रत्यय ई और आ हैं जिनकी व्युत्पत्ति ऊपर दा जा चुकी है ।

सम्बन्धकारकीय चिह्न, कृदन्त, सहायक क्रिया आदि में भी उपर्युक्त स्थिति होती है । इन सब पर अलग विचार न करके यहाँ केवल क्रिया-लिंग पर विचार किया जाता है ।

क्रिया और लिंग-भेद—

सामान्यतः हिन्दी में क्रिया का लिंग कर्त्ता के लिंग का अनुगामी होता है । संस्कृत में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं—कृदन्त और तिङन्त । तिङन्तीय क्रियाओं की अपेक्षा कृदन्तीय क्रियाएँ सरल होती हैं । संस्कृत में तिङन्तीय क्रियाओं की अधिकता है और कृदन्तीय क्रियाओं की विरलता । तिङन्तीय क्रियाओं में लिंग-भेद नहीं है । जैसे—बालकः पठति—बालिकाः पठति ।

मगर कृदन्तीय क्रियाओं में वहाँ भी लिंग-भेद है । जैसे—

रामः चलितः—सीता चलिता ।

हिन्दी में कृदन्तीय क्रियाओं की प्रधानता है । अतः यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि कृदन्तीय प्रभाव के कारण ही हिन्दी में तिङन्तीय क्रियाएँ भी लिंग-भेद से युक्त हुई हैं और इस प्रकार हिन्दी में निर्विकल्पिक रूप से क्रियाओं में लिंग-भेद का प्रचलन हुआ है । इस सम्बन्ध में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत इन पंक्तियों की पुष्टि करेगा—'हिन्दी क्रिया में कृदन्त रूपों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यवहार बहुत अधिक है। संस्कृत कृदन्त रूपों में लिंग-भेद मौजूद था, यद्यपि संस्कृत क्रिया में लिंग-भेद नहीं किया जाता था। क्योंकि हिन्दी कृदन्त रूप संस्कृत कृदन्तों से सम्बद्ध हैं अतः यह लिंग-भेद हिन्दी कृदन्तों में तो आ ही गया, साथ ही कृदन्त से बनी हुई क्रियाओं में भी पहुँच गया।'[१]

मगर हिन्दी में कुछ ऐसी भी क्रियाएँ हैं जिनमें कुछ विशेष काल-दशाओं में लिंग-भेद नहीं होता। जैसे—संभाव्य भविष्यत और विधि काल की क्रियाओं में लिंग-भेद नहीं होता।

मैं जाऊँ—(पु०); मैं जाऊँ—(स्त्री०)

इसी प्रकार होना क्रिया के सामान्य वर्त्तमान काल में भी लिंग-भेद नहीं होता। जैसे—मैं हूँ (स्त्री०); मैं हूँ (पु०)।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृदन्तों की अधिकता के कारण हिन्दी क्रियाओं में लिंग-भेद है और उसे यह परम्परा संस्कृत से प्राप्त हुई है। हाँ, कृदन्तीय क्रियाओं की प्रधानता हिन्दी की अपनी प्रकृति है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लिंग-भेद के कारण हिन्दी संज्ञा, सर्वनाम विशेषण, क्रिया आदि सभी प्रभावित होते हैं। लिंग-भेद सम्बन्धी यह सूक्ष्म किन्तु एकरूप नियमबद्धता बहुत कम भारतीय भाषाओं में है। इसे हिन्दी की विशेष प्रकृति ही समझनी चाहिए।

वचन

हिन्दी में वचन दो हैं—एकवचन और बहुवचन। संस्कृत में वचनों की संख्या तीन है। वहाँ उपर्युक्त दोनों के अतिरिक्त द्विवचन का प्रयोग होता है। मगर तीन रूपों के बावजूद संस्कृत में द्विवचन का व्यावहारिक प्रयोग कम ही मिलता है। मध्यकालीन भाषाओं में द्विवचन का प्रयोग नगण्य रूप में मिलता है। आधुनिक आर्य-भाषाओं में यह सर्वथा लुप्त हो गया है। इसी कारण हिन्दी में भी दो ही वचन हैं। वैसे द्विवचन को सूचित करने के लिए संख्यावाचक विशेषण का प्रयोग किया जाता है। जैसे—दो आम, दो पुस्तकें इत्यादि।

संख्यात्मक ह्रास के साथ-साथ वचन से उत्पन्न विकारों का भी लोप होने लगा और हिन्दी तक आते-आते संस्कृत के अधिकांश कारकों के प्रत्यय लुप्त

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो गये। डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के शब्दों में 'विभिन्न कारकों में वचन की सूचना देने के लिए विभक्ति-प्रत्ययों की यह अदला-बदली मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में बहुत बढ़ गई थी और उसी के आधार पर हिन्दी वचनों के रूप विकसित हुए।'[१] इस प्रकार हिन्दी में वचन-निर्माण की प्रक्रिया अत्यन्त सरल हो गई।

सामान्यतः हिन्दी में निम्न विधियों से बहुवचन बनाये जाते हैं।

(१) कुछ शब्दों का रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है। केवल क्रिया से उसका अन्तर सूचित होता है। जैसे—घर, वर्त्तन, आदमी, प्राण, भाई इत्यादि। यह मेरा वर्त्तन है। ये मेरे वर्त्तन हैं।

(२) पुल्लिग आकारान्त संज्ञाओं में अन्त्य आ को ए में परिवर्त्तित करके बहुवचन बनाया जाता है। जैसे—साला—साले, लड़का—लड़के, फरसा—फरसे।

(३) स्त्रीलिंग आकारान्त तथा व्यंजनान्त संज्ञाओं में एँ लगाकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे—औरत—औरतें, मुहर—मुहरें, कथा—कथाएँ।

(४) स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दों में इयाँ जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है और अन्तिम दीर्घ इ को ह्रस्व इ में परिणत कर दिया जाता है। जैसे—लड़की—लड़कियाँ, घड़ी—घड़ियाँ इत्यादि।

(५) शेष सभी शब्दों में समान रूप से ओं जोड़ा जाता है तथा ईकारान्त शब्दों में अन्तिम ई को ह्रस्व इ में परिणत कर दिया जाता है। ओं के बदले कहीं-कहीं यों भी हो जाता है। जैसे—

कमल	—	कमलों
रात	—	रातों
विद्यार्थी	—	विद्यार्थियों
लड़की	—	लड़कियों इत्यादि।

(६) इन नियमों के अतिरिक्त गण, वृन्द, लोग, जन आदि शब्दों के योग से भी बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति है। इनमें गण, वृन्द आदि तो संस्कृत प्रत्यय ही हैं, लोग शब्द संस्कृत लोक से विकसित है।

---

१. हिन्दी भाषा और उसका इतिहास, पृ० १७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपर्युक्त नियमों के आलोक में बहुवचन सूचक निम्न विभक्तियाँ प्राप्त होती हैं—शून्य (वर्त्तन), ए (लड़के), याँ लड़कियाँ, एँ (किताबें), ओं (घोड़ों), यों (विद्यार्थियों)। इन रूपों की व्युत्पत्ति पर हम संज्ञा के मूल तथा विकृत रूप के प्रसंग में विचार कर आये हैं। अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। क्योंकि, 'तत्वतः वचन का कारकीय रूपों से अलग अस्तित्व नहीं है।'[१]

सर्वनाम

संज्ञा के बदले प्रयुक्त होनेवाले शब्द व्याकरण के अनुसार सर्वनाम कहे जाते हैं। एक ही संज्ञा के बार-बार प्रयोग से जो असुन्दरता भाषा में आती है उसका परिहार सर्वनाम से हो जाता है। उदाहरणार्थ—'राम एक छात्र है। राम षष्ठ वर्ष में पढ़ता है।' ऐसा लिखने से यह लिखना कहीं सुन्दर है—'राम एक छात्र है जो षष्ठ वर्ष में पढ़ता है।' यहाँ सर्वनाम 'जो' के प्रयोग ने वाक्य का सौन्दर्य ही नहीं बदल दिया बल्कि उसका ढाँचा भी।

हिन्दी सर्वनामों का विकास यद्यपि संस्कृत से हुआ है किन्तु विकास की प्रक्रिया में प्रचुर परिवर्त्तन हुआ है और अपेक्षाकृत सरलता भी आई है। सस्कृत में लिंग और वचन के प्रभावस्वरूप सर्वनामों के अनेक रूप बनते थे। जैसे—सः—ते—तौ। सा—ते—ताः। मगर उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष में, वचनगत ही विकार होता था लिंगगत नहीं। यह प्रवृत्ति मध्यकालीन भाषाओं में ह्रासोन्मुखी होने लगी और हिन्दी में तो समाप्त ही हो गई। यहाँ वह जाता है—वे जाते हैं तथा वह जाती है—वे जाती हैं, से ही काम चल जाता है। अभिप्राय यह कि जिस संज्ञा पद के लिए सर्वनाम प्रयुक्त होते हैं उसके लिंग के अनुसार सर्वनाम का रूप नहीं परिवर्त्तित होता है। लेकिन जिन पुरुषवाचक सर्वनामों में सम्बन्ध कारक के चिह्न मिलकर अभिन्न अग बन गये हैं उनमें यह लिंग-भेद की प्रवृत्ति अवश्य मिलती है। जैसे—मेरा घर—मेरी पुस्तक—मेरे लड़के। इनमें आ, इ और ए के प्रयोग से सर्वनामों के विशेषणवत् रूप बनाए गये हैं। सामान्यतः संस्कृत में उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष को छोड़कर शेष में लिंग-भेद वर्त्तमान था मगर हिन्दी में उपर्युक्त सम्बन्ध कारकीय रूपों के अतिरिक्त कहीं भी लिंग का प्रभाव नहीं मिलता है। यही कारण है कि हिन्दी में सर्वनाम-विचार अपेक्षाकृत सरल है।

---

१. हिन्दी भाषा, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० १५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी सर्वनामों के कितने भेद माने जायें, यह विवादास्पद है। इसके प्रमाण में हम विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों द्वारा दिए गये सर्वनाम के भेदों को प्रस्तुत करते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार सर्वनाम के आठ मुख्य भेद हैं—(१) पुरुषवाचक, (२) निश्चयवाचक, (३) सम्बन्धवाचक, (४) नित्यवाचक, (५) प्रश्नवाचक, (६) अनिश्चयवाचक, (७) निजवाचक और (८) आदर-वाचक।[१] डॉ० उदय नारायण तिवारी के अनुसार न केवल नौ भेद हैं अपितु उनके नाम भी भिन्न हैं—(१) व्यक्तिवाचक या पुरुषवाचक, (२) उल्लेख-सूचक—(क) प्रत्यक्ष, (ख) परोक्ष, (३) साकल्यवाचक, (४) सम्बन्धवाचक, (५) पारस्परिक सम्बन्धवाचक, (६) प्रश्नवाचक, (७) अनिश्चयवाचक, (८) आत्मवाचक और (९) पारस्परिक।[२] इनमें साकल्यवाचक और पारस्परिक तो निश्चय ही नए नाम हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी का वर्गीकरण दूसरा ही है। वे कहते हैं—'मोटे ढंग से यह कहा जा सकता है कि सर्वनाम या तो उत्तम पुरुष होगा या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष। निजवाचक 'आप' प्रयोगानुसार तीनों में आता है। यथा, कुछ पुरुष के लिए न आकार वस्तु के लिए आते हैं, किन्तु पुरुष के अर्थ में विस्तार कर उन्हें भी इसके अन्तर्गत ले लेते हैं। इस प्रकार आप को छोड़कर शेष सभी इन तीन पुरुषों के अन्तर्गत आ जाते हैं। अर्थ के आधार पर अन्य पुरुष के निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, सम्बन्धवाचक आदि अन्य उपभेद किए जा सकते हैं।[३] डॉ० तिवारी के अनुसार सर्वनाम के भेद ये हुए—

(१) निजवाचक,
(२) उत्तम पुरुष,
(३) मध्यम पुरुष और
(४) अन्य पुरुष—
(क) निश्चयवाचक, (ख) अनिश्चयवाचक,
(ग) प्रश्नवाचक और (घ) सम्बन्धवाचक।

अब ऊपर दिये गए भेदों का विश्लेषण करें। डॉ० वर्मा का वर्गीकरण सामान्यत: वही है जो व्याकरण की परम्परित पुस्तकों में पाया जाता है। डॉ० उ० ना० तिवारी के वर्गीकरण में उल्लेखसूचक सर्वनाम यह, वह आदि

---

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २८०
२. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, पृ० ४४९-५०
३. हिन्दी भाषा, पृ० १७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं जो डॉ० वर्मा में निश्चयवाचक हैं। अतः नया नाम देना कोई अर्थ नहीं रखता। साकल्यवाचक निश्चय ही नया है जिसमें सब, उभय, ये, सकल आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इनमें स्वतः डॉ० उदय नारायण तिवारी के अनुसार सर्वाधिक प्रचलित 'सब' शब्द है। शेष का प्रयोग प्रायः नहीं ही मिलता है। ऐसी स्थिति में मात्र एक सर्वनाम के लिए एक नए भेद की रचना बहुत उपयुक्त नहीं दीखती और यदि प्रयोगाधिक्य के कारण सत्ता मान भी ली जाय तो सकल से साकल्य बनाकर साकल्यवाचक नाम देने की अपेक्षा सबवाचक या सर्ववाचक नाम देना मेरी दृष्टि में अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इसके बाद एक भेद है—पारस्परिक सम्बन्धवाचक जो सम्बन्धवाचक का ही एक भेद है अतः इसे अलग मानना सर्वथा अनुपयुक्त है। निजवाचक के बदले आत्मवाचक नाम देने से अप्रचलनगत भ्रान्ति होने की सम्भावना है अतः निजवाचक ही रहने देना उपयुक्त प्रतीत होता है। अन्त में आप तथा स्वयं इन दो सर्वनामों के लिए पारस्परिक नामक नया भेद गढ़ना भी निरर्थक है क्योंकि स्वयं तत्सम शब्द है और 'आप' का विलयन निजवाचक में हो ही जाता है। इसी प्रकार डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के वर्गीकरण में निजवाचक और आदरवाचक दोनों को दो सर्वनाम मानना युक्तियुक्त नहीं लगता क्योंकि, दोनों के लिए आप और अपना शब्द प्रयुक्त होता है जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से एक ही है।

अब रहा डॉ० भोलानाथ तिवारी का वर्गीकरण। इनमें कोई नवीनता नहीं सिर्फ प्रचलित आधार को उलटने-पलटने का प्रयत्न है। उनके द्वारा किए गए भेद प्रचलित भेदों से सर्वथा अभिन्न हैं।

इस विश्लेषण के पश्चात हम सर्वनाम के निम्न भेद स्थिर करते हैं—

(१) पुरुषवाचक (क) उत्तम पुरुष (ख) मध्यम पुरुष

(२) निश्चयवाचक[१]

(३) अनिश्चयवाचक

(४) प्रश्नवाचक

(५) संबंधवाचक

---

१. टिप्पणी—हिन्दी में अन्य पुरुष सर्वनाम ही निश्चयवाचक बन गये हैं और आवश्यकतानुसार इनके सामीप्य-बोधक और दूर-बोधक भेद किए जाते है। जैसे यह पुस्तक—समीप्य, वह—पुस्तक (दूरस्थता)। —लेखक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६) निजवाचक
(७) सर्ववाचक

इन सर्वनामों के सभी रूपों के प्रायः दो भेद मिलते हैं—(१) अविकारी और (२) विकारी। जैसे मैं और तुम तो अविकारी हुए मगर मुझ, मेरा, तुझ, तुम्हारा आदि विकारी रूप हुए। यहाँ इन सर्वनामों के लिए हिन्दी में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति प्रस्तुत है।

(१) पुरुषवाचक

(क) उत्तम पुरुष—	अविकारी	—	मैं	हम
	विकारी	—	मुझ	हम
	संबंध	—	मेरा	हमारा
	विशेष या कर्मरूप	—	मुझे	हमें

अविकारी—मैं—इसका विकास संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद्' के तृतीया एकवचन रूप मया से हुआ है। इस पर सभी विद्वान एक मत हैं। विकास प्रक्रिया इस प्रकार है—सं० मया > प्रा० मइ > अप० मइं > हि० मैं। आनुनासिकता का कारण डॉ० चटर्जी तथा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तृतीया एकवचन के रूप एन का प्रभाव मानते हैं।

हम—इसका लौकिक संस्कृत में कोई रूप नहीं मिलता। वहाँ बहुवचन के लिए वयं शब्द। इससे हम की व्युत्पत्ति संभव नहीं है। इसीलिए डॉ० चटर्जी, डॉ० वर्मा आदि इसका विकास वैदिक संस्कृत में सम्प्रदान और अधिकरण के बहुवचन में प्रयुक्त अस्मे से मानते हैं। परवर्ती प्रयोगों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि प्रथमा बहुवचन के लिए भी सम्भवतः अस्मे का प्रयोग होता था। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है—अस्मे > सं० अस्मे > पा० अम्हे > प्रा० अम्हे, अप० अम्हे > अम्ह > मह > हि० हम। मह में विपर्यय होने से हम बन गया है।

विकारी—मुझ—इसकी व्युत्पत्ति मह्यम् से सर्वमान्य है। मह्यम > प्रा० मज्झं, > अप० मज्झ, मज्झु > हि० मुझ। सामान्यतः मुझ में उ का प्रयोग लोग तुझ के मिथ्या-सादृश्य पर मानते हैं। मगर डॉ० भोलानाथ तिवारी विपर्यय के कारण ऐसा होना मानते हैं। यही ठीक भी है। क्योंकि अपभ्रंश, अवहट्ठ (विद्यापति) तथा व्रजभाषा में मझु और मुझ दोनों रूप मिलते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संबंध—मेरा—मेरा का प्रयोग विशेषणवत् होता है। इसका विकास मध्यकालीन आर्यभाषाओं से हुआ है, न कि संस्कृत से। प्राकृत में सर्वनाम में केरो, कार, आर आदि जोड़कर विशेषणवत् रूप बनाए जाते थे, यह हेमचन्द्र के व्याकरण से प्रमाणित है। इन केरो, केर या केरक आदि रूपों का विकास पिशेल आदि के अनुसार संस्कृत कृतकः, कार्यकः आदि से है और हार्नली, बीम्स, केलॉग आदि के अनुसार कृत या कृतक से। इस आधार पर मेरा की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—मम + कृतक > मम + केरक > ममेरअ > मेरा।

हमारा—ऊपर के विवेचन के आधार पर हमारा की व्युत्पत्ति भी सर्वनाम में कृतक या कार्य लगाने से सिद्ध होगी। यों डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसे अम्ह करको एवं डॉ० उ० ना० तिवारी अस्म कर से व्युत्पन्न मानते हैं। मगर इसका सही रूप अस्मे + कार्यकः या अस्म + कृतः से ही सिद्ध माना जाना चाहिए। विकास इस प्रकार है—(१) अस्मे + कार्यकः > अम्ह + करको > अम्ह अरओ > अम्हारउ, म्हारो > हमारो, हमारा। (२) अस्मे + कृते > अम्हकेरो > अम्हएरो > अम्हअरो > अम्हारो > म्हारो > हमारो, हमारा। ये दोनों ही रूप ठीक हैं।

कर्म—मुझे—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा मुझे में प्राप्त ए को संज्ञा के विकारी रूप 'ए' से अभिन्न मानते हैं।

हमें—डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे अस्मे से व्युत्पन्न मानते हैं और ए का आगमन तृतीया एन के प्रभावस्वरूप स्वीकार करते हैं। डॉ० वर्मा तथा बीम्स इसका विकास प्रा० अप० अम्हइँ से मानते हैं। मेरी दृष्टि में यह रूप ह और म के विपर्यय से बना है। पूरी विकास प्रक्रिया इस प्रकार होगी—सं० अस्मे > पा०, प्रा०, अप० अम्हे > प्रा० हिन्दी अम्हें > हि० हमें। अनुनासिकता का कारण म का प्रभाव है। ब्रजभाषा, अवधी आदि में मैं का वाची एक और शब्द चलता है—हौं (हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंजहारी)। इसकी व्युत्पत्ति अहमं (प्राकृत काल में अनुस्वारान्त रूपों के सादृश्य पर वर्द्धित रूपों के कारण अहम् सेबना शब्द) से है। विकास यों है—सं० अहं > पा० अहं > प्रा० अहमं > अप० हमुं > हऊँ > हौं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) मध्यम पुरुष—अविकारी—तू, तुम

विकारी —तुझ, तुम

सम्बन्ध —तेरा, तुम्हारा

कर्मविशेष—तुझे, तुम्हें

अविकारी—

तू—इसकी व्युत्पत्ति त्वम् से है—सं० त्वम् > प्रा० तुं, तुवं > अप० तुहुं, तुहु > हि० तूँ, तू।

तुम—इसकी व्युत्पत्ति विवादास्पद है। डॉ० श्यामसुन्दर दास इसे त्वम् > प्रा० तुम्ह > हि० तुम के रूप में व्युत्पन्न मानते हैं। विशेल, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी कल्पित रूप तुष्मे से व्युत्पन्न मानते हैं—तुष्मे > प्रा० तुम्हें, तुम्ह > हि० तुम। डॉ० भोलानाथ तिवारी की दृष्टि में संस्कृत में अधिकतर एकवचन रूप त से और बहुवचन रूप य से प्रारंभ होते हैं। मगर पालि में दोनों रूप त से ही प्रारंभ होने लगे। ऐसी स्थिति में उनका अनुमान है कि संस्कृत-पालि के संधिकाल में एकवचन रूपों का बहुवचन पर सामूहिक प्रभाव पड़ा और य के स्थान पर त हो गया। डॉ० तिवारी का तर्क युक्तिपूर्ण है और उसे मान लेने में तब तक कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जब तक कोई इससे भी ठोस आधार न निकल आए। इस आधार पर रूप विकास यों होगा—सं० युष्मे > सं० + पा० संधिकाल तुम्हे > पा० तुम्हे > प्रा० > तुम्हे > अप० तुम्हे, तुम्ह > हि० तुम।

विकारी—

तुझ—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसका व्युत्पत्ति तुभ्यम् से मानते हैं—तुभ्यम् > तुज्झं > तुज्झ > तुझ। सामान्यतः यही मान्य है।

सम्बन्ध—

तेरा—मेरा के प्रसंग में कृतकः या कार्यकः का विवेचन कर आए हैं। तेरा में भी यही रूप है। तव + कृतक या तुभ्यं + कृतक से इसका विकास हुआ है। तव + कृतक > तव + केरक > तवेरअ > तेरा।

तुम्हारा—इसकी व्युत्पत्ति डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, बीम्स आदि तुम्ह करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारौ > तुम्हारो, तुम्हारा मानते हैं। जब कि डॉ० भोलानाथ तिवारी युष्मे + कार्यकः > तुम्ह कारको > तुम्हारउ > तुम्हारो > तुम्हारा से इसकी उत्पत्ति मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मकारकीय रूप—

तुझे—मुझे की तरह तुझे का ए संज्ञा के एकवचन विकारी ए से अभिन्न है, ऐसा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है।

तुम्हें—हिन्दी तुम्हे का सम्बन्ध प्राकृत तुम्हइं से है।[१] मगर डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह वैदिक युष्मे > पा० तुम्हें > प्रा०, अप० तुम्हे > हिन्दी तुम्हें रूप में विकसित है। अनुनासिकता का कारण म का प्रभाव है।

हिन्दी की बोलियों में एक और रूप मिलता है—तैं। इसका विकास संस्कृत त्वया से हुआ है। त्वया > प्रा० तइ, तुइ > अप० तइ, तुइं > अवहट्ठ तैं > प्रा० हि० तैं।

(२) निश्चयवाचक—

अविकारी निकटवर्त्ती—यह, ये
अविकारी दूरवर्त्ती —वह, वे
विकारी निकटवर्त्ती —इस (इसे) इन (इन्हें)
विकारी दूरवर्त्ती —उस (उसे), उन (उन्हें)

अविकारी निकटवर्त्ती—

यह—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत एषः से निर्विवाद है। एषः > पा० प्रा० एसो > अप० एसो, एहो, एहु > हि० यह।

ये—इसकी व्युत्पत्ति एतद् के प्रथमा बहुवचन रूप एते से है। विकास की प्रक्रिया यह है—सं एते > प्रा० एए > अप० एइ, ए > हि० ए, ये।

अविकारी दूरवर्त्ती—

वह—इसके विकास पर विभिन्न मत हैं। किशोरी दास वाजपेयी के मतानुसार सं० सः > प्रा० सो > हि० वह रूप में इसका विकास हुआ है। ट्रम्प कहते हैं कि इसका मूल शब्द संस्कृत में नहीं है। वे इसके लिए मूल शब्द स्व की कल्पना करते हैं। भंडारकर तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे असौ से व्युत्पन्न मानते हैं। सं असौ > पा० असु > प्रा० असो, अहो > अप० ओहु > प्रा० हि० वहु > हि० वह। मगर डॉ० भोलानाथ तिवारी भारोपीय कुल की अन्य भाषाओं की छानबीन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह मूल भारोपीय शब्द अव से विकसित

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २८३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। मूल भारोपीय अव > भारत-इरानी, सं०, पा० तथा प्रा० में कल्पित रूप अव, अवो, वो > अपभ्रंश ओ, ओउ > ह के आगम से ओहु > प्रा० हिन्दी वहु > हि० वह।

वे—इसका विकास भी विवादास्पद है। डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार बहुवचन ए या ये के प्रभाव से वह ही वे में परिणत हो गया या मूल भारोपीय रूप अव के बहुवचन रूप अवेभिः से ही विकसित है। अवेभिः > अवहि > अवइं > वइ > वैं > वे। मेरी समझ में यदि अव को सर्वमान्य स्थान मिल जाय तो वह और वे को समस्या सुलझ जायगी। मगर उसके मानने में एक ही कठिनाई है कि संस्कृत, पालि तथा प्राकृत में इसका कोई रूप मिलता ही नहीं।

विकारी निकटवर्त्ती—

इस—इसकी व्युत्पत्ति डॉ० वर्मा अस्य से मानते हैं। अस्य > एअस्स > इस। मगर यह अवैज्ञानिक है। अस्य के बदले यदि एतस्य से इसका विकास माना जाय तो अधिक संगत होगा। एतस्य > एतस्स, एदिस्स > एअस्स, एइस्स > इस।

इसे—इस सम्बन्ध में डॉ० भोलानाथ तिवारी का मत अधिक संगत है कि मुझे तुझे आदि के सादृश्य पर इस से इसे बनाया गया। क्योंकि प्राचीन काल में इसके प्रयोग नहीं मिलते।

इन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इन में न को सम्बन्ध बहुवचन के चिह्नका प्रभाव मानते हैं। डॉ० सुभद्र झा कल्पित रूप ईणाम् से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी एतेषाम् से और डॉ० भोलानाथ तिवारी एषाम् से। प्रक्रिया इस प्रकार है—एतेषाम् या एषाम् > पा० एतसानं, एसानं > प्रा० एआण, एआणं > अप० एण या एण्ह (ह के आगम) से इन्ह > इन।

इन्हें—तुम्हें, हमें आदि के सादृश्य पर इन्ह से इन्हें बन गया है।

विकारी दूरवर्त्ती—

उस—इसके सम्बन्ध में दो मत हैं। एक मत डॉ० श्यामसुन्दर दास तथा डॉ० तिवारी-द्वय का है। इनके अनुसार यह संस्कृत अमुष्य से विकसित है। अमुष्य > पा० अमुस्य > प्रा० अउस्स > हि० उस।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा मत डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का है। वे मानते हैं कि वह का कल्पित मूल अव ठीक है तो उस की व्युत्पत्ति अवस्य से होनी चाहिये अवस्य > अउस्स > उस। मेरी दृष्टि में डॉ० भोलानाथ तिवारी को डॉ० वर्मा के मत का समर्थन करना चाहिए। क्योंकि वह के लिए मूल रूप अव उन्होंने ही ढूँढ़ा है। व्याकरण की दृष्टि से 'उस' 'वह' का विकारी रूप है। अतः अवस्य से ही विकास मानना समीचीन प्रतीत होता है।

उसे—यह उस का ही विकृत रूप है।

उन—डॉ० भोलानाथ तिवारी इसे सं० अमून तथा कल्पित रूप अवानाँ से सम्बद्ध मानते हैं। मेरी दृष्टि में यदि वह के लिए अव, अ उस के लिए अवस्य रूप स्वीकृत है तो उनकी व्युत्पत्ति अवानां से मानी जानी चाहिए। विकास की प्रक्रिया यों होगी। अवानाँ > अवन > अउण > उण्ह > हि० उन > बोलियों में हुन।

उन्हें—इन्हें की तरह सादृश्य के आधार पर उनसे विकृत रूप उन्हें बना है।

अनिश्चयवाचक— अविकारी — कोई, कुछ
विकारी — किसी, किन्हीं

कोई—इसकी व्युत्पत्ति कोऽपि से है। विकास इस प्रकार हुआ है—
सं० कोऽपि > प्रा० कोपि > प्रा० कोवि > अप० कोई > हि० काई।

कुछ—इसकी व्युत्पत्ति विवादास्पद है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं—नपुंसक लिंग कुछ का सम्बन्ध सं० कश्चिद् से जोड़ा जाता है। प्राकृत में कच्छु संभावित रूप माना जाता है। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसे किंचिद् से व्युत्पन्न मानते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि "कुछ में छ महाप्राण है, इस दृष्टि से यह निश्चय ही कश्चिद् के समीप है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से किंचित् अपेक्षाकृत अधिक समीप है।"[2] स्पष्ट ही इसका विकास किंचिद् या किंचित् से ही मानना उपयुक्त है विकास की प्रक्रिया यह है—सं० किंचित् > प्रा० किंचि, किंछि (महाप्राणत्व के कारण) > किच्छ > किच्छु, किछु > कछु > कुछ। कु में उ स्वर विपर्यय के कारण आया है।

---

१. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २८६
२. हिन्दीभाषा, पृ० २०८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकारी—'किसी' का सम्बन्ध कस्यापि से है। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसकी विकास प्रक्रिया यों मानते हैं—कस्यापि > कस्स-वि > कस्सइ > किसी।

किन्हीं—बहुवचन विकारी रूप किन्हीं का सम्बन्ध डॉ० उदय नारायण तिवारी केषामपि से जोड़ते हैं—केषामपि > कानामपि > काणंवि > काणाइ > किन्हीं। मेरी दृष्टि में इसे संस्कृत केषाम् से बने किन के महाप्राणीकृत रूप किन्ह का ही विकृत रूप मानना चाहिए। उन्हीं, तुम्हीं आदि के ढंग से यह रूप भी हिन्दी में ही निर्मित हुआ है।

प्रश्नवाचक—अविकारी—कौन, क्या
विकारी —किस, किन
कर्मकारकीय—किसे, किन्हें

कौन—इसकी व्युत्पत्ति के दो मुख्य स्रोत हैं—(१) कः और (२) कः पुनः
(१) श्यामसुन्दर दास, कामता प्रसाद गुरु आदि इसे कः से व्युत्पन्न मानते हैं—कः > को > कवण > कौन।

(२) टर्नर, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा तथा तिवारी-द्वय आदि विद्वान इसे कः पुनः से व्युत्पन्न मानते हैं। सामान्यतः विकास की प्रक्रिया यह है—सं० कः पुनः > पा० कोपन > प्रा० कोउण > अप० कवण, कवन हि० कौन। दोनों में दूसरा ही ठीक और सर्वमान्य है।

क्या—इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित-सी है। प्लाटस इसकी व्युत्पत्ति कीदृशः से मानते हैं। कीदृशः > केद्दहो > केहो > किहा > किआ > क्या। डॉ० भोलानाथ तिवारी मृच्छकटिक में क्या के अर्थ में 'कीस' के प्रयोग के आधार पर किस्यकः > पा० किस्सको > प्रा० किस्सा > कीआ > क्या इस विकास की कल्पना करते हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी इसकी व्युत्पत्ति किम् से मानते हैं। मेरी दृष्टि में प्लाट्स की व्युत्पत्ति अधिक संगत है। हाँ उसमें थोड़े संशोधन की आवश्यकता है—कीदृशः > केद्दहो > केहो > किहा > कहा, किआ > क्या।

विकारी—किस—यह कस्य से व्युत्पन्न है। कस्य > कस्स, किस्स > किस।

किन—इसकी व्युत्पत्ति सं० केषाम् से है। केषाम् > काणं, काण > किण > किन। एक दूसरे शब्द केनाम् से भी इसकी व्युत्पत्ति संभव है—केनाम् कणं > किन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसे—इसकी व्युत्पत्ति कस्ये या किस्ये से मानी जा सकती है। कस्ये, किस्ये कीसे > किसे।

किन्हें—इन्हें, उन्हें आदि के आधार पर यह विकृत रूप परवर्त्ती काल में बना है।

संबंधवाचक—अविकारी —जो, सो
विकारी —जिस, तिस—जिन, तिन।
कर्मकारकीय —जिसे, तिसे—जिन्हें, तिन्हें।

जो—इसकी व्युत्पत्ति यः से है। सं० यः > पा० यो > प्रा०, अप०, हि० जो।

सो—टर्नर, धीरेन्द्र वर्मा, भोलानाथ तिवारी इसे सः से व्युत्पन्न मानते हैं—सं० सः > प्रा०, अप० हि० सो। चटर्जी तथा उदय नारायण तिवारी सः के एक विस्तृत रूप सकः की कल्पना करते हैं और उसी से इसका विकास मानते हैं—सकः > सको, सगो सओ > सउ > सो।

विकारी—जिस—यह यस्य से संबद्ध है। यस्य > प्रा० जस्स, जिस्स > अप० जिस्स > हि० जिस।

तिस—इसकी व्युत्पत्ति तस्य से है। तस्य > तस्स, तिस्स > तिस।

जिन—येषाम से व्युत्पन्न इस शब्द की विकास प्रक्रिया यों है—येषाम् > प्रा० जाणं, जान > अप० जिण, जिन, हि० जिन > जिन्ह।

तिन—येषाम् की भाँति तेषाम् से यह व्युत्पन्न हुआ है। तेषाम् > प्रा० तिणं, तिन > अप० तिण > हि० तिन, तिन्ह।

जिन्हें तथा तिन्हें रूप जिन और तिन के महाप्राणीकृत रूप जिन्ह और तिन्ह में विकारी ए के योग से निर्मित हुए हैं।

निजवाचक—आप, अपना।

आप—यह संस्कृत आत्मन् से व्युत्पन्न है। विकास की प्रक्रिया है—आत्मन् या आत्मा > अप्पा > आपा > आप।

अपना—यह वस्तुतः आप का ही सम्बन्धकारकीय रूप है। अतः इसका भी सम्बन्ध आत्मन् से ही जोड़ना चाहिए। आत्मन > प्रा० अप्पणो, अप्पणा > अप० अप्पणउ, अपणा > परवर्ती अपभ्रंश आपण, आपणु > हि० अपना।

आदरार्थक आप भी आत्मनः से ही व्युत्पन्न है। यों आप्त (> अप्प > आप) तथा द्रविड़ शब्द अप्प से भी इसके व्युत्पन्न होने की संभावना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डॉ० भोलानाथ तिवारी को आत्मन से व्युत्पन्न आप में आदर का भाव नहीं मिलता इसलिए वे द्रविड़ कुल में इसकी व्युत्पत्ति ढूँढ़ने जाते हैं। क्योंकि हिन्दी के पूर्व इस अर्थ में आप का प्रयोग नहीं मिलता। मेरी समझ में यह आत्मन् से ही व्युत्पन्न है। हाँ, द्रविड़ प्रभाव के फलस्वरूप अर्थोत्कर्ष के कारण आदरवाची बन जाना असंभव नहीं है।

बोलियों में विशेषतः अवधी, भोजपुरी, व्रजभाषा आदि में आदरार्थक एक और शब्द प्रयुक्त होता है—राउर। यह राजकुल्य या राजकुल्य + केर (सम्बन्धेतर और सम्बन्धकारकीय रूपानुसार) से व्युत्पन्न है। राजकुल्य > राउल राउर, रउरा।

सर्ववाचक—

सब—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत सर्व से है।

सर्व > प्रा० अप० सब्व > हि० सब, यही विकास-प्रक्रिया है। शेष सर्ववाचक अन्य शब्द जैसे सकल, सर्व आदि तत्सम रूप में ही प्रयुक्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ सर्वनाम विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं। उन्हें सार्वनामिक विशेषण या सर्वनामजात विशेषण कहते हैं। हिन्दी में निम्नलिखित सार्वनामिक विशेषण हैं—

(१) परिमाणवाचक—इतना, उतना, जितना, तितना, कितना।

(२) गुणवाचक—ऐसा, वैसा, जसा, तैसा, कैसा।

परिमाणवाचक सर्वनामों की व्युत्पत्ति संस्कृत इयत, कियत् या इयत्तक, कियत्तक रूपों से हुई है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

इयत्, इयत्तक > एत्तिअ > इत्ता, इतना

कियत्, कियत्तक > केत्तिय > कित्ता, कितना

इसी प्रकार अन्य रूप भी। इन सबमें 'ना' बीम्स के अनुसार लघुतासूचक प्रत्यय है जो डॉ० उदय नारायण तिवारी के अनुसार अब अपना अर्थ (लघुता सूचन) खो चुका है।

(२) गुणवाचक सर्वनाम क्रमशः एतादृश, ओतादृश, यादृश, तादृश तथा कीदृश से व्युत्पन्न हैं। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है—एतादृश > एदिस, एइस > ऐस(+ स्वार्थे आ) = ऐसा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी प्रकार अन्य रूपों की भी व्युत्पत्ति समझी जा सकती है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी के सर्वनाम रूप सीधे संस्कृत से नहीं आकर मध्यकालीन शब्दों का संबल साथ लेकर आए हैं। इनके सभी रूपों की व्युत्पत्ति अभी तक असंदिग्ध नहीं हुई है और न हर जगह पूरी विकास-प्रक्रिया स्पष्ट है।

विशेषण

हिन्दी में विशेषणों का विकास संस्कृत की परिपाटी पर न होकर सामान्यतः स्वतन्त्र रूप से हुआ है। संस्कृत में विशेष्य के लिंग, वचन, विशेषण के लिंग, वचन को प्रभावित करते थे मगर हिन्दी में आकारान्त विशेषणों को छोड़कर शेष विशेषणों पर लिंग, वचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे—

आकारान्त विशेषण	—	काला कपड़ा	—	काले कपड़े
		काली घोड़ी	—	काली घाड़ियाँ
अन्य विशेषण	—	गोल कमरा	—	गोल कमरे
		साफ सड़क	—	साफ सड़कें

स्पष्ट हो "प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के विशेष्यानुसारी विशेषण हिन्दी में नहीं चलते। विकार या तो होता ही नहीं या होता है तो स्वतन्त्र रूप से होता है। हिन्दी के विशेषण लिंग, वचन और कारक के अनुसार जहाँ अप रूप में परिवर्त्तन करते हैं, वहाँ वे विशेष्य के रूप की विशेष चिन्ता नहीं करते"[1] इस प्रकार गुणवाचक विशेषणों में होनेवाले परिवर्त्तन ए और ई जैसे प्रत्ययों से सूचित हो जाते हैं।

गुणवाचक विशेषणों का ही एक वर्ग है—तुलनात्मक श्रेणियाँ। तुलनात्मक श्रेणियों के लिए तरार्थी और तमार्थी विशेषण शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। संस्कृत में इसके लिए क्रमशः तर और तम तथा अंग्रेजी में अर (er) और एस्ट (est) प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे—सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम : Hot, Hotter, Hottest.

हिन्दी में कुछ स्थलों पर तो तरार्थी और तमार्थी प्रत्यय चलते हैं मगर यह हिन्दी का प्रकृत रूप नहीं है। 'तर' के सूचन के लिए हिन्दी में से, से कहीं, से अधिक, से ज्यादा, आदि पद प्रयुक्त होते हैं। जैसे—तुम उससे बुरे हो। यह पुस्तक उससे अधिक या ज्यादा अच्छी है।

१. हिन्दीभाषा और उसका इतिहास, डॉ० रामगोपाल शर्मा दिनेश, पृ० ११७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तम के साथ भी यही स्थिति है। कुछ स्थलों पर (जैसे लघुत्तम, महत्तम आदि) तो तम का प्रयोग होता है मगर हिन्दी की प्रकृति के अनुसार प्रयुक्त होनेवाले पद हैं—सबसे, सबमें, सबसे ज्यादा, सबसे अधिक इत्यादि।

विशेषणों का एक वर्ग है—समानताबोधक। इसके लिए हिन्दी में सा, समान और सरीखा रूप मुख्यतः प्रयुक्त होते हैं। इनमें से समान शब्द अविकारी रूप में प्रयुक्त होता है जबकि शेष दो को लिंग और वचन प्रभावित करते हैं। जैसे—राम-सा बेटा, सीता-सी बेटी, गोल-से चेहरे, तुम सरीखे नौजवान, मुझ सरीखा सरल, सावित्री सरीखी पुत्रियां।

इनमें सा की व्युत्पत्ति संस्कृत सम् से है। समान शब्द तत्सम ही है। सरीख शब्द की व्युत्पत्ति सदृक्ष से है। विकास प्रक्रिया इस प्रकार है :—सदृक्ष.>सरीक्ख>सरीख। इसी में आ, ए, ई जोड़कर विकृत रूप बनाए जाते हैं।

विशेषणों के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण विकास संख्यावाचक विशेषणों का है। ये संख्यावाचक विशेषण प्रायः सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में समान रूप और ध्वनि वाले हैं। इस समानता के कारण डॉ० सु० कु० चटर्जी इन विशेषणों का विकास संस्कृत से न मानकर किसी मध्यकालीन भाषा से मानते हैं। उनके अनुसार मध्यकाल की ही किसी परनिष्ठित भाषा के संख्यावाचक विशेषण पूरे आर्य-भाषा-भाषी प्रदेश पर छा गये और उन्होंने प्रचलित प्राकृत रूपों को समाप्त कर दिया। किन्तु ज्ञात मध्यकालीन भाषाओं से परे किसी ऐसी परिनिष्ठित भाषा का अस्तित्व मानना कोरी कल्पना है। आधुनिक आर्य भाषाओं में इन विशेषणों की एकरूपता प्रमाणित करती है कि सारे रूप या तो संस्कृत रूपों से विकसित हुए हैं या मध्यकालीन प्राकृतों-अपभ्रंशों के किसी रूप से। यह दूसरी बात है कि हम पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में सभी संख्यावाचक विशेषणों की निर्भ्रान्त विकास-प्रक्रिया निरूपित नहीं कर पाते हैं।

संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति पर विचार करने के पूर्व इनका वर्गीकरण कर लेना अधिक उपयुक्त होगा। सामान्यतः संख्यावाचक विशेषणों के निम्न भेद माने गए हैं :—

(१) पूर्ण संख्यावाचक—एक, दो……सौ, हजार, लाख, करोड़ आदि।
(२) अपूर्ण संख्यावाचक—पाव, आधा, चौथाई, तिहाई, डेढ़ आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) क्रम संख्यावाचक—पहला, दूसरा आदि ।

(४) आवृत्ति संख्यावाचक—दुगुना, तिगुना आदि ।

(५) समुदाय संख्यावाचक,—दर्जन, कोड़ी, गंडा, गाही इत्यादि ।

अब इनके विकास पर अलग-अलग विचार करें ।

(१) पूर्ण संख्यावाचक:

एक—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत एक से है । पालि में भी एक ही है । किन्तु सविभक्तिक रूप भी मिलते हैं । प्राकृतों में बहुधा एँवक रूप मिलता है ।[1] एँवका रूप स्त्रीलिंग में मिलता है । अपभ्रंश में आकर एक, एक्क, इक्क आदि रूप मिलते हैं । यही हिन्दी में एक हो जाता है । इस प्रकार एक की विकास प्रक्रिया यों है—सं० एक >प्रा० एँवक, एवक >अप० एक, इक्क >हि० एक । एक से संयुक्त अन्य संख्यावाचक शब्दों में ए की जगह इ भी मिलता है । जैसे—इक्कीस, इकतीस इत्यादि । ग्यारह में एका के बदले ग्या या एगा मिलता है जो संभवतः क के घोषीकरण का परिणाम है ।

दो—यह संस्कृत द्वौ से उत्पन्न है । इसका विकास इस प्रकार है—
सं० द्वौ >प्रा० दो >हि० दो ।

द्वौ में व् बलहीन है अतः इसका लोप होने से दो बना है । किन्तु अन्य संख्याओं में द्वौ का रूप बा या बया मिलता है जो स्वाभाविक नहीं है । डॉ० भोलानाथ तिवारी मानते हैं कि द्वौ का विकास द्ब में हुआ होगा और बाद में द् के लोप होने से ब बच गया होगा । अशोक के गिरनार वाले शिलालेख में द्ब रूप मिलता भी है अतः इसे अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता । पालि तथा प्राकृत में दुवे, दो, दुबे, वे आदि रूप मिलने लगते हैं । बयालीस आदि के बया में य श्रुति है और आ अन्य समीपवर्त्ती संख्याओं का प्रभाव । अन्य शब्दों में दो या दु रूप मिलते हैं । जैसे—दोपहर, दुनाली इत्यादि ।

तीन—संस्कृत त्रीणि >पा० तीणि >प्रा० तिण्णि >अप० तिण्ण, तिन्न, तिन >हि० तीन, यही इसकी विकास प्रक्रिया है । त्रीणि से तिण्णि का सीधा विकास नहीं हुआ है । यह संभवतः पालि रूप 'तीणि' में द्वित्व प्रवृत्ति के प्रभाव स्वरूप हुआ है । डॉ० उदयनारायण तिवारी इसके लिए त्रीणि और तिण्णि के बीच तीर्णि रूप की कल्पना करते हैं । अन्य संख्याओं में तीन के ते, तें, ति

१. हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण, डॉ० चन्द्रभान रावत, पृष्ठ—२७१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा तिर रूप मिलते हैं जो संस्कृत त्रय या त्रि से विकसित हैं। समासों में भी यही रूप प्राप्त होते हैं।

चार—यह संस्कृत चत्वारि से व्युत्पन्न है। विकास का क्रम इस प्रकार है—चत्वारि >पा०, प्रा० चत्तारि >अप० चयारि, चारि >हि० चारि, चार। अन्य संख्याओं में चो, चौं रूप मिलते हैं। जैसे—चौदह, चौंसठ समासों में चौ और चार रूप मिलते हैं। जैसे—चोपाया, चारपाई। चौ या चौं का विकास संस्कृत रूप चतुर >प्रा०, अप० >चउर >हि० चौ के रूप में हुआ है।

पाँच—संस्कृत पंच >प्रा०, अप० पंच >हि० पाँच के रूप में इसका विकास हुआ है। संयुक्त संख्याओं तथा समासों में यह पाँच, पन, पैं, पच, पंच आदि रूपों में आता है। इनमें पंच का विकास पाँच >पंच (आ >अ) रूप में है तथा पन संस्कृत पंच >पन्न >पन रूप में विकसित है। पैं का विकास पंच में च के लोप होने और श्रुति रूप में य के आने से पँय >पैं, इस प्रकार हुआ है।

छह—इसकी व्युत्पत्ति विवादास्पद है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यह सं० षट् (षष्) से षट् >छ >छह रूप में विकसित है। डॉ० भोलानाथ तिवारी विकास का रूप यों मानते हैं—सं० षट् > पा०, प्रा० छअ (उच्चरित रूप छ) > अप० छह (ह का आगम) >हि० छह। डॉ० चन्द्रभान रावत के अनुसार पालि में ही ष का छ में विकास हो गया दीखता है। यहाँ विकास से अधिक विचारणीय यह है कि षट् के ष का छ कैसे हो गया। टर्नर ने इसे असभव मानकर षट् के स्थान पर क्षट् की कल्पना की और डॉ० चटर्जी ने क्षक् या क्षष् रूप की कल्पना। डॉ० भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि ष-श-स आपस में परिवर्त्य रहे हैं और श या स का छ में परिवर्त्तन विरल होते हुए भी अप्राप्य नहीं है।[१] जैसे—सं० शिक्या—हि० छीका, सं० शकट—हि० छकड़ा (बोलियों में—सूक्ष्म—छुछुम)। इसलिए मेरी दृष्टि में छ की सिद्धि के लिए किसी कल्पित रूप की स्थापना के बदले ष को ही मान लेना उपयुक्त है।

सात—यह संस्कृत सप्त से व्युत्पन्न हैं। सप्त >प्राकृत सत्त >अप० सत्त >हि० सात। सात, सत, सत्त, सर, सड़, सैं आदि इसके अन्य रूप विभिन्न संख्याओं में मिलते हैं। इनमें सैं का विकास सत्त >सय (श्रुति) >सै, सैं रूप में हुआ है। सड़ या सर में ड़ अथवा र डॉ० चटर्जी के अनुसार अड़सठ

---

१. हिन्दी भाषा, पृ० २१९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि का प्रभाव है। जब कि भोलानाथ तिवारी इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार देते हैं—सप्त >सत्त > सत >सट >सड >सड़ >सर।

आठ—यह संस्कृत अष्ट से विकसित है। अष्ट >प्रा०, प्रा०, अप० अट्ठ >हि० आठ। अन्य संख्याओं में यह आठ, अठ, अट्ठा, अठा, अर, अड़ आदि रूपों में मिलता है।

नौ—सं० नव >प्रा०, अप०, हि० नौ। संयुक्त संख्याओं में उन (अर्थात् दहाई में एक कम) रूप ही मिलता है—उन >उण >उन। समासों में नव, न, नौ आदि रूप मिलते हैं।

दस—संस्कृत दश >प्रा० दस, दह, डह रह, लह >अप० दस >हि० दस। संयुक्त संख्याओं में रह, लह, दह, आदि मिलते हैं जो प्राकृतकालीन हैं और अपरिवर्तित रूप में चले आए हैं।

ग्यारह—यह संस्कृत एकादश से व्युत्पन्न है। संभवतः मूल रूप एकदश ही था मगर द्वादश के साम्य पर एकादश हो गया। इसका प्राकृत में एआरह तथा एग्गारह रूप मिलता है। एकादश के क के लोप होने तथा द एवं श का रह में परिवर्त्तन होने से एआरह तो बनना ठीक है मगर एग्गारह कैसे बना, यह विचारणीय है। जिस प्रकार प्राकृत में संस्कृत एक का क सुरक्षित ही नहीं रहा बल्कि दीर्घीकरण की प्रवृत्ति के कारण एक्क हो गया उसी प्रकार एकादश में यह क्क अपने घोषीकृत रूप ग्ग में परिणत होकर गृहीत हुआ। अघोष क का घोष ग में परिवर्तन स्वाभाविक है। प्राकृत रूप एग्गारह का हिन्दी में ग्यारह बना। इसके दो कारण हो सकते हैं। या तो ए लुप्त हो गया और श्रुति के कारण ग का परिवर्त्तन य में हुआ। या फिर ए एकांगी विपर्यय से ग के स्थान पर य बनकर बैठ गया। इसमें पहला ही अधिक संगत प्रतीत होता है। इस तरह ग्यारह की पूरी विकास प्रक्रिया यों है—सं० एकादश >प्रा०, अप० एआरह, इग्यारह, एग्गारह >हिन्दी ग्यारह।

बारह—संस्कृत द्वादश में द्वा का पालि रूप द्व मिलता है। इसी में आधा होने के कारण संभवतः द् का लोप हो गया और बा अवशिष्ट रहा। दश का रह हुआ और इस प्रकार बारह की उत्पत्ति हुई। द्वादश > बारह >बारह।

तेरह—सं० त्रयोदश >प्रा०, अप० तेरह >हि० तेरह। संस्कृत त्रयो में त्र का त में परिवर्त्तन हुआ तथा अर्द्धस्वर य लुप्त हो गया। साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही ओकार एकार में परिवर्त्तित होकर त से मिल गया। इस प्रकार त्रयो का ते में परिवर्त्तन हुआ। दश का रह में परिवर्त्तन हुआ और तेरह बना।

चौदह—संस्कृत चतुर्दश >प्रा०, अप० चउद्दह >हि० चौदह। चतुर्दश में चतुर मूल रूप है। इसका प्राकृत तथा अपभ्रंश में चउर रूप मिलता है। चउर के उकार का औकार में परिवर्त्तन सामान्य रूप से हुआ और र का लोप हो गया। इस प्रकार चउर का चौ बना। उधर दश में श का ह में परिवर्त्तन हुआ तथा द परिणत होकर र बनने के बदले अपरिवर्त्तित रह गया। इस तरह चौदह की सिद्धि हुई।

पन्द्रह—यह संस्कृत पंचदश से व्युत्पन्न है। प्राकृत में पणरह, पणरहो, पणारहो आदि रूप मिलते हैं तथा अपभ्रंश में पण्णरह। इसकी विकास प्रक्रिया में थोड़ी-सी असामान्यता है। पंचदश के पंच का पण और दश का रह रूप तो ठीक है। मगर हिन्दी में आकर इसमें द का आगम अस्वाभाविक रूप से हो जाता है। इसे यदि मध्य व्यंजनागम मान लें तो समस्या सुलझ जाती है। वानर—बन्दर, जैसे कुछ रूपों से इस प्रकार के आगम मिलते भी हैं। इस प्रकार के आगम से पणरह का हिन्दी रूप पनदरह होना चाहिए। मगर मिलता है पन्द्रह। इसका कारण मेरी समझ से यह है कि द के प्रभाव-स्वरूप अन्तस्थ र और आनुनासिक न अपने अर्द्ध रूप में होकर द से मिल गये। स्पर्शी द की तुलना में आनुनासिक न और अन्तस्थ र की बलहीनता सहज सिद्ध है।

सोलह—संस्कृत षोडश >प्रा०, अप० सोलह >हि० सोलह। यहाँ ष का स में ड का ल में और श का ह में परिवर्त्तन होने से सोलह बना। ये तीनों परिवर्त्तन सामान्य हैं।

सत्रह—यह संस्कृत सप्तदश से व्युत्पन्न है। सं० सप्तदश >प्रा० सत्तरह >अप० सत्तरह >हि० सत्रह। प्त का त्त में और फिर त में परिवर्त्तन होता है यह हम सात की व्युत्पत्ति के क्रम में देख आए हैं। उसी विधि से यहाँ सप्त का सत्त हुआ। तथा (द और श के क्रमशः र और ह में परिणत होने से) सत्तरह बना। हिन्दी में इसका रूप सतरह होना चाहिए। बोलियों में चलता भी है। किन्तु हिन्दी में तर अलग-अलग न रहकर त्र में परिणत हो गये हैं। इसका कारण या तो पन्द्रह में द और र के मेल का प्रभाव मानना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा या फिर बलवान स्पर्शी त के साथ बलहीन अन्तस्थ र का सामीप्य के कारण संयुक्त होना माना जायगा ।

अठारह—सं० अष्टादश >प्रा०, अप० अट्ठारह >हि० अठारह । इसमें दश का रह तो सामान्य परिवर्त्तन है । अष्टा का प्राकृत में अट्ठा हुआ और हिन्दी में आकर अर्द्ध होने के कारण बलहीन ट् लुप्त हो गया । इस प्रकार अठारह बना ।

उन्नीस—यह संस्कृत एक (उपसर्ग)+उनविंशति से व्युत्पन्न है । एकोनविंशति >ऊनविंशति >प्रा० ऊणवीसइ, उनवीसा, एकूनवीसा >उन्नीस । इसमें विंशति का बीस हुआ है जो आगे स्पष्ट किया जायगा तथा उन अपने अपरिवर्त्तित रूप में रह गया है । जिससे प्राकृत में उनवीस हुआ है । हिन्दी में इसका रूप या तो उन्नीस होना चाहिए या उनइस होना चाहिए । बोलियों में उनइस चलता भी है । कारण, उणवीस के ण का हिन्दी में न होगा और अर्धस्वर व के लोप होने पर ई बचेगा । इस तरह अलग रहने पर उनईस और संयुक्त होने पर उनीस होना चाहिए । किन्तु यहाँ भी न का आगम होने से उन्नीस हुआ है ।

वीस—इसका सस्कृत में विंशति >प्रा० में बीसई >अप० में बीस और हिन्दी में बीस मिलता है । इसमें परिवर्त्तन साधारण है । विंशति के ति का सर्वथा लोप हो गया है तथा श स में परिवर्त्तित हो गया है जो सनियम है । इसी प्रकार व का ब में परिवर्त्तन अनुस्वार का लोप और ह्रस्व इ का दीर्घ ई में परिवर्त्तन हुआ है ।

इक्कीस से निन्यानवे तक की संख्याओं की व्युत्पत्ति पर विस्तारपूर्वक विचार न कर उनका संक्षिप्त विकास भर प्रस्तुत किया जाता है ।

(२१) सं० एकविंशति >प्रा० एक्कवीसा, एक्कवीसअ >एक्कबीस >हि० इक्कीस ।

(२२) सं० द्वाविंशति >पा० बावीसति, बावीस >प्रा० बावीस >अप० बावीस, बाइस >हि० बाईस ।

(२३) सं० त्रयोविंशति > पा०, प्रा०, अप० > तेवीस > हि० तेइस, तेईस ।

(२४) सं० चतुर्विंशति > चतुवीसति > प्रा० चउव्वीस > अप० चउवीस हि० चौबीस ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२५) सं० पंचविंशति > पा० पंचवीसति > प्रा० पंचवीस > अप० पंचवीस पचीस > हि० पचीस, पच्चीस (बलाघात से उत्पन्न वर्ण द्वित्व के कारण)।

(२६) सं० षड्विंशति > पा० छब्बीसति > प्रा०, अप० छब्बीस > हि० छब्बीस।

(२७) सं० सप्तविंशति > पा० सत्तवीसति > प्रा० सत्तवीसा > अप० सत्ताइसा, सत्ताइस > हि० सत्ताइस।

(२८) सं० अष्टाविंशति > पा० अट्ठावीसति > प्रा० अप० अट्ठावीस > हि० अट्ठाइस।

(२९) सं० एकोनत्रिंशत > प्रा० एकूनतिंसति > प्रा० अउणत्तास > अप० उणत्तीस, उणतीस > हि० उन्तीस।

(३०) सं० त्रिंशत् > पा० तिंसति > प्रा०, अप० तीस > हि० तीस।

(३१) सं० एकत्रिंशत > पा० एकत्तिंसति > प्रा० इक्कत्तीस > अप० एकत्तिस > हि० इकत्तीस, इकतीस।

(३२) सं० द्वात्रिंशत् > पा० बत्तिंसति > प्रा० बत्तीसा > अप० बत्तीस > हि० बत्तीस।

(३३) सं० त्रयस्त्रिंशत् > पा० तेत्तिंसति > प्रा० तेत्तीसा, तेत्तीसं > अप० तेत्तीस, तेत्रिस > हि० तेंतिस, तैंतिस।

(३४) सं० चतुस्त्रिंशत > चतुर्त्रिंसति > प्रा० चोत्तीसं > अप० चउतीस हि० चौंतीस।

(३५) सं० पंचत्रिंशत् > पा० पंचतिंसति > प्रा० पणतीसं > अप० पइंतिस > हि० पैंतीस।

(३६) सं० षट्त्रिंशत > पा० छत्तिंसति > प्रा० छत्तीसा > अप० छत्तिस > हि० छत्तीस।

(३७) सं० सप्तत्रिंशत् > पा० सत्ततिंसति > प्रा० संत्ततीसं > अप० सयंतीस (कल्पित रूप) हि० सैंतीस।

(३८) अष्टात्रिंशत् > पा० अट्ठात्तिंसति > प्रा० अट्ठातीसा > अप० अट्ठतीस > हि० अड़तीस।

(३९) सं० एकोनचत्वारिंशत् > पा० एकूनचत्तालिसति > प्रा० उन्तालीस > अप० उन्तालिस > हि० उन्तालीस। (चालीस के साम्य पर उच्चरित)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४०) सं० चत्वारिंशत > पा० चत्तालीसं > प्रा० चत्तालीसा > अप० चालीस > हि० चालीस ।

(४१) सं० एकचत्वारिंशत > पा० एकचत्तालीसति > प्रा० एक्कचत्तालीसा > अप० एकतालीस > हि० इकतालीस ।

(४२) सं० द्वाचत्वारिंशत् > प्रा० बयालीसं > अप० बैतालीस > हि० बयालीस, बयालिस ।

(४३) सं० त्रिचत्वारिंशत > पा० तिचत्तालीसति > प्रा० तेआलीसा > अप० तेत्तालीस > हि० तैंतालिस ।

(४४) सं० चतुश्चत्वारिंशत् > पा० चोत्तालीसति > प्रा० चोवालीसा > अप० चउआलीस > हि० चौवालिस, चौवालीस ।

(४५) पंचचत्वारिंशत् > पा० पंच चत्तालीसति > प्रा० पन्नचत्तालीसा > अप० पणतालीस > हि० पैंतालीस ।

(४६) सं० षट्चत्वारिंशत् > पा० छवत्तालीसति > प्रा० छवालीस > अ० छायालिस > हि० छयालिस ।

(४७) सप्तचत्वारिंशत् > पा० सत्ता चत्तालीसति > प्रा० सत्त अत्तालीसं (कल्पित रूप) > अप० सततालीस > हि० सैंतालिस ।

(४८) अष्टचत्वारिंशत > पा० अट्ठचत्तालीसति > प्रा० अट्ठअत्तालीसं > अप० अट्ठतालीस > हि० अड़तालीस ।

(४९) एकोनपंचाशत् > पा० एकूनपंचासा > प्रा० ऊणपंचासा > अप० उणंचास (कल्पित) > हि० उनचास, उन्चास ।

(५०) सं० पंचाशत् > पा० पंचासा > अप० पंचास > हि० पचास ।

(५१) एकपंचाशत् > प्रा० एक्कावणं > अप० एक्कावण > हि० इक्यावन ।

(५२) द्वापंचाशत् > प्रा० बावण्ण > अप० बावण > हि० बावन ।

(५३) त्रिपंचाशत् > प्रा० तिरपण > अप० त्रेपन > हि० तिरपन ।

(५४) सं० चतुः पंचाशत् > प्रा० चउव्वण > अप० चउवण > हि० चौवन ।

(५५) सं० पंच पंचाशत् > प्रा० पंचपण्ण > अप० पचपण > हि० पचपन ।

(५६) सं० षट्पंचाशत् > प्रा० छप्पण > अप० छप्पण > हि० छप्पन ।

(५७) सं० सप्तपंचाशत् > प्रा० सत्तावण्ण > अप० सत्तावण > हि० सत्तावन ।

(५८) सं० अष्टापंचाशत् > पा० अट्ठापंचासा > प्रा० अट्ठावण्ण > अप० अट्ठावण > हि० अठ्ठावन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५९) सं० एकोनषष्टि >पा० एक्कनसट्ठि >प्रा० अउणसट्ठि, उणसट्ठि > अप० उणसट्ठ >हि० उनसठ।

(६०) सं० षष्टि >पा०, प्रा०, अप० सट्ठि >हि० साठि, साठ।

(६१) सं० एकषष्टि >पा०, प्रा० अप० एकसट्ठि >हि० इकसठ।

(६२) सं० द्वाषष्टि >पा० द्वासट्ठि >प्रा०, अप० वासट्ठि >हि० बासठ।

(६३) सं० त्रिषष्टि >पा० तिसट्ठि >प्रा० तेसट्ठि >अप० त्रेसठि >हि० तिरसठ।

(६४) सं० चतुष्षष्टि >पा० चतुसट्ठि >प्रा० चउसट्ठि >अप० चउसट्ठि, चउसठि >हि० चौंसठ।

(६५) पंचषष्टि >पा० पचसट्ठि >प्रा० पणसट्ठि >अप० पणसठि >हि० पैंसठ।

(६६) षट्षष्टि >पा० छसट्ठि >प्रा० छासट्ठि >अप० छावट्ठि >हि० छासठ, छियासठ।

(६७) सप्तषष्टि >पा०, प्रा०, अप०सत्तसट्ठि >हि० सड़सठ।

(६८) सं० अष्ट षष्टि >पा०, प्रा०, अप० अट्ठसट्ठि >हि० अड़सठ।

(६९) सं० एकोन सप्तति >पा० एकून सत्तति >प्रा० एगून सत्तरि >अप० उणसत्तरि >हि० उनहत्तर (स का ह में परिवर्त्तन होने से)।

(७०) सं० सप्तति > पा० सत्तति >प्रा० सत्तरि >अप० सत्तरि >हि० सत्तर।

(७१) सं० एक सप्तति >पा० एक सत्तति >प्रा० एक्क सत्तरि >अप० एक हत्तर (कल्पित) >हि० इकहत्तर।

(७२) सं० द्वासप्तति >पा० द्वासत्तति >प्रा० बास्सतरि (कल्पित) > अप० बहत्तरि >हि० बहत्तर।

(७३) सं० त्रिसप्तति >पा० तिसत्तति >प्रा० तिसत्तरि >अप० तिहत्तरि >हि० तिहत्तर।

(७४) सं० चतुस्सप्तति >पा० चतुसतति >प्रा० चउहत्तरि >अप० चउस्तरि (कल्पित) >हि० चौहत्तर।

(७५) सं० पंच सप्तति >पा० पंचसत्तति >प्रा० पंचहत्तरि >अप० पंचसत्तर >हि० पचहत्तर।

(७६) सं० षष्ट्सप्तति >पा० छसत्तति >प्रा० छहत्तरि, छेहत्तर (कल्पित) >हि०छिहतर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७७) सं० सप्तसप्तति >पा० सत्तसत्तति >प्रा० सत्तहत्तरि >अप० सत्तहत्तर >हि० सतहत्तर ।

(७८) सं० अष्टसप्तति >पा० अट्ठसत्तति >प्रा० अट्ठहत्तरि >अप० अट्ठहत्तरि >हि० अठहत्तर ।

(७९) सं० एकोनाशीति >पा० एकूनासीति >प्रा० एगूनासीइ, उणास्सी > अप० उणासी >हि० उनासी ।

(८०) सं० अशीति >पा० असीति >प्रा० असीइ >अप० असिइ, असी, अस्सी >हि० अस्सी ।

(८१) सं० एकाशीति >पा० एकासीति >प्रा० एक्कासीइ >अप० इकयासी >हि० इक्यासी, एकासी ।

(८२) सं० द्वाशीति > पा० द्वेअसीति > प्रा० वेआसी, बायासी > हि० बयासी, बेरासी (तिरासी के साम्य पर) ।

(८३) सं० त्रयशीति >प्रा० त्रेयासी >अप० त्रेयासी >हि० तेरासी, तिरासी ।

(८४) सं० चतुरशीति >पा० चतुरासीति >प्रा० चउरासीइ >अप० चउरासी >हि० चौरासी ।

(८५) सं० पंचाशीति >पा० पंचासीति >प्रा० पंचासीइ >अप० पच्चासी > हि० पच्चासी, पचासी ।

(८६) सं० षडशीति >पा० छासीति >प्रा० छयासीइ >अप० छयासी >हिन्दी छियासी ।

(८७) सं० सप्ताशीति >पा० सत्तासीति >प्रा० सत्तासीइ >अप० सत्तासी > हि० सत्तासी, सतासी ।

(८८) स० अष्टाशीति >पा० अट्ठासीति >प्रा० अट्ठासीइ >अप० अट्ठासी >हि० अट्ठासी, अठासी ।

(८९) सं० नवाशीति >पा० नवासीति >प्रा० नवासीइ >अप० नवासी >हि० नवासी ।

(९०) सं० नवति >पा० नवति, नवुति >प्रा० णवदि, णवइ, णउइ >अप० णवदि, णवइ, नब्बए > हि० नब्बे ।

(९१) सं० एक नवति >पा० एक नवुति >प्रा० एकूणउइ >अप० एक्काणउइ > हि० इक्यानवे ।

(९२) सं० द्वानवति > पा० द्वानवुति > प्रा० बाणउइ > अप० बाणवइ, बानवे >हि० बानवे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(९३) सं० त्रिनवति > प्रा० तिरण्णउइ > अप० तिरण्णउइ > अप० हि० तिरानवे ।

(९४) सं० चतुर्नवति > पा० चतुनवुति > प्रा० च उणउइ > अप० चउराणवइ > हि० चौरानवे ।

(९५) पंचनवति > पा० पंचनवुति > प्रा० पंचणउइ > अप० पंचण्णवइ > हि० पंचानवे ।

(९६) सं० षण्णवति > पा० छन्नवुति > प्रा० छण्णउइ, छण्णवइ > अप० छण्णउइ, छण्णवइ > हि० छानवे ।

(९७) सं० सप्तनवति > पा० सत्तनवुति > प्रा० सत्ताणउइ > अप० सत्ताणवइ, सत्तानउए > हि० सत्तानवे ।

(९८) सं० अट्ठानवति > पा० अट्ठानवुति > प्रा० अट्ठाणउइ > अप० अट्ठाणवइ > हि० अट्ठानवे ।

(९९) सं० नवनवति > पा० नवनवुति > पा० णवणवइ > अप० णवणउयइ > निन्यानवें ।

सौ—यह संस्कृत शत् से व्युत्पन्न है । इसी के उच्चारण के आधार पर भारत-इरानी कुल की आर्य भाषाओं को शतम् वर्ग में रखा जाता है तथा अन्य योरोपीय भाषाओं को केन्तुम वर्ग में । क्योंकि वहाँ सौ का उच्चारण शतम् न होकर केन्तुम होता है । शत् से सौ की विकास प्रक्रिया इस प्रकार है—सं० शत् > प्रा० सअ, सय > अप० सउ, सइ > हि० सैं, सौ । बोलियों में सै भी चलता है अतः अपभ्रंश में सउ के साथ-साथ एक रूप सइ भी मानना उचित होगा ।

हजार—यह फारसी से हिन्दी में आया है । संस्कृत में इसके लिए सहस्र शब्द है जो सहस रूप में चलता है । संस्कृत सहस्र का अवेस्ता में हज़अर रूप हो जाता है । कारण संस्कृत स इरानी में ह तथा स का ही घोष रूप ज़ हो जाता है । इस आधार पर हज़अर का ही बाद में अ के आ में परिणत होकर ज से मिल जाने पर हजार बना ।

लाख—यह संस्कृत लक्ष से व्युत्पन्न है । लक्ष > प्रा० लक्ख > हि० लाख । यही विकास का रूप है ।

करोड़—इसका सम्बन्ध कोटि से है । सं० कोटि > प्रा०, अप० कोटि > हि० करोड़ । कोटि का करोड़ होने में डॉ० भोलानाथ तिवारी र का आगम मानते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरब—यह अर्बुद से व्युत्पन्न है। अर्बुद में र पूर्ण होकर आ गया। व का ब में परिवर्त्तन हुआ। उकार तथा अंतिम द लुप्त हो गया।

खरब—यह सं० खर्व से व्युत्पन्न है। खर्व में संयुक्ताक्षर का विलगाव होने और व का ब होने से खरब बना है।

इसके अतिरिक्त नील, शंख, पद्म आदि कुछ और भी पूर्ण संख्यावाचक विशेषण हैं जो अपने तत्सम रूप में ही चलते हैं। वैसे इनका व्यावहारिक प्रयोग विरल ही मिलता है।

(२) अपूर्ण संख्यावाचक :—

हिन्दी में निम्नलिखित शब्द अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं—पाव, चौथाई, तिहाई, आधा, पौन, सवा, डेढ़, ढाई, साढ़े। हुट्ठा, ढ्योंचा आदि शब्द अब नहीं चलते। उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति नीचे दी जाती है।

पाव—यह संस्कृत पाद से व्युत्पन्न है। सं० पादः > प्रा० पाओ > अप० पाउ > हि० पाव, यही विकास की प्रक्रिया है। बोलियों में एक और रूप चलता है—पउआ। इसकी व्युत्पत्ति सं० पादक से है। विकास इस प्रकार है। सं० पादक > प्रा० पाअक > पाउअ > पाउआ > हि० पउआ। अधपई आदि शब्दों में प्रयुक्त पइ रूप संस्कृत पादिका से व्युत्पन्न है—पादिका > प्रा० पाइआ > पइआ > पई।

चौथाई—यह संस्कृत चतुर्थिक से व्युत्पन्न है। प्राकृत में चउत्थिअ रूप मिलता है जो उसकी स्वरबहुला प्रवृत्ति के अनुरूप है। यही चउत्थिअ हिन्दी में चौथाई बन गया। विकास की दिशा यह है—सं० चतुर्थिक > प्रा० चउत्थिअ > हि० चौथाई।

तिहाई—इसका विकास संस्कृत त्रिभागिका से हुआ है। प्रक्रिया यह है—सं० त्रिभागिका > प्रा० तिहाइआ > हि० तिहाई (आ के लोप होने से)।

आधा—इसकी व्युत्पत्ति डॉ० धीरेन्द्र वर्मा अर्द्ध से तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी अर्द्धक से मानते हैं।

(i) सं० अर्द्ध > प्रा० अद्ध > हि० आध > आधा।

(ii) अर्द्धक > प्रा० अद्धअ > हि० आधा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौन—यह संस्कृत पादोन से व्युत्पन्न है। सं० पादोन > प्रा० पाओन > पाउण > पौन। डॉ० भोलानाथ तिवारी इसे एक तत्सम शब्द न मानकर पाद + उन (अर्थात् पाव कम) के योग से निर्मित मानते हैं।

सवा—इसका विकास संस्कृत सपाद से है। सं० सपाद > प्रा० सवाअ > हि० सवा।

डेढ़—इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्य तीन मत हैं। डॉ० वर्मा इसे द्वयर्द्ध से जोड़ते हैं—द्वयर्द्ध > दिअड्ढ़ > डेढ़।

डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार यह द्वि + अर्द्ध (क) से व्युत्पन्न है। द्वि + अर्द्ध (क) द्वि—अड्ढ़ (अ) > ड्योढ़ा > डेढ़।

डॉ० भोलानाथ तिवारी द्विकार्द्ध से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। द्विकार्द्ध > प्रा० दिवड्ढ़ > अप० दिअड्ढ़। मेरी समझ में डॉ० वर्मा का मत अधिक ठीक है।

ढाई—यह संस्कृत अर्द्धतृतीय से व्युत्पन्न है। सं० अर्द्धतृतीय > प्रा० अड्ढाइअ > अढ़ाई > ढाई।

साढ़े—यह सार्द्ध से विकसित है। सार्द्ध > सड्ढ > अप० सड्ढ़े > साढ़े।

(३) क्रम संख्यावाचक :—

हिन्दी में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, छठा ये क्रम संख्यावाचक विशेषण हैं। शेष संख्याओं में वाँ लगा देने पर क्रमवाचक बन जाता है। जैसे—पाँचवाँ, सातवाँ इत्यादि।

पहला—डॉ० वर्मा इसका विकास प्र—थ + इल > पथिल्ल, पढ़िल्ल > पहिला, पहला रूप में मानते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी संस्कृत प्रथम > प्रा० (पढ़म + इल्ल) पढ़िल्ल > अप० पहिल > हि० पहला से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी भी प्रथम में इल्ल प्रत्यय जोड़कर ही इसकी व्युत्पत्ति निरूपित करते हैं। वस्तुतः पहिला शब्द उपभ्रंश काल की देन है जहाँ हमें इल्ल प्रत्यय की प्रधानता मिलती है।

दूसरा, तीसरा—बीम्स इनकी व्युत्पत्ति द्वि + सृतः, त्रि + सृतः से जोड़ते हैं। भोलानाथ तिवारी का तर्कपूर्ण अनुमान है कि भारोपीय में तीन के दो मूल थे—त्रि और तिसृ। इसी तिसृ से तीसरा की व्युत्पत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुई है। दूसरा शब्द तीसरा के सादृश्य पर निर्मित हुआ है। हार्नले ने भी सरा की व्युत्पत्ति सृत से मानी है। इस प्रकार द्विसृत और त्रिसृत से दूसरा और तीसरा की व्युत्पत्ति उचित दीखती है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि इनका कोई रूप प्राकृत या अपभ्रंश में नहीं मिलता है। वहाँ दुइय, विइय जैसे रूप मिलते हैं।

चौथा—डॉ॰ वर्मा तथा डॉ॰ उ॰ ना॰ तिवारी इसे चतुर्थ से व्युत्पन्न मानते हैं—चतुर्थ > चउत्थ > चौथा। भोलानाथ तिवारी चतुर्थकः से विकास मानते हैं। चतुर्थकः > चउत्थअ > चउत्था > चौथा। मेरी दृष्टि में पहला अधिक सरल है और वैज्ञानिक भी क्योंकि चौथा के लिए तत्सम रूप चतुर्थ ही चलता है।

छठा—इसका विकास सं॰ षष्ठकः से है। विकास इस प्रकार हुआ है—सं॰ षष्ठकः > प्रा॰ छट्ठओ > अप॰ छट्ठम, छट्ठय > हि॰ छठा।

पाँचवाँ—सातवाँ आदि—इसमें पुल्लिग में वाँ प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग में वीं प्रत्यय लगता है। इसकी व्युत्पत्ति बीम्स और डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा—तम से मानते हैं। जैसे पंचतम—पांचवां। डॉ॰ उदयनारायण तिवारी इसे मः से सम्बद्ध मानते हैं। पचमः > पाँचवां। डॉ॰ भोलानाथ तिवारी इसे मक से सम्बद्ध मानते हैं। पंचमक—पांचवां, पंचमिका—पांचवी। मेरी दृष्टि में यह अम् से व्युत्पन्न है। सस्कृत में हम पंचम् सप्तम आदि का प्रयोग करते हैं और इसी अर्थ में हिन्दी में पांचवां सातवां का प्रयाग होता है।

(४) आवृत्ति संख्यावाचक :—

आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण के रूप में निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग होता है। (i) गुना या इसी के अन्य रूप गूना और उना का। (ii) हरां।

गुना—यह डॉ॰ वर्मा के अनुसार संस्कृत गुण से व्युत्पन्न है। जैसे द्विगुण-दुगुना, दूना या दुगुना। मगर डॉ॰ तिवारी—द्वय के अनुसार यह गुण+क से व्युत्पन्न है। विकास यों है-गुण+क > प्रा॰ गुणअ > हि॰ गुना, ग के लोप से उना और उ के लोप से ग्ना।

हरा—इसका विकास डॉ॰ उदयनारायण तिवारी संस्कृत हर (भाग) से मानते हैं। हार्नले इसे विध से व्युत्पन्न मानते हैं। जैसे-द्विविध >

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुविह > दोहउ > दोहरा। भोलानाथ तिवारी इसे हर+क से निकला मानते हैं। विकास प्रक्रिया यह है हर+क > प्रा० अप० हरअ > हि० हरा।

(५) समुदाय संख्यावाचक—

(i) इक्का, दुग्गी, नहला, दहला आदि समुदायवाचक संख्याएँ ताश के पत्तों के नाम के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनका सम्बन्ध डॉ० भोलानाथ तिवारी संस्कृत रूप में क जोड़कर बनाने से मानते हैं जैसे सप्तक > सतअ > सत्ता।

(ii) नहला, दहला-शब्द या तो पहला के सादृश्य पर बने हैं या उपर्युक्त संख्याओं नौ और दस में ला जोड़ने से बने हैं।

(iii) सैकड़ा, चौकड़ी आदि संस्कृत रूप में कृतक या कृतिका जोड़ने से बने है। जैसे—शत + कृतक > सैकड़ा। चतुः + कृतिका > चौकड़ी इत्यादि।

(iv) जोड़ा, जोड़ी—इनकी व्युत्पत्ति डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार संस्कृत युटक (युट + क) से है। मगर डॉ० भोलानाथ तिवारी इसे उजेवेक शब्द जोरा से विकसित मानने की अत्यधिक संभावना प्रकट करते हैं।

(v) गंडा—यह संथाली एवं मुंडा भाषा से गृहीत शब्द है।

(vi) गाही—यह भोलानाथ तिवारी के अनुसार द्रविड़ ग्वाइ से सम्बद्ध लगता है या संस्कृत ग्रह '(कदाचित पहले पाँच ग्रह माने जाते रहे हों) से व्युत्पन्न है।

(vii) दर्जन—यह अंग्रेजी Dozen का तद्भवीकृत रूप है जो हिन्दी में स्वीकार कर लिया गया है।

(viii) कोड़ी—बीस के लिए प्रयुक्त यह शब्द कोल भाषा का है।

इसके अतिरिक्त बीसा, चालीसा, हजारा, बत्तीसी, छतीसी आदि शब्द भी चलते हैं जो वस्तुतः मूल शब्द में आ और ई प्रत्यय जोड़ कर बनाए गए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रिया

हिन्दी क्रियाओं का विकास यद्यपि संस्कृत से हुआ है किन्तु विकास क्रम में इनमें अनेक मौलिक परिवर्त्तन हुए हैं और क्रियाओं की एक बहुत बड़ी संख्या परवर्त्ती काल में सर्वथा नवीन पद्धति पर विकसित हुई है । हिन्दी क्रिया के स्वरूप पर विचार करने के पूर्व प्राचीन और मध्यकालीन आर्यभाषाओं में क्रिया की स्थिति के स्वरूप का परिचय पृष्ठभूमि के रूप में अनावश्यक न होगा ।

संस्कृत में क्रिया का रूप अत्यन्त जटिल है। वहाँ दस गणों (भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि, चुरादि), दो पदों (आत्मनेपद, परस्मैपद) तीन वाच्यों (कर्तृ, कर्म, भाव) पाँच प्रयोगों (सामान्य, णिजन्त, सन्नन्त, यङ्न्त, यङ्लुगन्त,) दस लकारों (लट्, लङ लोट्, लिङ्, लिङ्, लुङ् लृट् लृङ्, लुट, आशीलिंग) तीन पुरुषों (उत्तम, मध्यम, अन्य) और तीन वचनों (एक, द्वि, बहु) के आधार पर प्रत्येक क्रिया के ४५ रूप होते थे । फिर विभिन्न गणों की क्रियाओं का रूप भिन्न होता था । अतः यह संख्या ४५ × १० = ४५० हो जाती थी । इस जटिलता पर अधिकार प्राप्त करना निश्चय ही एक कष्टसाध्य कार्य था ।

भाषा की प्रकृति सरलीकरण की ओर होती है । इसका पता पालि काल में अन्य क्षेत्रों की तरह क्रिया के क्षेत्र में भी स्पष्ट मिलने लगता है । पालि में उपर्युक्त स्थिति की तुलना में मात्र छः गण, (भ्वादि, चुरादि, जुहोत्यादि, स्वादि, तनादि, क्रयादि) एक पद (परस्मैपद), दो वाच्य (कर्तृ, कर्म) चार प्रयोग (मुख्यतः तीन सामान्य, णिजन्त, सन्नन्त), आठ लकार (लिट् लुट को छोड़कर) तीन पुरुष और दो वचन (एक, बहु) रह जाते हैं ।

प्राकृत काल में और भी सरलता आती है तथा एक गण, एक पद, दो वाच्य, दो प्रयोग (सामान्य और णिजन्त) चार लकार (लट्, लिङ् लोट्, लृट) तीन पुरुष और दो वचन बच जाते हैं । अपभ्रंश में यही स्थिति रही । हिन्दी में आकर लकार की संख्या दो (लोट्, लट्) हो गई और शेष रूप ज्यों-के-त्यों रहे । हाँ तीन बातें नई हुई--(१) कालों का निर्माण कृदन्त तथा सहायक क्रियाओं की मदद से होने लगा । परिणामतः संस्कृत तिङ्तीय क्रियाओं के स्थान पर कृदन्तीय क्रियाओं की अधिकता हो गई और यह हिन्दी की प्रकृति ही बन गई । (२) क्रिया में लिंग भेद का आगमन हुआ जो पूर्ववर्ती भाषाओं में प्रायः नहीं मिलता । मगर इसका कारण क्या है इसपर हम संज्ञा प्रकरण में "क्रिया में लिंग भेद" शीर्षक के अन्तर्गत विचार कर आए हैं । (३) संस्कृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियाएँ संयोगात्मक थीं जबकि हिन्दी की क्रियाएँ अयोगात्मक हो गईं। जैसे संस्कृत में ति, तः, अन्ति जोड़कर पठति-पठतः-पठन्ति रूप बनाते हैं जब कि हिन्दी में पढ़ता है, पढ़ते हैं, रूप से ही काम चल जाता है। इन मौलिक विशेषताओं के कारण हिन्दी क्रिया अपेक्षाकृत सरल और एकरूपात्मक हो गई।

हिन्दी क्रिया के संदर्भ में प्रायः निम्नलिखित विषयों पर विचार किया जाता है। (१) धातु, (२) प्रेरणार्थक, (३) नाम धातु, (४) सहायक क्रिया, (५) कृदन्त, (६) कालरचना, (७) वाच्य और (८) संयुक्त क्रिया इत्यादि। यहाँ इन सब पर अलग-अलग विचार करें।

(१) धातु—क्रिया का वह अंश जो किसी क्रिया के सभी रूपों में वर्तमान हो धातु कहलाता है। जैसे—पढ़ना, पढ़ा, पढ़ोगे, पढ़ेगा, पढ़वाया, पढ़ाई आदि रूपों में प्राप्त पढ् अंश को धातु कहेंगे। हिन्दी क्रिया का सामान्य रूप धातु में ना लगाने से बनता है। जैसे—पढ़ना, खेलना, जाना इत्यादि।

हिन्दी में धातुओं की संख्या हार्नली के अनुसार ५८२ है और डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार २००० है। हिन्दी धातुओं को वर्गीकृत करने का कार्य डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने किया है।[1] प्रायः सभी भाषा वैज्ञानिक किंचित् संशोधन के साथ उन्हीं के विभाजन को स्वीकार करते हैं। यहाँ डॉ० भोलानाथ तिवारी के आधार पर हिन्दी धातुओं का वर्गीकरण दिया जाता है।

---

१. डॉ० चटर्जी का वर्गीकरण इस प्रकार है—

- मूल
  - (१) तद्भव (साधारण, उपसर्गयुक्त)
  - (२) प्रेरणार्थक तद्भव
  - (३) तत्सम, अर्द्ध तत्सम
  - (४) संदिग्ध व्युत्पत्तिवाली
- यौगिक
  - (१) आकारान्त प्रेरणार्थक
  - (२) नाम धातु—
    - तद्भव—
      - प्राचीन
      - मध्ययुगीन—नवीन
    - तत्सम, अर्द्ध तत्सम
    - विदेशी
  - (३) संयुक्त एवं प्रत्यय युक्त
  - (४) ध्वन्यात्मक
  - (५) संदिग्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डॉ० तिवारी का वर्गीकरण

धातु
- —परम्परागत
  - — संस्कृत —
    - —तद्भव
    - परवर्ती तद्भव
    - —तत्सम
  - —प्राकृत (पालि, प्रा०, अपभ्रंश)
- —निर्मित———
  - —धातु से (अकर्मक, सकर्मक, प्रेरणार्थक)
  - —अन्य से
    - —संज्ञा
    - —सर्वनाम
    - —विशेषण
    - —क्रियाविशेषण
  - —अनुकरणात्मक (ध्वनि, दृश्य आदि)
- —संदिग्ध व्युत्पत्ति वाले

(संस्कृत — तद्भव, परवर्ती तद्भव, तत्सम) }
- (क) मूल
- (ख) उपसर्गयुक्त
- (ग) प्रत्यययुक्त
- (घ) संयुक्त

(क) मूल … (घ) संयुक्त }
- (अ) कर्मवाच्य
- (आ) कर्तृवाच्य
- (इ) प्रेरणार्थक

(संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण) }
- क—तद्भव
- ख—परवर्ती तद्भव
- ग—तत्सम
- घ—विदेशी
- ङ—संदिग्ध व्युत्पत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम्परागत या मूल धातुएँ वे हैं जो संस्कृत या प्राकृत से हिन्दी में आई हैं। इनमें अधिकांश तद्भव तथा कुछ तत्सम और कुछ अर्द्धतत्सम हैं। इन धातुओं में से कुछ उपसर्गयुक्त, कुछ प्रत्यययुक्त और कुछ संयुक्त हैं। इनके उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

तद्भव—कर < प्रा० कर < सं० कर; खा < प्रा० खाअ < सं० खाद्। परवर्त्ती तद्भव—

सोभ् < सं० शोभ; बद् < सं० वद्।

तत्सम—भंज् < सं० भंज् ग्रह < सं० ग्रह। उपसर्गयुक्त—उत् + स्था > उठ, उद् + घट्—उघार। प्रत्यय युक्त—सं० पश्च > प्रा० पच्छ + ड़—पछड़ पिछड़। संयुक्त—सं० च्युत + क्र—चूक्, सं० रुध + क्र—रोक्। इनके भी कर्तृवाच्य (कस—कसना) कर्मवाच्य (उपज, उड़) और प्रेरणार्थक (उखार, उखार) भेद हो सकते हैं।

निर्मित या साधित धातुएँ हिन्दी में विभिन्न आधारों पर स्वतन्त्र रूप से निर्मित हुई हैं। इनका किसी पूर्ववर्त्ती धातु से विकास खोजना संभव नहीं। कहीं धातुओं के योग से और कहीं नामों से इनका निर्माण हुआ है। जैसे उठ् से उठा, भींग से भिगो, भिगा या लठिया, हथिया (संज्ञा) पका, गहरा (विशेषण) अलगा, उपरा (क्रिया-विशेषण), अपना (सर्वनाम) इत्यादि।

इन साधित धातुओं के भी तद्भव, परवर्त्ती तद्भव, तत्सम, विदेशी और संदिग्ध व्युत्पत्ति वाले भेद हो सकते हैं। जैसे—

तद्भव—हथिया, मटिया, डर इत्यादि।

परवर्त्ती तद्भव—जनम, भरम इत्यादि।

तत्सम—स्वीकार।

विदेशी—बदल, खरीद, गुजर, आजमा इत्यादि।

संदिग्ध—ठुकरा।

अनुकरणात्मक—इसके अन्तर्गत अनुकरण, दृश्य, ध्वनि आदि से सम्बद्ध धातुएं आती हैं। जैसे—खटखटा, फरफरा, घरघरा, मिमिया, जगमगा, कनकना इत्यादि। इन सबमें ना जोड़ने पर ये धातु क्रियारूप में परिणत हो जाते हैं।

(२) प्रेरणार्थक—जिस क्रिया में दूसरे से कराने का भावना हो उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। जैसे—मुझे पढ़ना है का प्रेरणार्थक रूप होगा मुझे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पढ़वाना है। ऐसे स्थलों पर ना हटाने के बाद जो पढ़वा रूप बचेगा उसे प्रेरणार्थक धातु कहेंगे

संस्कृत में प्रेरणार्थक (णिजन्त) धातुओं की रचना धातु के अन्त में णिच् जोड़कर की जाती थी। णिच् का रूप अय हो जाता था। इस प्रकार बुध् से बोधयति, सं० पठ् से पाठयति आदि प्रेरणार्थक बनते थे। आकारान्त धातुओं में अय के पूर्व प् जोड़ने का भी विधान था। जैसे—स्ना—स्नापयति, मा—मापयति इत्यादि।

पालि काल में यह प्रयोग और अधिक होने लगता है। जैसे अट—आटयति, आटापयति। प्राकृत में आकर यह अय, अ, ए, आव, आवे आदि रूपों में मिलने लगता है। जैसे—हस—हासइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ। अपभ्रंश में इसका रूप अव, अब, आब हो जाता है। बोल्लावइ, बिष्णवइ इत्यादि। हिन्दी में प्रेरणार्थक के चिह्न आ और वा हैं। ये दोनों उपर्युक्त चिह्नों के विकास हैं। प्रक्रिया यों दिखाई जा सकती है।

सं० अय > प्रा० अ, ए, आव, आवे > अप० अव, अब, आब > हि० आ। सं० य > प्रा० अव, आव > अप० अय अव, आब > हि० वा।

हिन्दी में अकर्मक धातुओं में वा लगाकर और सकर्मक धातुओं में आ या वा लगाकर प्रेरणार्थक का रूप बनता है। जैसे जलना—जलवाना (अकर्मक) लिखना—लिखाना—या लिखवाना (सकर्मक)।

(३) नाम धातु—वे धातुएँ जो संज्ञा सर्वनाम, विशेषण आदि में क्रिया प्रत्यय जोड़ने से बनती हैं नामधातु कहलाती हैं इन नाम धातुओं की सत्ता प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में भी प्राप्त है।

संस्कृत में नाम धातु का निर्माण करने के लिए ईय, आय, य प्रत्यय आता है। जैसे—पुत्रीयति (ईय) कृष्णायते (आय) नदीयति (य)। प्राकृतों में ये आ और ईअ रूप में विकसित होते हैं। जैसे शब्दायते—सद्दाइ (आ) पुत्रीयते—पुत्तीअइ (ईअ)। हिन्दी में आ, इआ, और कहीं-कहीं शून्य प्रत्ययों का प्रयोग नाम धातु बनाने में होता है। जैसे—हाथ—हथिआ (इआ) काम—कमा (आ) दुख—दुखा (आ) और बदल, स्वीकार, खर्च (शून्य)। इन नाम धातुओं में ना लगाने से क्रिया-रूप निष्पन्न होता है।

(४) सहायक क्रिया—सामान्यतः मुख्य क्रिया की सहायता करनेवाले क्रिया पद सहायक क्रिया कहलाते हैं। जैसे राम जाता है वाक्य में जाना मुख्य क्रिया है और 'है' सहायक क्रिया। कामता प्रसाद गुरु के अनुसार जिस क्रिया की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहायता से संयुक्त काल बनाए जाते हैं उन्हें सहायक क्रिया कहते हैं। संयोगात्मक भाषाओं में तो सहायक क्रिया का प्रयोग होता ही है वियोगात्मक भाषाओं में काल रचना तथा संयुक्त क्रियाओं के निर्माण में सहायक क्रिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अँग्रेजी में होना (टू बी) के रूप इज, एम आर, वाज, वेअर आदि सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में हो आ, उठ, कर, चाह, चुक, जा, डाल, दे, रह, लग, ले, पा, सक्, बन्, बैठ तथा पड़ प्रमुख सहायक क्रियाएँ हैं। इनमें सक् को छोड़कर शेष का मुख्य क्रिया के रूप में भी प्रयोग होता है।''[1] सहायक क्रियाओं में होना तथा उसके विभिन्न रूपों का प्रयोग सर्वाधिक होता है। होना क्रिया के रूप विभिन्न अर्थों और कालों में इस प्रकार होते हैं।

भूत निश्चयार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	था	थे
म० पु०	था	थे
अ० पु०	था	थे

भूत संभावनार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	होता	होते
म० पु०	होता	होते
अ० पु०	होता	होते

वर्त्तमान निश्चयार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हूँ	हैं
म० पु०	है	हो
अ० पु०	है	हैं

वर्त्तमान आज्ञार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	होऊं	हो
म० पु०	हो	होओ
अ० पु०	हो	होवें

भविष्य निश्चयार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	होऊंगा	होवेंगे
म० पु०	होगा	होगे
अ० पु०	होगा	होंगे

अब इनकी व्युत्पत्ति पर विचार करें।

भूत निश्चयार्थक—इसके तीनों पुरुषों के एकवचन में था और बहुवचन में थे होता है।

---

१. हिन्दी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृ० २५०-५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातु स्था के भूतकालिक रूप स्थित से मानते हैं—स्थित > थिओ > थिअ > थाई > था। डॉ० उदयनारायण तिवारी के मत में यह, सन्त के स्थान पर असन्त से > अहन्त > हन्तौ > हतौ > था रूप में विकसित है।[१]

डॉ० भोलानाथ तिवारी तेसितोरी के मत का समर्थन करते हुए था तथा उससे सम्बद्ध सभी रूपों की व्युत्पत्ति भू के कल्पित रूप भवन्तकः से इस प्रकार मानते हैं। भवन्तकः > होन्तओ > हूंतउ, होता, हुतौ, हुतो, हतो, हता > अथा (दक्खिनी हिन्दी), थो, था। इस विवादास्पद स्थिति में था की सही व्युत्पत्ति का निर्णय करना कठिन प्रतीत होता है। यों अधिकांश लोग धीरेन्द्र वर्मा वाले मत को ही मानते हैं। 'थे' और 'थी' दोनों 'था' के ही वचन और लिंगगत विकार हैं।

भूत संभावनार्थ—इसके तीनों पुरुषों के एक वचन में होता और बहुवचन में होते रूप प्राप्त होता है। होते और होती होता का ही वचन एवं लिंगगत विकार हैं।

होता की व्युत्पत्ति भू धातु से बने रूप भवन्तः से सर्वमान्य है। विकास की प्रक्रिया यह है—सं० भवन्तः > प्रा० होन्तो > हि० होता।

वर्तमान निश्चयार्थ—इसके चार रूप, तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में मिलते हैं—हूं, है, हो, हैं।

इन रूपों का विकास संस्कृत अस् धातु से माना गया है। यद्यपि केलाग एव बीम्स यह मानते हैं कि हूँ आदि का विकास अस्मि से नहीं है। फिर भी डा० वर्मा आदि ने इनका विकास अस्मि, अस्ति आदि से माना है।

अस्मि > अम्हि > अहौं > हौ > हूँ
अस्ति > अत्थि > अहि > अहै > है।

मगर भोलानाथ तिवारी इसका सम्बन्ध भू धातु के विभिन्न रूपों से मानते हैं। उनकी दृष्टि में उपर्युक्त रूप निम्न शब्दों से व्युत्पन्न हैं।

सं० भवामि > प्रा० होमि > अप० कल्पित होवि, होंव > हि० हौं, हूँ।
सं० भवसि, भवति > प्रा० होसि, होइ > अप० हइ > हि० है।
सं० भवामः > प्रा० होम > अप० होइ हइ > हि० है।
सं० भवथ > पा० होथ > प्रा० होइ > अप० होइ > हि० हो।

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ४८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्त्तमान आज्ञार्थ—इसके लिए निम्न रूप चलते हैं—होऊँ, हो, होओ, होवें। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

सं० भवामि > प्रा० होमि > अप० होऊँ > हि० होऊँ।

सं० भवसि, भवति > प्रा० होसि, होइ > अप० होइ > हि० हो।

सं० भवामः > प्रा० होम > अप० होंव > हि० हों,

सं० भवन्ति > प्रा० होन्ति > अप० हाइं हि० हों, होवें।

सं० भवथ > प्रा० होव > अप० होव > हि० हो, होओ।

भविष्य निश्चयार्थ—इसके अन्तर्गत निम्न रूप प्रयुक्त होते हैं—होऊंगा, होगे, होगा, होंगे। ये एक शब्द न होकर संयुक्त रूप हैं तथा ऊपर से देखने पर वर्त्तमान आज्ञार्थ के रूपों में गा, गे के योग से बने मालूम पड़ते हैं। इनमें गा की व्युत्पत्ति तो स्पष्टतः सं० गतः से है। विकास इस प्रकार है—

गतः > गदो > गओ > गो, गअ > गा। गे और गी इसी के वचन एवं लिंगगत रूपान्तर हैं।

बाकी रूप होऊँ, हों आदि को डॉ० वर्मा वर्त्तमान संभावनार्थ से विकसित मानते हैं जैसे—सं० चलामि > प्रा० चलामि > अप० चलउं > हि० चलूं + गा—(भविष्य निश्चयार्थ)। मगर डॉ० भोलानाथ तिवारी इसे भविष्यत् के रूपों में गा के योग से निर्मित मानते हैं। जैसे—

सं० भविष्यामि > प्रा० होहामि > अप० होहऊ > हि० होऊँ, हूँ (+ गा)।

सं० भबिष्यति, भविष्यसि > प्र० हाहिसि, होहिइ > अप० होइ > हि० हो (+ गा)।

सं० भविष्यन्ति > प्रा० होहिन्ति > अप० होइं > हि > हों (+ गे) इत्यादि।

अभिप्राय यह कि होना क्रिया के सारे रूप मूलतः भू धातु से ही निष्पन्न हैं। इन्हें कई धातुओं से विकसित मानना अवैज्ञानिक लगता है।

इन सहायक क्रिया रूपों के अतिरिक्त बोलियों में अछ् और बाटे दो रूप चलते हैं। अछ का सम्बन्ध टर्नर आ + क्ष से मानते हैं तो पिशेल ऋ के रूप ऋच्छति से इसका विकास मानते हैं। जो हो, इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाटे—यह संस्कृत वृत् धातु के वर्त्तते रूप से निष्पन्न है । वर्त्तते > वट्टई > बाटई > बाटे, बाड़े ।

रह—इसकी व्युत्पत्ति रक्ष और कहीं-कहीं रह् से मानी गई है ।

(५) **कृदन्त**—धातु में जोड़े जाने वाले प्रत्यय कृत् प्रत्यय कहलाते हैं और इनसे बने शब्द कृदन्त कहलाते हैं । कृदन्तों का प्रयोग संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि रूपों में होता है । कृदन्त के निम्नलिखित प्रमुख भेद हैं—

(क) **वर्त्तमानकालिक कृदन्त**—इस कृदन्त को सूचित करने के लिए धातु में ता, ते, ती रूप लगता है । मरता, मरती, मरते । संस्कृत के आत्मनेपद धातुओं में इसके लिए शानच् (आन्, मान) प्रत्यय लगाया जाता है तथा परस्मैपदी धातुओं में शतृ (अत्) प्रत्यय । इसका विकास संस्कृत धातुओं में लगनेवाले प्रत्यय अन्तः से हुआ है । अन्तः > अन्तो > ता । जैसे—पचन्तः > पचन्तो > पचता । प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी में यह संज्ञा (जागते को क्या जगाना) क्रिया (मुझे खेलना नहीं आता) विशेषण (बहता पानी, रमता योगी) तथा क्रियाविशेषण (वह हँसता चला गया) रूप में मिलता है ।

(ख) **भूतकालिक कृदन्त**—इसका सूचन करने के लिए धातु में आ, ई, ए जोड़ते हैं । जैसे—जगा, जगी, जगे । संस्कृत में इसके लिए क्त, क्तवतु, प्रत्ययों का प्रयोग होता है । जैसे—पठ् + क्त = पठितः > प्रा० पठिओ > पठ्यो > पढ़ा । हिन्दी में इसका प्रयोग संज्ञा (जगे को क्या जगाना) क्रिया (मैंने पढ़ा है), विशेषण (सड़ा फल, उड़ाई चीज, खोया लड़का) तथा क्रियाविशेषण (वह भागा आया) के रूप में होता है ।

(ग) **विध्यर्थक कृदन्त**—इसका रूप ना, नी, ने के योग से सूचित होता है । जैसे—सुनना, सुननी, सुनने ।

बीम्स इसका सम्बन्ध अनीय—अन्तवाले भविष्यत् कृदन्त से मानते हैं । जैसे सं० करणीय > प्रा० करणीअ, करणअ > हि० करना । भोलानाथ तिवारी का अनुमान है कि ये—अब अन्तवाले क्रियार्थक संज्ञा से व्युत्पन्न हैं । जैसे—कथनं > कहन > कहना, चलन > चलना इत्यादि । चूँकि करना, चलना आदि क्रियार्थक संज्ञा हैं अतः इनका विकास संस्कृत क्रियार्थक संज्ञा से ही मानना उपयुक्त है । अतः ये आनीय अन्त वाले भविष्यत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृदन्तों से नहीं अनं अन्त वाले क्रियार्थक संज्ञाओ से ही व्युपन्न हैं। हिन्दी में ये संज्ञा और क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—हँसना मना है, लड़ना बुरा है (संज्ञा) तुम पढ़ना, तुम कहना, तुम चलना (क्रिया)।

(घ) पूर्वकालिक कृदन्त—हिन्दी धातुओं में कर, के, या करके जोड़कर पूर्वकालिक कृदन्त बनाए जाते हैं। जैसे—पढ़कर, करके, मार करके इत्यादि। संस्कृत में इसका रूप क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययों के योग से बनता है जिनका रूप क्रमशः त्व और य हो जाता है। जैसे पठित्वा, आगत्य।

हिन्दी कर की व्युत्पत्ति कृत्वा के विकसित रूप करिअ से और के की व्युत्पत्ति प्रा० कइव से मानी गई है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये दोनों ही कृ धातु के भूतकालिक कृदन्त रूप कृत्वा से व्युत्पन्न हैं। सं० कृत्वा > प्रा० करिता > करिअ > करि (१) > कर (२) कई > कइ > कै > के।

(च) कर्तृवाचक कृदन्त—हिन्दी में—नेवाला तथा उपभाषाओं में न, ना, वार, वारा, हार, ऐया आदि के योग से कर्तृवाचक कृदन्त बनते हैं। जैसे—चढ़नेवाला, दहन, हरना, रखवार, रखवारा, राखनिहार, रखैया इत्यादि।

—नेवाला में ने क्रियार्थक संज्ञा का विकारी रूप है तथा वाला का सम्बन्ध संस्कृत पालक से है। पालक > पालअ > वाला। वारा आर आदि वस्तुतः वाला ही है जिसमें ल का र में परिवर्तन हो गया है। हारा का सम्बन्ध संस्कृत हारक से है—हारक > हारअ > हारा। ऐ तथा य का विकास कर्तृवाचक प्रत्यय तृच् (तृ) में स्वार्थे क के योग से हुआ है। जैसे सं० पठतृकः से पढ़ैया, हर्तृकः से हरैया।

इसके अतिरिक्त अपूर्ण क्रियाद्योतक, पूर्ण क्रियाद्योतक और तात्कालिक तीन और भेद कृदन्त के हैं। मगर इनमें से पहला वर्त्तमान कालिक कृदन्त का विकारी रूप है। दूसरा भूतकालिक कृदन्त का विकारी रूप है तथा तीसरा दूसरे में ही जोड़ने से बनता है।

(६) काल रचना—सामान्यतः क्रिया करने में जो समय लगता है उसे काल कहते हैं। काल तीन होते हैं—भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्। क्रियार्थ की दृष्टि से क्रिया निश्चयार्थ, आज्ञार्थ और संभावनार्थ तीन प्रकार की होती है। पूर्णता, अपूर्णता एवं सामान्यता आदि की दृष्टि से भी क्रिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन प्रकार की होती है—सामान्य, पूर्ण और अपूर्ण। इन आधारों के कारण उपयुंक्त तीनों कालों के अनेक भेद हो जाते हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

रचना की दृष्टि से हिन्दी काल दो प्रकार के हैं—(१) मूल काल (२) यौगिक काल या संयुक्त काल। मूल काल उसे कहते हैं जिसमें केवल तिङन्त या कृदन्त मूल क्रियाएँ होती हैं तथा किसी सहायक क्रिया का अभाव रहता है। जैसे—मैं नहीं जाता, तुम मत बोलो। वह क्यों जायगा इत्यादि।

यौगिक या संयुक्त काल उसे कहते हैं जिसमें कृदन्तीय या तिङन्तीय मूल क्रिया के साथ-साथ सहायक क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे—वह पढ़ता है; मुझसे पढ़ा नहीं गया; उसने खाना खा लिया है इत्यादि। इन दोनों कालों के भी अनेक प्रकार होते हैं जिनकी चर्चा आवश्यक है।

मूल काल—ये दो प्रकार के हैं।

(क) संस्कृत कालों के अवशेष (ख) संस्कृत कृदन्तों से बने काल।

(क) संस्कृत कालों के अवशेष में वर्तमान एवं भविष्य संभावनार्थ और वर्तमान एवं भविष्य आज्ञार्थ आते हैं।

वर्तमान एवं भविष्य संभावनार्थ के तीनों पुरुषों के दोनों वचनों में रूप इस प्रकार होता है :—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	चलूँ	चलें
म० पु०	चले	चलो
अ० पु०	चले	चले

भविष्य संभावनार्थ के सूचन के लिए उपयुंक्त रूपों के पूर्व 'यदि' लगा दिया जाता है। जैसे—यदि मैं चलूं। इन रूपों की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

सं० प्रा० अप० हि०

उ० पु० (१) चलामि > चल्लामि > चलउ > चलूँ।

(१) चलसि > चलसि > चलहि, चलई > चले।

म० पु० (१) चलति > चलइ > चलइ > चले।

(२) चलामः > चलामो > चलहुँ > चले।

अ० पु० (४) चलथ > चलह > चलहु > चलो।

(६) चलन्ति > चलन्ति > चलहि > चलें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपर्युक्त रूपों में केवल उत्तम पुरुष एकवचन और बहुवचन के रूपों के विकास के विषय में विवाद है। चलामि से चलूँ और चलामः से चलें का विकास सामान्य नहीं है। बीम्स का अनुमान था कि बहुवचन चलामः से एकवचन चलूँ और एकवचन चलामि से बहुवचन चले निकला है। डॉ० भोलानाथ तिवारी ऐसा न मानकर चलामि और चलामः से ही चलूँ और चलें का विकास ठीक मानते हैं। इसी प्रकार चल के स्थान पर अन्य क्रियाओं को रखकर विकास समझना चाहिए।

वर्तमान तथा भविष्य आज्ञार्थ के तीनों पुरुषों एवं दोनों वचनों में निम्न रूप होता है।

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	चलूँ	चलें
म० पु०	चल	चलो
अ० पु०	चले	चलें।

इन रूपों की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :—

	स०	प्रा०	हि०
उ० पु०	चलामि >	चलमु >	चलूँ
	चलाम >	चलामो >	चलें
म० पु०	चल >	चलसु, चलाहि, चल >	चल
	चलत >	चलह >	चलो
अ० पु०	चलतु >	चलउ >	चले
	चलंतु >	चलंतु >	चले।

उपर्युक्त विकास बीम्स का है जो संस्कृत आज्ञार्थ के रूपों से हिन्दी आज्ञार्थ के रूपों का विकास मानते हैं। मगर ग्रियर्सन इसे आज्ञार्थ से नहीं वर्तमान संभावनार्थ से मानते हैं। ऊपर दिए गए हिन्दी संभावनार्थ और आज्ञार्थ के रूपों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि मात्र मध्यम पुरुष एकवचन के रूप में भिन्नता है शेष सब समान हैं। यदि मध्यम पुरुष एकवचन रूप चल का विकास आज्ञा के बदले संभावना से मानें तो इसका विकास चलसि से होगा चल से नहीं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान ग्रियर्सन के ही मत का समर्थन करते हैं।[1]

१. देखिए, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० ३०० तथा हिन्दी भाषा पृ० २५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी में आदरसूचक के लिए मध्यमपुरुष के दोनों वचनों में आप या आपलोग का प्रयोग होता है। आदरार्थक आज्ञा में आप या आपलोग के साथ कर, दे, ले और यी धातुओं के साथ जिए और अन्य धातुओं के साथ इए का प्रयोग होता है। इनका विकास सस्कृत आशीर्लिंग प्रत्यय 'या' से हुआ है। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है :—या > प्रा० इय, इए, इज्ज, एज्ज >हि० जिए, जे, इए।

जैसे—सं० दधात >प्रा० देज्ज, दिज्ज >हि० दीजिए, दीजै।

(२) संस्कृत कृदन्तों से बने काल—इसके तीन भेद हैं।

(१) भूत निश्चयार्थ, (१) भूत संभावनार्थ (३) भविष्य आज्ञार्थ। इनमें से भूत निश्चयार्थ भूतकालिक कृदन्त से, भूत संभावनार्थ वर्तमान कालिक कृदन्त से और भविष्य आज्ञार्थ क्रियार्थक संज्ञा से बना है। इनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।[1]

संयुक्त काल—इसकी रचना दो प्रकार से होती है।

(१) वर्तमान कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया।

(२) भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया।

इन दोनों के भी पांच-पांच रूप होते हैं जो सोदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

वर्तमान कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

(१) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ—वह चढ़ता है।
(२) भूत ,, ,, —वह चलता था।
(३) भविष्य ,, ,, —वह चलता होगा।
(४) वर्तमान ,, संभावनार्थ —अगर वह चलता हो।
(५) भूत ,, ,, —अगर वह चलता होता।

भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

(१) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ —वह चला है।
(२) भूत ,, ,, —वह चला था।
(३) भविष्य ,, ,, —वह चला होगा।
(४) वर्तमान ,, संभावनार्थ—अगर वह चला हो।
(५) भूत ,, ,, —अगर वह चला होता।

---

१. देखिए, पृ० १३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चूंकि इनमें प्रयुक्त कृदन्तों एवं सहायक क्रियाओं की व्युत्पत्ति कृदन्त और सहायक क्रिया शीर्षकों में दे आए हैं। अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

संयुक्त काल का एक तीसरा वर्ग भोलानाथ तिवारी के अनुसार तिङन्ती रूप + गा से निर्मित होता है। इसके अन्तर्गत भविष्य निश्चयार्थ आता है। जैसे—वह चलेगा। इसकी स्थिति सभी विद्वानों की दृष्टि में असामान्य है। यह एक यौगिक रूप है जो मूल रूप जैसा हो गया है। मूल क्रिया में भूतकालिक कृदन्त गतः के विकसित रूप गा विकारी रूप गी और गे के योग सेय इसका निर्माण होता है।

(७) वाच्य—वाच्य की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—"वाच्य, क्रिया का वह रूपान्तर है जिसमें यह जाना जाय कि क्रिया कर्त्ता के अनुसार है या कर्म के अनुसार या दोनों में किसी के अनुसार न होकर एकवचन पुल्लिंग रूप में है'।'

वाच्य तीन हैं—कर्तृ, कर्म और भाव। संस्कृत में भी तीन ही वाच्य थे। इन्हें प्रयोग भी कहा जाता था। इसके आधार पर इनके नाम थे—कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग।

कर्तृवाच्य—में क्रिया कर्त्ता के अनुसार होती है। अर्थात् क्रिया का लिंग-वचन कर्त्ता के अनुसार होता है। जैसे—राम घर जाता है। यहाँ क्रिया राम के अनुसार है। हिन्दी में कर्तृ वाच्य का ही प्रयोग अधिक होता है।

कर्मवाच्य—कर्मवाच्य वहाँ होता है जहाँ क्रिया का लिंग-वचन आदि कर्म के अनुसार होता है। जैसे—राम ने रोटी खायी। संस्कृत में कर्मवाच्य और भाववाच्य का प्रयोग अधिक मुहावरेदार माना जाता था इसलिए इसका प्रयोग विशिष्ट था। संस्कृत में कर्मवाच्य के निर्माण के लिए क्रिया में धातु और प्रत्यय के बीच 'य' (यक्) जोड़ते थे। जैसे—क्रियते, दीयते इत्यादि। इसका विकास इस प्रकार हुआ—

सं० य (यक्) > पा० इय, इय्, ईय > प्रा०, अप० इज्ज, इअ, इज्जइ। हिन्दी में इसका रूप विकास इए के रूप में कुछ शब्दों में चला। जैसे—लीजिए, दीजिए, कीजिए इत्यादि। लेकिन हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण कर्मवाच्य की रूप-रचना इस परम्परित पद्धति से हटकर दूसरे रूप में होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगीं। यहाँ जाना धातु के क्रिया रूप जोड़कर कर्मवाच्य बनाए जाते हैं। जैसे-कहा गया, सोचा जाता है, सुनी जाती है।

हिन्दी में मैंने पुस्तक पढ़ी, उसने पत्र लिखा जैसे कर्त्तरि प्रयोग वस्तुतः कर्मणि प्रयोग हैं। इनका विकास संस्कृत के कर्मणि प्रयोगों से ही हुआ है।

भाववाच्य—इसमें क्रिया न कर्त्ता के अनुसार होती है, न कर्म के अनुसार बल्कि एकवचन पुल्लिग होती है। जैसे—मुझ से देखा नहीं जाता। भाववाच्य या भावे प्रयोग के सम्बन्ध में डॉ० बाहरी का मत है कि "भावे प्रयोग में अलग रूप नहीं है। मुझ से खाया नहीं जाता अर्थ में भले ही भावे प्रयोग के अनुरूप हो, किन्तु इसका रूप वही है जो कर्मणि प्रयोग का।"[१]

(८) संयुक्त क्रिया—संयुक्त क्रिया एक प्रकार से क्रिया समास अर्थात एकाधिक क्रियाओं की समष्टि है जिसका प्रयोग संश्लिष्ट एवं सूक्ष्म भावाभिव्यंजन के लिए होता है। संयुक्त काल की भाँति संयुक्त क्रिया के निर्माण में भी एकाधिक धातुओं की सहायता ली जाती है। हां संयुक्त काल में कालाभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है जब कि संयुक्त क्रिया में क्रियाभिव्यक्ति पर।

संयुक्त क्रिया द्वारा आधुनिक भारतीय भाषाओं में वही कार्य सम्पन्न कराया जाता है जो संस्कृत के प्रत्ययों के योग से सम्पन्न कराया जाता था। इन क्रियाओं की रचना प्रक्रिया डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार आधुनिक है अतः इनका ऐतिहासिक विवेचन असंभव है। इसके विपरीत डॉ० भोलानाथ तिवारी इसे हिन्दी व्याकरण के अन्य अवयवों की भाँति संस्कृत > प्राकृत > अपभ्रंश से विकसित मानते हैं। हां, प्राचीन भाषाओं में इसकी विरलता से वे भी इनकार नहीं करते।[२]

संयुक्त क्रिया का निर्माण मात्र एकाधिक क्रियाओं के योग से ही नहीं होता है बल्कि क्रिया में संज्ञादि के योग से भी होता है। संस्कृत में भी इन रूपों के दर्शन होते हैं। जैसे—उपसर्ग (वि + आ + पद—व्यापद्) (मार डालना) संज्ञा-शुचि + भू = शुचिभू (पवित्र होना)। विशेषण—कृष्ण + कृ = कृष्णीक (काला करना) इत्यादि।

---

१. हिन्दी : उद्भव विकास और रूप, पृ० १८१

२. हिन्दी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृ० २६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धातु के साथ धातु के योग से निष्पन्न रूप भी कम नहीं मिलते। जैसे—कर्तुम + इच्छति = कर्तुमिच्छति (करना चाहता है)।

रचना की दृष्टि से संयुक्त क्रियाओं के ८ भेद हो सकते हैं।

१. नामिका—आज्ञा लेना, माफ करना, कान भरना इत्यादि।

२. वैशेषणिक—अच्छा होना, एक होना, तीन-तेरह होना इत्यादि

३. सार्वनामिक—अपनी कहना, सबकी सुनना इत्यादि।

४. ध्वन्यात्मक—धकधक करना, फरफर उड़ना, घरघर करना इत्यादि।

५. दृश्यात्मक—चकमक करना, दकदक करना, जगमग करना इत्यादि।

६. क्रियात्मक—कर डालना, उड़ा देना, खा जाना, आया करना, जाया करना, सोते रहना, पढ़ते जाना, जाने देना इत्यादि।

७. क्रिया विशेषणिक—आगा-पीछा सोचना, भाग-दौड़ करना इत्यादि।

८. अभ्यासात्मक—मरहम-पट्टी करना, साफ-सुथरा रहना, मारना-पीटना, सोचना-समझना इत्यादि।

अर्थ की दृष्टि से भी संयुक्त क्रिया के अनेक भेद हो जाते हैं जैसे—अतिशयताबोधक (ला देना) पूर्णताबोधक (खा चुकना) दीर्घकालीनता बोधक (पकड़े रहना) शक्यताबोधक (कर जाना) इच्छाबोधक (करना चाहता हूँ) इत्यादि।

संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग की अधिकता किसी भाषा की सामर्थ्य का प्रतीक होता है। इसके कारण भाषा ऐसी भंगिमा में ढल जाती है कि दूसरी भाषा में उसका रूप ढलना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए 'रहना नहीं देस विराना है' 'वह फिर भी चलता चला जा रहा था' 'आरम्भ से ही इसका प्रयोग किया जाता है' आदि वाक्यों में कुछ ऐसी संयुक्त क्रियाओं की अभिव्यक्ति है कि इनका न तो शीघ्र दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है और न इनकी अर्थगत भंगिमा को सरलता से पकड़ा जा सकता है। हिन्दी में संयुक्त क्रिया रचना की प्रकृति चाहे नई हो या पुरानी मगर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हिन्दी क्रियाओं की व्यंजना शक्ति बढ़ती है।

(६) क्रिया के भेद—

हिन्दी क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं—

(१) अकर्मक (२) सकर्मक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस क्रिया में कर्म नहीं लगता उसे अकर्मक और जिसमें कर्म लगता है उसे सकर्मक कहते हैं। उदाहरणार्थ खेलना, हँसना आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं तथा खाना, बोलना आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं।

हिन्दी में प्रायः सिद्ध या मूल धातुएँ अकर्मक होती हैं तथा साधित धातुएँ सकर्मक। किन्तु कुछ साधित धातुएँ भी अकर्मक होती हैं। जैसे—चलना, बैठना इत्यादि। इसी प्रकार कुछ नाम धातुएँ भी अकर्मक होती हैं। जैसे—रूठना, डिगना इत्यादि।

सिद्ध अकर्मक धातुओं में णिजन्त प्रत्यय आप् > प्रा० आव के विकसित रूप-आ जोड़ देने से वह सकर्मक हो जाता है। दूसरी विधि यह है कि अकर्मक मूल धातु के ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर देने से भी सकर्मक रूप बन जाता है। जैसे— जलना—जलाना, पकना—पकाना कटना—काटना, मरना—मारना इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हिन्दी क्रियाओं की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ संक्षेप में निरूपित की जा सकती हैं :—

(क) हिन्दी क्रियाओं का विकास संस्कृताश्रित होकर भी बहुत हद तक मौलिक है।

(ख) संस्कृत में जहां तिङन्तीय क्रियाओं की बहुलता है वहाँ हिन्दी में कृदन्तीय क्रियाओं की प्रधानता है।

(ग) हिन्दी क्रिया की धातु-रूप-प्रणाली एकदम सरल है। हो, कर, ले, दे और जा। इन पांच धातुओं के अतिरिक्त शेष सभी धातुओं के रूप एक ही प्रकार से निर्मित होते हैं।

(घ) धातुओं में लिंग भेद एक नवीन विशेषता है। इसका कारण कृदन्तीय रूपों की अधिकता है। संस्कृत में भी कृदन्तीय क्रियाएँ लिंग भेद से युक्त थीं।

(ङ) हिन्दी में संयुक्त क्रियाओं की बहुलता है जिसके कारण क्रिया की व्यंजना शक्ति का विकास हुआ है।

(च) वचन और पुरुष भेद से हिन्दी क्रियाओं में विकार उत्पन्न होता है।

(छ) हिन्दी क्रिया में वाच्य निर्माण का ढंग नवीन पद्धति पर विकसित हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अव्यय

व्याकरण की दृष्टि से अव्यय वह है जिसका रूप लिंग, वचन, कारक आदि से परिवर्त्तित नहीं होता है। "सदृशत्रिषु लिंगेषुसर्बाषु च विभक्तिषु वचनेषुच सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।"

अव्यय के चार भेद हैं—(१) समुच्चय बोधक, (२) सम्बन्धसूचक, (३) विस्मयादिबोधक और (४) क्रियाविशेषण।

क्रियाविशेषणों में कुछ ऐसे हैं जो लिंग, वचन, कारक आदि से प्रभावित होते हैं। जैसे—वे दौड़ते चले गये। उसकी माँ भागी आई। स्पष्ट है कि लिंग-वचन से प्रभावित होने वाले ऐसे शब्द अव्यय की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते। इसलिए ऐसे शब्दों को या तो क्रियाविशेषण नहीं मानना होगा या फिर क्रियाविशेषण को अव्यय से अलग स्वतंत्र अस्तित्व देना होगा। यहाँ ऐसे परिवर्त्तनशील शब्दों को क्रियाविशेषण नहीं मानते हुए क्रियाविशेषणों का विवेचन अव्यय के अन्तर्गत ही किया जा रहा है।

(१) समुच्चयबोधक—और, भी, पर, कि, जो, वरन्, चाहे, तो, तथा, अथवा, एवं आदि समुच्चयबोधक अव्यय हैं। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है।

और—इसका व्युत्पत्ति संस्कृत अपरम्, वा अपर से है। सं० अपरम्, अपर > प्रा० अवर, अवर > हि० और। (प का विकास क्रमशः व, उ और औ में होता है, यह ध्वनि प्रकरण में दिखा आए हैं)।

भी—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत अपि से है। अपि > प्रा० अवि > हि० भी। ब के महा प्राणीकरण से भ बना।

पर—संस्कृत परं > हि० पर।

कि—यह फारसी से आया है। अथवा सं० किम् > प्रा० किं > हि० कि के रूप में व्युत्पन्न है।

या—यह अरबी अव्यय है।

जो—संस्कृत यदि > प्रा० जव > अप० जदु, जउ (कल्पित) > हि० जो।

तो—संस्कृत ततः > प्र० तओ > हि० तो।

तथा, वरन् अथवा, एवं आदि संस्कृत रूप हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहे—इसकी व्युत्पत्ति सं० चक्षते से हैं। चक्षते > प्रा० चाहई > हिन्दी चाहे।

(२) सम्बन्धसूचक—हेतु, वास्ते, निमित्त, प्रति, द्वारा, मारे, अनन्तर, पश्चात्, खातिर, वगैर, खिलाफ आदि सम्बन्धसूचक अव्यय हैं। इनमें तद्भव, तत्सम तथा विदेशी तीनों प्रकार के शब्द हैं हिन्दी में ये अव्यय मुख्यतः कारक चिह्नों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। तत्सम एवं विदेशा रूपों के विकास का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, ये तो उधार लिए गये हैं। शेष रूपों का विचार कारक चिह्नवत् प्रयुक्त शब्दों के प्रसंग में किया जा चुका है।

(३) विस्मयादिबोधक अव्यय :—

विस्मयादिबोधक अव्यय भी तत्सम, तद्भव और विदेशी तीनों प्रकार के हैं। इनकी संख्या सीमित है। यहाँ कुछ विस्मयादिकों के रूप दिए जाते हैं।

दुहाई—यह शायद दो + हाय का विकसित रूप है।

शाबाश—यह फारसी शादबाश का तद्भव रूप है जो मध्य व्यंजन द के लोप से बना है। इसीका आगे चलकर आदि व्यंजन शा के लोप और अन्तिम श का ह में परिवर्त्तन होने से वाह बना है।

थू-थू—संस्कृत थूत्कार प्रा० थू से हिन्दी थू बना है।

और—प्रभावाभिव्यंजन के लिए दुहरे रूप में प्रयुक्त होता है।

आह—यह संस्कृत आः से विकसित है। विसर्ग का उच्चारण ह की तरह होता है अतः बिसर्ग के बदले हिन्दी में ह लिखा जाता है।

ओहो—यह संस्कृत अहो का विकसित रूप है।

हैं, एं—इसका सम्बन्ध सं० अइ से है।

जी—संस्कृत जीव से व का लोप होने से बना है।

अच्छा—यह संस्कृत अच्छः > प्रा० अच्छअ से बना है।

हा—संस्कृत हा का रूप है।

छिः छिः—इसकी व्युत्पत्ति संभवतः संस्कृत धिक्-धिक् से है। अर्द्ध क् के लोप और ध के छ में परिवर्त्तन होने से यह बना है। विकास सामान्य नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ अन्य अव्यय :—

स्वीकारबोधक—

हाँ—डॉ० वर्मा इसकी व्युत्पत्ति के विषय में निश्चित नहीं हैं। केलाग इसे मराठी आहें, आहों से जोड़ते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी इसे सं० आम् >पालि आम से जोड़ते हैं। तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी तुर्की हा (स्वीकारान्त अर्थ में प्रयुक्त) में अनुनासिकता के आगम से इसका विकास मानते हैं।

निषेधबोधक—न, ना, नहीं, मत आदि।

न—संस्कृत से गृहीत है।

ना—न का ही बलात्मकता के कारण निर्मित प्रलम्बित रूप है।

नहीं—की व्युत्पत्ति संस्कृत नास्ति से है। सं० नास्ति > प्रा० णत्थि > अप० नहि > हि० नहीं।

मत—की व्युत्पत्ति मा से संभव है मगर त का आगम स्पष्ट नहीं है। इसलिए डॉ० भोलानाथ तिवारी मा + अति से इसकी कुछ संभावना मानते हैं।

(४) क्रिया-विशेषण—

क्रिया-विशेषण वे अव्यय हैं जो क्रिया की विशेषता सूचित करते हैं। इसके चार भेद हैं:— कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाणवाचक और रीतिवाचक। क्रियाविशेषणों में कुछ तो संज्ञा क्रिया तथा विशेषण में प्रत्यय के योग से बनते हैं और कुछ सर्वनामों में प्रत्यय के योग से। इस आधार पर इसके दो भेद माने जा सकते हैं—(१) सार्वनामिक और (२) संज्ञादिक। इन दोनों के उपर्युक्त चार भेद होते हैं। यहां दोनों के अन्तर्गत आनेवाले शब्दों का विकास प्रस्तुत है।

(१) सार्वनामिक—

(क) कालवाचक—जब, तब, कब, नित आदि कालवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण हैं। जब, कब, तब आदि में कालसूचक अंश ब की उत्पत्ति सं० वेला से मानी गयी है। यही वेला ब के रूप में परिणत होकर सार्वनामिक अंश ज, क, त में जुड़कर उपर्युक्त रूपों को निष्पन्न करती है।

नित—इसकी व्युत्पत्ति सं० नित्य से है। नित्य > प्रा० नित्त > हि० नित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) स्थानवाचक—यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ, आदि स्थानवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण हैं। यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ, तहाँ शब्दों की व्युत्पत्ति बीम्स तथा केलाग के अनुसार तत्स्थाने, यत्स्थाने आदि रूपों से है। टर्नर, इह, कुछ आदि से इसकी संभावना मानते हैं। चटर्जी यत्र, तत्र, कुत्र प्रा० यत्थ, तत्थ, कुत्थ से हि० यहाँ, तहाँ, कहाँ आदि की व्युत्पत्ति मानते हैं। डॉ० तिवारी द्वय स्मिन् प्रत्यय के योग से इदम, तद्, यद् आदि से बने शब्दों अस्मिन्, तस्मिन्, यस्मिन्, कस्मिन् अवस्मिन् आदि से इसका विकास मानते हैं। इसमें अन्तिम मत ही युक्तिपूर्ण लगता है।

स्थानवाचक का ही एक रूप दिशावाचक होता है। इधर, उधर, जिधर, तिधर, किधर आदि दिशासूचक क्रियाविशेषण हैं।

इनमें धर की व्युत्पत्ति बीम्स संस्कृत मुख के लघुत्वबोधक कल्पित रूप मुखर > म्हर > न्हर > न्धर > धर रूप में मानते हैं।

हार्नली इदृश >प्र० एद्रिह >इद्दह में प्राचीन सप्तमी प्रत्यय र के योग से इसका विकास मानते हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी यत्र, तत्र आदि में प्राप्त त्र से धर का विकास मानते हैं। त्र >तर >दर >धर।

मेरी दृष्टि में बीम्स की व्युत्पत्ति अधिक ठीक है। क्योंकि हिन्दी के उपर्युक्त रूपों के लिए बोलियों में जो एन्हर, ओन्हर आदि शब्द चलते हैं उनका सिद्धि इससे हो जाती है जब कि अन्य व्युत्पत्तियों से इधर-उधर के लिये प्रयुक्त एन्हर, ओन्हर या एम्हर, ओम्हर आदि रूपों की सिद्धि संभव नहीं दीखती।

(ग) परिमाणवाचक—बहुत, ज्यादा, कम, कुल आदि परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण हैं। इनमें कम और ज्यादा फारसी से आए हैं। कुल शब्द डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार कदाचित सं० कुलम् से व्युत्पन्न है।[१] बहुत शब्द संभवतः बहुत्वम् या बहुः का विकसित रूप है। बहुत्वम् >बहुत्त >बहुत।

(घ) रीतिवाचक—यों, क्यों, ज्यों, त्यों रीतिवाचक क्रियाबिशेषण हैं। इनकी व्युत्पत्ति किम् + एवं, यत + एवं, तत + एवं, एतत + एवं से है।

१. हिन्दी भाषा का उद्गम और बिकास, पृ० ४६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपभ्रंश में एवं के रूप एउं, इउं आदि मिलने लगते हैं, इसी का यों, जो आदि हो जाता है जो किम, यत्, तत् आदि से मिलकर क्यों, ज्यों, त्यों आदि का निर्माण करता है।

(२) संज्ञादिक :

(क) कालवाचक—आज, कल, परसों, तुरत इत्यादि।

आज — इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत अद्य से है। सं०अद्य >प्रा० अज्ज >हि० आज।

कल—संस्कृत कल्यम् से व्युत्पन्न इस शब्द का विकास यों हैं—
कल्यम् >कल्लं >कल।

परसों—इसकी व्युत्पत्ति सं० परश्व से है।

तरसों—इसकी व्युत्पत्ति अति परश्व से है। अति + परश्व >अतरसों तरसों।

तुरत—इसका विकास सं० त्वरितम् से है। सं० त्वरित >प्रा० तुवरन्त' >तुरं >हि० तुरन्त, तुरत।

(ख) स्थानवाचक—बाहर, भीतर, आगे, नीचे, ऊँचे इत्यादि।

बाहर—इसका विकास संस्कृत बहिः से है। वहिः >प्रा० वाहिरो > प्रा० बाहिरअ >हि० बाहर।

भीतर—यह अभ्यन्तर से व्युत्पन्न है। अभ्यन्तर >प्रा० भित्तर >हि० भीतर।

आगे—यह संस्कृत अग्रे से विकसित है। अग्रे >अग्गे >आगे।

पीछे—यह पश्च से विकसित है। पश्च >पिच्छ >पीछे।

नीचे-ऊँचे—का विकास नीचैः से और उच्चैः से है।

ऊपर—यह उपरि से विकसित है। उपरि >उप्परि >ऊपर।

(ग) रीतिवाचक—जानो, मानो, जैसा इत्यादि।

जानो की व्युत्पत्ति ज्ञातुम से है।

मानो की व्युत्पति मान्यतु से है—मान्यतु >प्रा० मण्णउ >हि० मानो।
जैसा का विकास यादृश से माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपसर्ग-प्रत्यय

शब्द-रचना के प्रयोजन से किसी शब्द के आरम्भ में जोड़ा जानेवाला शब्दांश या वर्ण-समूह, जिसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता हो, उपसर्ग कहलाता है। उपसर्गों के योग से सामान्यतः कहीं शब्द के अर्थ का परिवर्त्तन होता है, कहीं शब्दार्थ की सम्पुष्टि होती है और कहीं अर्थ में किसी विशेषता का समावेश हो जाता है। अतः उपसर्ग के योग से न केवल शब्द का निर्माण होता है अपितु अर्थ में विकार भी उत्पन्न होता है।

प्रत्यय वह शब्दांश या वर्ण-समूह है जो शब्द-रचना के प्रयोजन से किसी शब्द के अन्त में जोड़ा जाता है और जुड़कर अर्थ-विकार या रूप-विकार उत्पन्न करता है। उपसर्ग की तरह इसका भी स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता है।

अभिप्राय यह कि स्वरूप, कार्य और उद्देश्य की दृष्टि से उपसर्ग तथा प्रत्यय दोनों एक ही हैं। अन्तर केवल शब्द में जुड़ने के स्थान का हैं। एक आदि में जुड़ता है दूसरा अन्त में। यहाँ इन दोनों पर अलग-अलग विचार किया जाता है।

उपसर्ग—

हिन्दी में ऐतिहासिक दृष्टि से तीन प्रकार के उपसर्ग प्राप्त हैं—तत्सम, तद्भव और विदेशी।

तत्सम उपसर्ग—संस्कृत में प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर, दुस, दुर, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप ये २२ उपसर्ग हैं। इनके अतिरिक्त कुछ गति कहलानेवाले शब्द और अव्यय भी उपसर्गवत् प्रयुक्त होते हैं। चूँकि हिन्दी में ऐसे उपसर्गों में से अधिकांश यथावत् लिए गये हैं अतः इनका रूप विकारहीन है। इसलिए इनपर विचार नहीं किया जा सकता।

इन उपसर्गों के अतिरिक्त कुछ ऐसे उपसर्ग हैं जो हैं तो संस्कृत के ही, मगर या तो मूल शब्द से रूपांतरित होकर आए हैं या उपर्युक्त २२ की सूची में नहीं हैं। जैसे—अ, अन्, आ, उत्, कु, नि, परि, स, सु आदि। इनमें अ, अन् आदि गति कहलाने वाले शब्द न के विकसित रूप हैं तथा स, सु अव्यय हैं। शेष उपसर्गवत् प्रयुक्त होनेवाले तत्सम शब्द हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्भव उपसर्ग—

इनका रूप संस्कृत उपसर्गों या उपसर्गवत् प्रयुक्त होनेवाले शब्दांशों से विकसित हुआ है। इनका परिचय नीचे दिया जाता है।

उ—यह उपसर्ग सं० उद् से विकसित है। अंत्य व्यंजन द के लोप से इसका निर्माण हुआ है। इसका अर्थ ऊपर, ऊँचा आदि से सम्बन्धित है तथा संज्ञा और धातुओं के साथ इसका प्रयोग होता है। जैसे—उथला (संज्ञा), उखाड़ना (धातु) इत्यादि।

उन—संस्कृत एकोन से इसका विकास हुआ है। सं० एकोन >पालि एकून > प्रा० ऊन >हि० उन। इसका अर्थ 'एक कम' है और प्रायः दहाई से एक कम वाली संख्याओं के सूचन में इसका प्रयोग होता है। जैसे उन्नीस, उन्तीस, उनसठ इत्यादि।

औ—यह संस्कृत उपसर्ग अव का विकसित रूप है। सं० अव >प्रा० अब, ओ >हि० औ। यह हीनता तथा दूरस्थता सूचक उपसर्ग है जिसका व्यवहार मध्यकालीन हिन्दी में अधिक मिलता है। जैसे—औढ़रा, औगुन इत्यादि। परिनिष्ठित हिन्दी में इसका मूल रूप अव ही चलता है। जैसे—अवगुण, अवमानना, अवहेलना इत्यादि।

क—यह संस्कृत कु का विकसित रूप है जो केवल कपूत शब्द में आता है।

दु—बुरा, हीन आदि अर्थों का वाचक यह उपसर्ग संस्कृत दुर का विकसित रूप है। सं० दुर >प्रा० दू, दु >हि० दु। जैसे—दुबला, दुधारी इत्यादि।

नि—इसका विकास सं० निर् से है। सं० निर् >प्रा० नि, नी >हि० नि। निषेध या राहित्य का अर्थ सूचित करने के लिए इसका प्रयोग होता है। जैसे—निडर, निकम्मा, निखट्टू इत्यादि।

पर—यह सं० प्र का असंयुक्त रूप है। यह पूर्ववर्ती या परवर्ती का अर्थ देता है। जैसे—परदादा, परपोता इत्यादि।

स—यह सं० सु का विकसित रूप है। जो उत्तम का अर्थ देता है। जैसे—सपूत, सलोना, सहारा इत्यादि।

विदेशी उपसर्ग—

विदेशी उपसर्गों के अन्तर्गत केवल फारसी और अंग्रेजी के उपसर्ग आते हैं। फारसी उपसर्ग तो खैर खप भी गए हैं और बहुलता से प्रयुक्त भी होते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। मगर अंग्रेजी उपसर्गों की स्थिति वैकल्पिक है। उनके स्थान पर संस्कृत के उपसर्गों का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे हेड पंडित की जगह मुख्य पंडित या वाइस प्रेसिडेंट की जगह उपराष्ट्रपति। वस्तुतः जहाँ हिन्दी लिखने-बोलने में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता है वहीं आवश्यकतानुसार ये उपसर्ग आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में इन्हें हिन्दी की प्रकृति के अन्तर्गत मानना संभव नहीं है। सामान्यतः डिप्टी, वाइस, हाफ, सब और हेड ये पांच उपसर्ग अंग्रेजी और कभी-कभी हिन्दी शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होते हैं।

फारसी उपसर्ग :—

अल—यह अलमस्त, आदि शब्दों में प्रयुक्त होता है तथा चिन्ता फिक्र से रहित स्थिति का अर्थ देता है।

ब, बा—ये दोनों साथ या से का अर्थ देते हैं। जैसे—बतौर, बनाम, बदौलत बाकायदा, बावजूद इत्यादि।

बे—यह निषेध या राहित्य का अर्थ सूचित करता है। जैसे—बेगरज, बेचैन, बेखबर इत्यादि।

ला—यह अभाव और उदासीनतासूचक उपसर्ग है। जैसे—लापरवाह, लाजवाब, लाचार इत्यादि।

हम—यह सहार्थी उपसर्ग है। जैसे—हमदम, हमदर्द, हमउम्र, हमसफर इत्यादि।

फारसी के ये उपसर्ग हिन्दी तत्सम या तद्भव शब्दों के साथ बहुत कम या नहीं के बराबर प्रयुक्त होते हैं। ये मूलतः अपनी भाषा के शब्दों के साथ ही आते हैं।

हिन्दी उपसर्गों के प्रयोग के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही जा सकती हैं। प्रथम यह कि आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) में फारसी उपसर्गों का प्रयोग प्रायः वे ही लेखक करते हैं जो उर्दू का पुट देकर हिन्दी लिखते हैं। दूसरी बात कि अंग्रेजी उपसर्गों का प्रयोग प्रायः कम होता है। सब, डिप्टी, वाइस आदि के योग से बननेवाले शब्द जब पद खास को सूचित करते हैं तभी प्रयुक्त होते हैं। अन्यत्र इनका प्रयोग नहीं ही होता है।

तीसरी बात कि तद्भव उपसर्गों का जितना प्रयोग मध्ययुगीन हिन्दी में मिलता है उतना आधुनिकयुगीन हिन्दी में नहीं। चौथी बात कि आधुनिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी में संस्कृत उपसर्गों का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इसके दो कारण हैं। (१) हिन्दी लेखकों का एक वर्ग ऐसा है जो आभिजात्य गरिमा, सांस्कृतिक दृष्टिकोण और परिष्कृत रुचि के कारण तद्भव उपसर्गों के प्रयोग में हल्कापन अनुभव करता है। (२) जबसे हिन्द में शिक्षा, प्रशासन, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय या पारिभाषिक शब्द बनने लगे हैं तब से ऐसे उपसर्गों का प्रयोग बढ़ गया है। क्योंकि इन शब्दों के निर्माण का आकर-स्रोत संस्कृत भाषा है और संस्कृत शब्दों में विभिन्न उपसर्गों या प्रत्ययों के योग से एक ही प्रकार के भिन्न रूपात्मक शब्द बड़ी सुगमता से बन जाते हैं।

प्रत्यय—

स्वरूप की दृष्टि से प्रत्यय के दो भेद होते हैं। (१) कृत् और (२) तद्धित। कृत प्रत्यय वे हैं जो केवल धातुओं के साथ जोड़े जाते हैं। इनसे बने शब्द कृदन्त कहलाते हैं। तद्धित प्रत्यय सिद्ध शब्दों जैसे संज्ञा, विशेषण, कृदन्त आदि के साथ प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्द तद्धितान्त कहलाते हैं।

हिन्दी में कृदन्त और तद्धित के प्रयोग की बहुत स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है। बहुत से शब्द दोनों का कार्य सम्पादित करते हैं, अतः इनका एकत्र विचार हा उपयुक्त है। संस्कृत में ऐसी स्थिति नहीं थी। वहाँ कृत और तद्धित प्रत्यय भिन्न-भिन्न थे। इस दृष्टि से हिन्दी प्रत्ययों की वर्गहीनता सरलता का ही सूचक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी में प्रत्ययों के चार वर्ग हैं। (१) तत्सम, (२) तद्भव, (३) देशज और (४) विदेशी।

तत्सम—संस्कृत में शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु आदि लगभग ५० कृत प्रत्यय और यत् मतुप, त्व, तल आदि लगभग ३० तद्धित्व प्रत्यय हैं। निश्चय ही यह संख्या कम नहीं है। हिन्दी में तत्सम प्रत्ययों के प्रयोग की दो स्थितियाँ हैं। प्रथम में ये संस्कृत शब्दों के साथ आते रहे हैं। दूसरे इनमें से कुछ का प्रयोग हिन्दी में अब इतनी अधिकता से हो रहा है कि डॉ० भोलानाथ तिवारी इन्हें हिन्दी का ही मान लेना उपयुक्त समझते हैं। ऐसे तत्सम प्रत्ययों में आ (प्रिया, माननीया), आलु (दयालु, कृपालु, श्रद्धालु) जीवी (श्रमजीवी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुद्धिजीवी) तः (स्वतः, मुख्यतः, अन्यतः) ता (शिशुता, पशुता, नरता) त्व (गुरुत्व, लघुत्व, बन्धुत्व) दा (सर्वदा) धा (बहुधा) वर्त्ती (परवर्त्ती, चक्रवर्त्ती) वान् (धैर्यवान, शक्तिवान्) शाली (भाग्यशाली, बलशाली) इत्यादि मुख्य हैं।

तद्भव प्रत्यय—ऐसे प्रत्यय संस्कृत प्रत्ययों से विकसित हुए हैं।

अन्—संस्कृत अन प्रा० अण से हिन्दी अन् का विकास हुआ है। धातु से कर्तृवाचक, भाववाचक तथा जातिवाचक संज्ञाओं का निर्माण इस प्रत्यय के द्वारा बहुलता के साथ होता है। जैसे—जलन, मिलन, पालन, झाड़न, बेलन, कतरन, जूठन इत्यादि।

अल्—इसका सम्बन्ध सं० आलु से है। डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह सं० ल से विकसित है। मांसल, पायल, घायल, आदि में यही प्रत्यय है।

अट्—सं० प्रत्यय ट से इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। डॉ० तिवारी इसे वत् से विकसित होने की संभावना मानते हैं। जीवट, डपट, झपट, लपट आदि में इसका प्रयोग है।

अज्—यह संस्कृत ज का विकसित रूप है। अल् अट् आदि की भाँति इसमें भी अ का आगम व्यंजनान्त शब्दों के साथ मिलने से विकसित हुआ है। पंकज, जलज, वारिज, आत्मज आदि इसके उदाहरण हैं।

अत्, त्व—ये दोनों सं० त्व के विकसित रूप हैं। जैसे अपनत्व, ममत्व आदि में त्व तथा बचत, खपत आदि में अत् है।

अक्—यह समूहार्थी प्रत्यय के रूप में क से तथा अन्य रूपों में कृत से विकसित हुआ है। हार्नली इसका सम्बन्ध अक से मानते हैं। शतक, ठंढक आदि में यह क रूप से है तथा चमक आदि में कृत से विकसित है।

अन्त—यह शतृ प्रत्यय अन्त से विकसित है। मनगढ़ंत, रटंत आदि में यही प्रत्यय है।

अज्ञ—यह ज्ञ से विकसित है। व्यंजनान्त शब्दों में स्वरागम के साथ जुड़ता है। जैसे—अल्पज्ञ, सर्वज्ञ, मर्मज्ञ आदि।

आ—संज्ञा से पुं० विशेषण, धातु से संज्ञा, सामान्य धातु से प्रेरणार्थक आदि अनेक रूपों के निर्माण में आ का प्रयोग होता है। इसका विकास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत अक से है। अक > प्रा० अ > हि० आ। प्रेरणार्थक रूप में यह संस्कृत अय से बना है। चला, चलता, पूजा, पढ़ा आदि में इसके रूप द्रष्टव्य हैं।

आई, ई—विशेषण एवं धातु से संज्ञा रूप बनाने में इसका उपयोग होता है। हार्नली इसे सं० तिका से व्युत्पन्न मानते हैं। तिका > प्रा० दिग्रा > इआ > हिन्दी आइ (विपर्यय द्वारा)। चटर्जी धातु के प्रेरणार्थक रूप में इका जोड़कर बनाई गई स्त्रीलिंग संज्ञा से इसका विकास मानते हैं। धातु का प्रेरणार्थक रूप आप + इका = आपिका प्रा० आविग्रा > आवी > हि० आई। सिलाई, पढ़ाई, धुलाई, चतुराई, मिठाई, कमाई आदि में इसका रूप द्रष्टव्य है।

ऊ, आऊ—यह संस्कृत उक या ऊक से बना है। मूल रूप ऊ ही है। आऊ इसी का विकसित रूप है। कमाऊ, उपजाऊ, बिकाऊ, पंडिताऊ आदि में यह प्रत्यय प्रयुक्त है।

आड़ी—संस्कृत आरी से हि० आड़ी बना है। खिलाड़ी, जुआड़ी आदि में प्रयोग द्रष्टव्य है।

आन्—यह सं० प्रेरणार्थक आप-अन आपन > आवण > आणव > आण > आन् के रूप में विकसित हुआ है। उठान, चढ़ान, थकान, मिलान, कुदान, खदान आदि में यह मिलता है।

आना—यह स्थानवाची प्रत्यय है जिसका विकास सं० स्थान + क से है। सं० स्थानक > प्रा० थानअ > हि० आना। उदाहरण राजपूताना, समधि-आना।

आनी—यह सं० आनी, र के प्रभाव से आणी > प्रा० आणी > हि० आनी के रूप में विकसित है। जैसे—इन्द्राणी, मातुलानी हिन्दी में जेठानी, देवरानी जैसे शब्दों में इसका प्रयोग स्त्री प्रत्यय के रूप में प्रचुरता से होता है।

आप-आपा—इसका विकास क्रमशः सं० त्व तथा त्वक् से है। त्व, त्वक > प्रा० प्प, प्पअ > हि० प, पा। जैसे बुढ़ापा, मोटापा आदि। यह भाववाचक संज्ञा बनाने में प्रयुक्त होता है।

आयत—हार्नली तथा बीम्स इसकी व्युत्पत्ति वत्, मत् आदि से मानते हैं। वत्, मत् > अवंत, अमंत > अयंत > आयत। डॉ० वर्मा इसी को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानते हैं। भोलानाथ तिवारी इसे संदिग्ध मानते हैं। पंचायत, बहुतायत, किफायत आदि में इसके रूप प्राप्त होते हैं।

आर—यह संस्कृत कार से व्युत्पन्न है। कहीं तो इसका स्वतंत्र प्रयोग होता है जैसे—चमार। कहीं केवल र रहता है। जैसे—लोहार। कहीं आरा का योग होता है जैसे—घसिआरा और कहीं इ का जैसे पुजारी।

आल्, आला—यह स्थानवाची प्रत्यय है। जो संस्कृत आलय से निष्पन्न है। आलय > आलअ > आल, आला। जैसे—ससुराल, शिवाला, इत्यादि।

आव्—इसके सम्बन्ध में कई मत हैं। हार्नली इसे त्व, त्वन से जोड़ते हैं। त्व त्वन > तं, तणं > अअं, अअणं > अउ, अअणु > आव। मगर यह संगत नहीं लगता। चटर्जी इसे आपुका (आप + उक् + आ) आउआ > आव से विकसित मानते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी (आप् + उक् + आ) से नहीं (आप् + अ + क) आपक से विकास मानते हैं। आपक > आवअ > आवा > आव, वा। इसका प्रयोग धातु एवं संज्ञा से भाव-वाचक संज्ञा बनाने में होता है। बहाव, चढ़ाव, कटाव, पथराव, बचाव आदि।

आवट—मिलावट, बनावट आदि में प्राप्त इस प्रत्यय का विकास जटिल है। भोलानाथ तिवारी तव्य + क + त्वं > प्रा० अव्वट > आवट से विकास मानते हैं। चटर्जी प्रेरणार्थक आपवृत्ति > आवट्ट > आवट से मानते हैं। मगर विकास बहुत स्पष्ट नहीं लगता है।

आस, आसा, आसी—प्यास, मिठास आदि में प्राप्त इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। हार्नली वांछा से तथा भोलानाथ तिवारी आश > आस से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। आसा, आसी में आ और ई प्रत्यय है।

आहट, आहत—इसकी व्युत्पत्ति हार्नली वृत्ति से, और बीम्स आतु से मानते हैं।

इक—मौखिक, मौलिक, वैदिक आदि में प्राप्त यह सं० इक का रूप है। संज्ञा से विशेषण बनाने में इसका प्रयोग होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्—यह संस्कृत प्रत्यय है। चित्रित, लिखित आदि शब्दों में प्राप्त होता है।

इन—पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। सं० आनी, आणी से इसका विकास हुआ है। सं० आनी, आणी > प्रा० आणी > णी > अप० इण > हि० इन। उदाहरण—सुनारिन, ग्वालिन, ठकुराइन इत्यादि। यह हिन्दी का प्रयोग बहुल प्रत्यय है।

इआ—इसका प्रयोग हिन्दी में कई रूपों में होता है। संज्ञा एवं धातु से विशेषण, पुल्लिंग से स्त्रीलिंग तथा धातु या संज्ञा से कर्तृवाचक संज्ञ बनाने में इसका प्रयोग होता है। इन अनेक रूपों में यह कम-से-कम तीन प्रत्ययों से विकसित है। (१) इय, ईय, इक से > इअ > इआ > इया (श्रुति के कारण य) (२) इत से—इत > इअ > इआ > इया। (३) इका से—इका > इआ > इया। उदाहरण—खटिया, लुटिया, बढ़िया, भोजपुरिया, चुहिया, धुनिया इत्यादि।

ई—इसका प्रयोग संज्ञा से विशेषण, पु० से स्त्री०, संज्ञा या धातु से कर्त्तवाचक संज्ञा, संख्या से समूहवाचक विशेषण, धातु आदि से भाववाचक संज्ञा आदि कई रूपों के बनाने में होता है। यह हिन्दी का सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय है। इसका विकास सं० इका तथा ईय से हुआ है। इका, ईय > इआ, ईअ > ई।

ईल, ईला, ईली—यह सं० इल > प्रा० इल्ल > हि० ईल से व्युत्पन्न है। ईला, ईली इसी के विकारी रूप हैं। जोशीला, चमकीला, चमकीली, इत्यादि।

एरा, एरी—यह सं० कृत से है। कृत > केर > एर, एरा, एरी आदि संयुक्त रूप हैं। ममेरा, चचेरा, सँपेरा इत्यादि।

एँड़ी—यह सं० इका से > इआ > इअ, एंड़ी रूप में विकसित है। प्रयोग—भंगेड़ी, गंजेड़ी।

की—यह सं० अक + इका से बना है। बैठक—बैठकी इत्यादि।

ज—यह संस्कृत जात से बना है। जा और जी संयुक्त प्रत्ययों से भतीजा, भतीजी आदि रूप बनते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ट—यह सं० वर्त्त से व्युत्पन्न है वर्त्त >वट्ट >ट। इसमें आ, ई जोड़कर प्रयोग योग्य शब्द बनते हैं। जैसे—कलूटा, कलूटी इत्यादि।

ड़, र—लंगड़ा, चमड़ा, पगड़ी, गठरी, मोटरी आदि में प्रयुक्त ड़, र का विकास संस्कृत वर्त्त से है। वर्त्त >वट्ट >ट >ड >ड़, र।

त—यह शतृ (अत्) से विकसित है। अत् >अंत् >त। आ, इ, ए लगाकर अन्य रूप बनाये जाते हैं। जैसे—खाता, खाती, खाते।

न—यह क्रियार्थक संज्ञाबोधक प्रत्यय है। विकास अनीय से हुआ है। अनीय >प्रा० अणीय >णअ >ण >न। आ, इ, ए के योग से खान-पान, खाना-पीना, खानी-पीनी, खाने-पीने इत्यादि।

पन—यह प्रमुख भाववाचक प्रत्यय है। विकास सं० त्वन से हुआ है। त्वन प्रा० प्पण >हि० पन। उदाहरण—बचपन, पागलपन, इत्यादि।

रू—इसका विकास रूप से है। सं० रूप >प्रा० रूव >हि० रू। गोरू, मेहरारू, गँवारू इत्यादि।

वं—क्रमवाचक संख्याओं में आ, इ, ए के योग से इसका प्रयोग होता है। जैसे पाँचवां, सातवां इत्यादि। विकास सं० म से है। म >व >वं। वा वीं आदि का विकास क्रमशः मकः तथा मिका से है। ढालुवां आदि में यह वत् से विकसित है।

वाल्—(वाला, नेवाला, वाली, वाले इत्यादि रूप भी)—इसका विकास पाल, पालक इत्यादि रूपों से हुआ है। पाल >वाल, पालक >वालअ > वाला। कोतवाल, पालीवाल, तांगेवाला, आपवाला, इत्यादि उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

हर्—इसका विकास कई रूपों में हुआ है। (१) गृह से गृह > घर >हर। जैसे—नैहर, पीहर इत्यादि। दुहरा, तिहरा आदि में प्राप्त (हर+आ) रूप का विकास धर से हुआ है।

हार—(हारा, हारी आदि भी)—यह संस्कृत धारक से निर्मित है। धारक > हारअ >हार से हारा। उदाहरण—बनिहारा, लकड़हारा इत्यादि।

इसके अतिरिक्त ल, मय, सर, तम, तर, थ, ठ, कार आदि अन्य अनेक गौण प्रत्यय हैं जिनके योग से शब्दों का निर्माण होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देशज प्रत्यय :—

ये प्रत्यय स्थानिक हैं तथा इनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं है। कालक्रम से ये परिनिष्ठित हिन्दी में भी प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे कुछ प्रत्यय यहाँ दिए जाते हैं।

(१) अक्कड़—यह कर्तृवाचक प्रत्यय है जो धातु में जोड़ने से संज्ञा का निर्माण करता है। इसका विकास संभवतः अक्क + ट से है। उदाहरण—पियक्कड़, बुझक्कड़ आदि।

(२) अड़—संज्ञा बनाने में प्रयुक्त होता है। जैसे—अन्धड़, भुक्खड़।

(३) आक, आका, आकी—यह धातु से कर्तृवाचक संज्ञा बनाने में प्रयुक्त होता है। जैसे—लड़ाका, तैराक, तैराकी, इत्यादि। यह हार्नली के अनुसार सं० अक या आपक से व्युत्पन्न है। जैसे उड्डापक > उड्डावक उड़ाक, उड़ाका इत्यादि।

(४) आटा—छायात्मक शब्दों में जुड़कर भाववाचक संज्ञा बनाता है। जैसे—सन्नाटा, फर्राटा, खर्राटा इत्यादि।

(५) इअल—जैसे—सड़ियल, मरिअल, पनिअल इत्यादि। इसका सम्बन्ध सं० इल्ल से है।

(६) उआ—इस पर विचार नहीं किया गया है। संज्ञा तथा धातु में जोड़कर यह किया हुआ या बनाया हुआ का अर्थ देता हैं। जैसे—कट—कटुआ, छांट्—छँटुआ, बांट—बँटुआ, प्याज—प्यजुआ, गूँथ—गुँथुआ। इत्यादि इसका विकास सं० उनक् में स्वार्थे आ के योग से माना जा सकता है—सं० उका > हि० उआ।

विदेशी प्रत्यय :—

विदेशी प्रत्यय में अधिकतर अरबी-फारसी का ही प्रचलन है। अंग्रेजी प्रत्यय अभी पूर्णतः हिन्दी में खपे नहीं हैं। अरबी—फ़ारसी के मुख्यतः कर्मकारकीय रूप अन् (जबरन्) आन, आना (जुर्माना, दस्ताना) आनी (जिस्मानी) इयत, इअत (खैरियत्, इन्सानियत्) ईश—(मालिश) इस्तान् (हिन्दुस्तान, पाकिस्तान) इ (खुशी, दोस्ती) इन् (रंगीन), कार (सलाहकार), खोर (आदमखोर) गर (बाजीगर), गार (गुनहगार), गाह (आरामगाह) गी (जिन्दगी), गीर (राहगीर) जाद (शाहजाद) दान् (कलमदान, पीकदान)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दार (ईमानदार), नाक (दर्दनाक, शर्मनाक), बान् (मेहरबान) वीन (दुरवीन) वारी (गोलावारी) मन्द (जरूरतमन्द) वर (ताकतवर) वान् (पहलवान) वार (उम्मीदवार, नागवार) इत्यादि प्रत्ययों का प्रयोग हिन्दी में अरबी-फारसी शब्दों के साथ किया जाता है।

अंग्रेजी प्रत्यय इज्म और इस्ट का थोड़ा प्रयोग होता है। गांधीज्म, सोसलिज्म, कम्युनिज्म, सोसलिस्ट, कम्युनिस्ट आदि राजनीति में बहुप्रचलित कुछ शब्दों के साथ इसका प्रयोग द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी प्रत्ययों की संख्या बहुत अधिक है। आ, ई तथा ए लगाकर इन प्रत्ययों के अनेक विकारी रूप बनाए जाते हैं। इधर पारिभाषिक शब्द-निर्माण के क्रम में संस्कृत प्रत्ययों और उपसर्गों का प्रयोग अधिक होने लगा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंचम अध्याय

देवनागरी लिपि और अंक

लिपि की परिभाषा--जिस तरह मानव के भाव-विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले समस्त माध्यमों को व्यापक अर्थ में भाषा कहा जाता है उसी तरह भावाभिव्यक्ति के प्रकारों को लिखित रूप प्रदान करनेवाले समस्त माध्यमों को लिपि कहा जा सकता है, किन्तु आधुनिक दृष्टि से लिपि उन चिह्नों को कहेंगे जो किसी भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए संकेत रूप में प्रयुक्त होते हैं। दूसरे शब्दों में जब श्रोत्र-ग्राह्य ध्वनियों को नेत्र-ग्राह्य बनाना होता है तो लिपि की आवश्यकता होती है। सतत सम्पर्क और संस्कार के कारण इन संकेतों को पढ़ते ही वे ध्वनियाँ मुखर हो उठती हैं जिनके लिए इन संकेतों का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए डॉ० म० व्यं० सहस्रबुद्धे कहते हैं—'लिपि-रूप अक्षर विचार-रूप मानसिक क्रिया का ही एक बोध-चिह्न है।'[१] स्वर्गीय शं० दा० चितले के अनुसार 'ध्वनि और वर्ण-चिह्न के सम्बन्धों का नाम ही लिपि है। एक ही चिह्न से यदि एक ध्वनि ज्ञात हो जाय तो लिपि का उद्देश्य सफल माना जा सकता है।'[२] अभिप्राय यह कि लिपि उच्चरित भाषा की ध्वनियों को लिखित रूप देने वाले चिह्नों का नाम है। इन चिह्नों का केवल ध्वनि से ही नहीं, हमारे विचार और बोध से भी अटूट सम्बन्ध होता है।

लिपि व्यक्ति की साधना का नहीं समूह के सार्वजनिक प्रयत्नों का परिणाम है। भाषा की ही भाँति इसकी स्वीकृति के मूल में पारस्परिक समझौते की भावना निहित होती है। समाज, जाति और स्थान की पृथकता से एक ही ध्वनि को लिखने के लिए भिन्न-भिन्न चिह्नों का प्रयोग होता आया है। इसी कारण संसार में अनेक लिपियाँ प्राप्त होती हैं। यह दूसरी बात है कि सभ्यता के विकास और वैज्ञानिक उपयुक्तता के कारण कुछ लिपियाँ बहुमान्य हो गई हैं और अनेक भाषाओं ने उन्हें स्वीकार कर लिया है। प्रत्येक भाषा की अलग-अलग लिपि हो सकती है किन्तु अनिवार्यतः नहीं।

१. देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ, सम्पादक—जोगलेकर, पृ० ४९
२. वही, पृ० ३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कभी-कभी एक भाषा अपनी लेखनगत असुविधा के कारण एक लिपि को छोड़कर दूसरी अधिक समुन्नत, उपयुक्त और वैज्ञानिक लिपि को ग्रहण कर लेती है। उदाहरणार्थ, तुर्की भाषा ने अरबी लिपि का परित्याग कर रोमन लिपि को अपना लिया है।

भाषा विकास के क्षेत्र में लिपि का आविर्भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। लिपि के द्वारा भाषा को प्रथम बार क्षणिकता से मुक्ति मिली और एक पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी के उपयोग के लिए संचित हो सका। प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के शब्दों में 'लिपि ने भाषा को देश और काल के बन्धन से मुक्त कर दिया और भाषा की क्षणस्थायिता को चिरस्थायिता में परिणत कर दिया।'[1]

प्रकृति की दृष्टि से लिपि विकासशील कही जायगी। यह विकास दो रूपों में परिलक्षित होता है—(१) सामान्य रूप में (२) लिपि-विशेष के सन्दर्भ में। सामान्य रूप में लिपि ने शताब्दियों की यात्रा के पश्चात् अपना आधुनिक रूप ग्रहण किया है। विद्वानों की धारणा है कि मानव ने चित्रों के रूप में पहली बार लिखना प्रारम्भ किया। इस लेखन की प्रेरणा उसे आसपास के प्राकृतिक वातावरण से मिली होगी, ऐसी डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल की धारणा है।[2] किन्तु चित्रों का लेखन न तो सब समय संभव था और न आसान ही। साथ ही चित्रों के द्वारा भावाभिव्यक्ति भी पूरी तरह नहीं हो पाती थी। अतः भावों की अभिव्यक्ति के लिए सन्दर्भ और समूह के अंकन का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। उदाहरणार्थ जल के निकट दौड़ते बछड़े से प्यास का बोध कराया गया तो दो हाथों का मिलन मैत्री भाव का सूचक बना। इस तरह की अभिव्यक्ति को भाव लिपि कहा गया। चित्रों का लेखन तो यहाँ भी बना रहा किन्तु केवल वस्तु के बदले भाव के समावेश की क्षमता ने इस लिपि को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया।

अपनी सीमा और त्रुटियों के कारण लिपि का यह रूप अपने परिवर्तन के लिए कसमसाता रहा और चित्रों में संशोधन की प्रक्रिया चलती रही। इस क्रम में दो बातें हुईं। एक तो सम्पूर्ण चित्र के स्थान पर उसके संकेत मात्र से भाव का बोध कराया जाने लगा और दूसरी ओर ये चित्र प्रथमतः शब्दों का, फिर शब्दों से अक्षरों का और अन्ततः ध्वनियों का बोध कराने लगे।

१. भाषा विज्ञान की भूमिका, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ० ३३७
२. भाषा विज्ञान और हिन्दी, पृ० २१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलतः संकेत मात्र सूचित करनेवाले चिह्न ध्वनियों के बोधक हो गये और लिपि भाव-लिपि की अवस्था पार कर ध्वन्यात्मक लिपि की अवस्था में पहुँच गई। 'लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का स्थान सब से ऊँचा है। वास्तव में आज ध्वन्यात्मक लिपि ही भाषा की प्रतिरूपा है और लेखन की इस प्रणाली में प्रत्येक तत्व भाषा की विशेष ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है। इस लिपि में प्रतीक वस्तुतः वस्तु अथवा भाव को नहीं घोषित करते अपितु ये ध्वनि अथवा ध्वनि-समूहों को प्रकट करते हैं।'[1] सच तो यह है कि ध्वन्यात्मक अवस्था में पहुँचकर लिपि उस विकास को प्राप्त कर लेती है जहाँ से विचार-बोध, भाषा और लिपि तीनों एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप में सम्बद्ध हो जाते हैं। लिपि भाषा का पर्याय बन जाती है और भाषा चिन्तन से अभिन्न हो जाती है। इस ध्वन्यात्मक लिपि के भी दो भेद माने गए हैं—वर्णनात्मक और अक्षरात्मक। वर्णनात्मक लिपि में प्रत्येक वर्ण एक-एक ध्वनि का प्रतीक होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता लिखने की सरलता और ध्वनि-विश्लेषण की सहजता है। रोमन लिपि वर्णनात्मक है। अक्षरात्मक लिपि में स्वर और व्यंजन चिह्नों को मिलाकर लिखा जाता है। इस तरह अभिव्यक्ति अक्षर के रूप में होता है, वर्ण के रूप में नहीं। जैसे 'किताब' शब्द में तीन अक्षर हैं जबकि क + इ + त + आ + ब + अ ये छः वर्ण हैं। देवनागरी अक्षरात्मक लिपि का उदाहरण है।

इन दोनों श्रेष्ठ लिपियों में कौन सर्वोपरि है यह कहना विवादास्पद है। दोनों की अपनी विशेषताएँ और त्रुटियाँ हैं। यान्त्रिक सुविधाओं की दृष्टि से आज अगर वर्णनात्मक को श्रेष्ठ कहा जाता है तो वैज्ञानिकता की दृष्टि से अक्षरात्मक को। वर्णनात्मक में जो उच्चरित होता है, वही नहीं लिखा जाता है। जबकि अक्षरात्मक में जो उच्चरित होता है प्रायः वही लिखा जाता है। वर्णनात्मक की प्रतिनिधि रोमन में एक ध्वनि कई चिह्नों से सूचित होती है अथवा एक चिह्न कई ध्वनियों के रूप में उच्चरित होता है जबकि अक्षरात्मक में ऐसी भ्रान्ति नहीं है। हाँ, ध्वनियों के विश्लेषण की दृष्टि से और अनेक भाषाओं को एक लिपि में लिख सकने की सुविधा की दृष्टि से जो महत्व वर्णनात्मक को प्राप्त है वह उतनी ही मात्रा में अक्षरात्मक को नहीं प्राप्त है।

---

१. पाणिनि के उत्तराधिकारी, डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० ७८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिपि-विशेष के सन्दर्भ में विकास का अभिप्राय यह है कि किसी लिपि के चिह्न सभी कालों में समाम नहीं रहे हैं। उनका रूप समय के साथ बदलता गया है। उदाहरणार्थ देवनागरी लिपि के चिह्न आज जिस रूप में लिखे जाते हैं उसी रूप में पहले नहीं लिखे जाते थे। इसके प्राचीन चिह्नों में परिवर्तन की एक सतत विकासवान प्रक्रिया मिलती है जिसकी परिणति वर्तमान चिह्नों में हुई है। इन चिह्नों का विकासशील रूप आगे के चित्र में द्रष्टव्य है।

आदर्श लिपि की विशेषताएँ

ऊपर दोनों आधुनिक लिपियों की विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इनमें से कौन लिपि किसी भाषा के लिए ग्राह्य हो सकती है और कौन नहीं इस पर विचार करना अपेक्षित है। श्री शं० दा० चितले के अनुसार उपयुक्त लिपि में पन्द्रह गुण होते हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(१) निश्चितता अर्थात् एक वर्ण की एक ध्वनि।
(२) लेखन और भाषण में एकरूपता अर्थात् जो लिखा जाय वही बोला जाय।
(३) प्रत्येक अक्षर का उच्चरित होना।
(४) उपयुक्तता अर्थात् भाषा में प्रयुक्त सभी ध्वनियों के लिए लिपि चिह्नों का होना।
(५) एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न का होना।
(६) पढ़ने में सरलता और सहजता।
(७) सौन्दर्य।
(८) त्वरा लेखन।
(९) मुद्रण सुलभता।
(१०) यान्त्रिक सुलभता।

अन्य पाँच गुण :—

(११) लिपि का स्वदेशी होना।
(१२) प्रयोग की व्यापकता।
(१३) प्रयोग की प्राचीनता।
(१४) देश में प्रचलित अन्य लिपियों से निकट का सम्बन्ध।
(१५) प्रयोग की बहुसंख्यकता।[१]

---

१. देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ, पृ० ३९-४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनमें से संख्या एक और पांच एक साथ होना चाहिए। इसी तरह संख्या नौ और दस एक साथ होना चाहिए। संख्या तीन तथा छह को सम्भवतः दो का ही खंड होना चाहिए। इसी तरह संख्या बारह और पन्द्रह में कोई अन्तर नहीं है। अतः सब मिलाकर आदर्श लिपि के नौ गुण सिद्ध होते हैं।

डॉ० उदय नारायण तिवारी की दृष्टि में आदर्श लिपि में निम्न गुण होने चाहिए :—

(क) एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एक चिह्न हो।

(ख) एक चिह्न केवल एक ध्वनि का बोधक हो।

(ग) मात्रा एवं वर्ण-बोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो।

(घ) चिह्न सुन्दर और कलात्मक होने के साथ-साथ आधुनिक लेखन और मुद्रण के यान्त्रिक साधनों के लिए सरलता से अपनाए जा सकें।

इसके अतिरिक्त जहाँ अनेक लिपियाँ प्रचलित हों वहाँ सामान्य लिपि के रूप में अपनायी जानेवाली लिपि की कतिपय और विशेषताएँ आवश्यक हैं; यथा—

(१) देश की अधिकांश जनता उस लिपि से परिचित हो।

(२) देश में प्रचलित अन्य लिपियों से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो।

(३) उस लिपि के वर्ण प्रचलित लिपियों के वर्णों के अनुरूप हों तथा उसकी वर्णमाला का क्रम भी अन्य लिपियों के समान हो।

(४) उस लिपि की देश में प्रतिष्ठा हो तथा जनता का उससे भावात्मक सम्बन्ध हो।[१]

इन तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा को उसी लिपि में लिखना आदर्श है जिसमें (१) उस भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने वाले चिह्न हों। (२) एक ध्वनि के लिए एक चिह्न हो और एक चिह्न केवल एक ध्वनि का बोधक हो। (३) लेखन और उच्चारण में एकरूपता सुस्पष्टता और विभ्रान्ति हो। (४) लिपि स्वदेशी हो तथा देश के जातीय जीवन, संस्कृति और इतर लिपियों से संस्कारतः जुड़ी हुई हो। (५) आधुनिक यान्त्रिक लेखन की सुविधाओं का उपयोग कर पाने की क्षमता भी उसमें हो तो सोने में सुगन्ध। यहाँ एक बात मैं स्पष्ट करना उचित समझता

१. पाणिनि के उत्तराधिकारी, पृ० १११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हूँ कि लिपि की यान्त्रिक सुलभता से मेरा अभिप्राय उपलब्ध यान्त्रिक उपकरणों के अनुरूप होने से नहीं है। मेरा अभिप्राय यह है कि यदि किसी लिपि के अनुसार यन्त्र बनाने में मनुष्य की मेधा अक्षम हो जाय और इसके अभाव में उस भाषा की प्रगति रुक जाय तो अवश्य उस लिपि का परित्याग कर देना चाहिए।

देवनागरी लिपि

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और परम्परा :—देवनागरी लिपि की उत्पत्ति ब्राह्मी लिपि से हुई है। प्राचीनता की दृष्टि से ब्राह्मी और खरोष्ठी भारत की सर्वाधिक प्राचीन ज्ञात लिपियाँ हैं। यों अन्य लिपियों के नाम भी मिलते हैं किन्तु उनका कोई लिखित रूप उपलब्ध नहीं होता। ब्राह्मी के प्राचीनतम नमूने ईसा से ५०० वर्ष पूर्व के प्राप्त होते हैं। इसका प्रचार इसी नाम से समस्त भारत में था और समय के साथ इसके रूप में परिवर्त्तन हो रहा था। लगभग ३५० ई० के बाद इसके उत्तरा और दक्षिणी रूप भिन्न हो गए और ब्राह्मी दो शाखाओं में बँट गई। उत्तरी ब्राह्मी के प्रचार-प्रसार को गुप्त राजाओं के काल में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। अतः आधुनिक भाषाविदों ने उस काल के आधार पर उत्तरी ब्राह्मी को गुप्त लिपि नाम दिया है।

सातवीं शताब्दी में सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त देश की केन्द्रीय एकता छिन्न-भिन्न हो गई और अनेक स्वतंत्र छोटे-छोटे राज्य उत्तर भारत में स्थापित हो गए। डॉ० उदयनारायण तिवारी का मत है कि इसका प्रभाव लिपि पर भी पड़ा और उत्तरी भारत की लिपि निम्नलिखित तीन लिपियों में विभक्त हो गई। ये हैं—(१) शारदा, (२) कुटिल और (३) नागर।[१]

डॉ० हरदेव बाहरी के अनुसार शारदा लिपि गुप्तकालीन लिपि से निकलने वाली सिद्धमात्रिका लिपि से विकसित हुई है[२] जबकि डॉ० भगवानदास तिवारी के अनुसार कुटिल लिपि से नागरी और शारदा लिपियों का विकास हुआ है।[३] डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार कुटिल लिपि से दसवीं सदी में शारदा लिपि का विकास हुआ और इसी के लगभग इसी लिपि से देवनागरी के प्राचीन रूप का। डॉ० बाबूराम सक्सेना भी कुटिल लिपि से ही शारदा

१. पाणिनि के उत्तराधिकारी, पृ० ९८
२. हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, पृ० २६०
३. देवनागरी लिपि स्वरूप, विकास और समस्याएँ, पृ० १०४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का दसवीं शताब्दी में विकसित होना मानते हैं।[1] इन भिन्न मतों के आधार पर वास्तविक विकास-क्रम निरूपण करना कठिन है। फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि गुप्त लिपि से ही स्थान-भेद के कारण तीनों लिपि-रूपों का विकास होता रहा जबकि ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से गुप्त लिपि से सिद्धमात्रिका और इससे शारदा का विकास एक शाखा के रूप में हुआ और दूसरी शाखा में गुप्त से कुटिल लिपि और कुटिल से नागरी का विकास हुआ।

कश्मीर को शारदा का अधिवास कहा जाता है। कदाचित इसी आधार पर वहाँ की लिपि का नाम शारदा हुआ। कुटिल लिपि नाम का आधार वर्णों की टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियाँ हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार स्वरों की मात्राओं की आकृति कुटिल या टेढ़ा होने के कारण इसे कुटिल लिपि कहा गया है।[2]

नागरी लिपि के नाम के सम्बन्ध में कई बातें कही गई हैं। प्रथमतः नाग लिपि ही नागरी लिपि है। द्वितीयतः गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित किए जाने के कारण नागरी नाम प्रसिद्ध हुआ। तृतीयत: इसका सम्बन्ध नगर से होने के कारण नागरी नाम पड़ा है। किन्तु ये सारे मत अनुमानाश्रित हैं यथार्थ नहीं। सही तथ्य अभी भी स्थापित नहीं हो सका है। देवभाषा संस्कृत का इस लिपि में लेखन होने के कारण इसे देवनागरी भी कहा जाता है। आजकल देवनागरी नाम ही प्रचलित है।

नागरी के चार उपभेद माने गए हैं:—अर्द्धनागरी, पूर्वी नागरी, नन्दि नागरी और नागरी। अर्द्धनागरी पश्चिम भारत में प्रचलित रही और इससे आधुनिक लंडा, गुरुमुखी, टक्री आदि लिपियों का विकास हुआ है। पूर्वी नागरी का प्रयोग क्षेत्र पूर्वी भारत रहा। इससे बंगला, उड़िया, कैथा आदि लिपियाँ विकसित हुईं। बंगला लिपि की ही एक शाखा वह लिपि है जिसे तिरहुताक्षर कहकर मैथिली भाषा के लेखन में कहीं-कहीं प्रयोग किया जा रहा है। यों मैथिली क्षेत्र में देवनागरी लिपि का ही प्रचलन है।

नन्दि नागरी दक्षिण में प्रचलित रही। वहाँ ब्राह्मी की दक्षिणी शाखा की लिपियों के अतिरिक्त नन्दि नागरी का भी प्रचलन रहा और उसमें संस्कृत ग्रंथ लिखे जाते रहे।

---

१. सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० २६३

२. हिन्दी भाषा, पृ० ३१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्य नागरी का क्षेत्र प्राचीन मध्य देश या आधुनिक बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान है। इसमें हिन्दी और उसकी उपभाषाओं के अतिरिक्त मराठी, नेपाली और संस्कृत भाषाएँ लिखी जाती हैं। आज यह सर्वाधिक लोकप्रिय लिपि है और भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रीय लिपि के रूप में मान्य है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर लिपि के रूप में नागरी का सर्वप्रथम उल्लेख जैन ग्रन्थ नन्दि सूत्र में मिलता है। इस ग्रंथ का रचनाकाल ४५३ ई० पूर्व माना जाता है। किन्तु इतने पूर्व तो ब्राह्मी का अस्तित्व मिलता है। अतः या तो इस ग्रंथ का रचनाकाल गलत है या उसमें देवनागरी का उल्लेख प्रक्षिप्त है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने नित्य षोडशिकार्णव की सेतुबंध टीका के लेखक भास्करानन्द द्वारा नागर लिपि के प्रयोग का उल्लेख किया है—

'कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य तत्। [नगर लिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणा कारतयैव लेखनात्]।'[1] किन्तु इसके समय आदि का कोई उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार वातुलागम की टीका में भी नागर लिपि शब्द का उल्लेख हुआ है। निष्कर्षतः नागरी लिपि का नामतः उल्लेख प्राचीन है इसमें कोई सन्देह नहीं।

अब देवनागरी की प्रयोग-परम्परा पर विचार करें। देवनागरी का सर्वप्रथम प्रयोग सातवीं-आठवीं शताब्दी में गुजरात नरेश जयभट्ट के एक शिलालेख में मिलता है। इसके उपरान्त राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा आठवीं शताब्दी में तथा बड़ौदा के ध्रुवराज द्वारा नवीं शताब्दी में इसका व्यवहार मिलता है।[2] ये प्रमाण देवनागरी के दक्षिण भारत में प्रयोग की प्राचीनता सूचित करते हैं। उत्तर भारत में इसका प्रयोग भी इसी के आस-पास मिलता है। सम्राट् हर्षवर्द्धन के शासनकाल (सातवीं शताब्दी) में देवनागरी का प्रयोग मिलता है। 'इस युग की नागरी लिपि अत्यन्त अलंकृत है और सम्राट् का हस्ताक्षर तो प्राचीन नागरी का उत्कृष्ट नमूना है।'[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण में नागरी का अपेक्षाकृत प्राचीन प्रयोग मानना भ्रान्त है। सत्यता यह है कि उत्तर-दक्षिण भारत में देवनागरी एक ही समय प्रचलित हुई और

१. देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ, पृ० २६
२. हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, डॉ० हरदेव बाहरी, पृ० २६२
३. पाणिनि के उत्तराधिकारी, डॉ० उदय नारायण तिवारी, पृ० १०४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रचलन की प्रारम्भिक सीमा ७वीं शताब्दी है। इसके बाद से लेकर दसवीं शताब्दी की अवधि में देवनागरी पंजाब से बंगाल तक और उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में केरल और श्रीलंका तक व्यापक क्षेत्र में प्रयुक्त होने लगी।

ग्यारहवीं शताब्दी से देवनागरी का रूप पूर्ण और स्थिर होने लगा और इसकी लोकप्रियता बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि विदेशी आक्रमणकारी महमूद गजनवी तक ने अपने सिक्कों पर इसका प्रयोग किया। उसने सन् १०२७-२८ में लाहौर की टकसाल में जो सिक्के ढलवाये थे उनकी एक ओर संस्कृत भाषा तथा देवनागरी लिपि में लिखा है—'प्रत्यक्तमेक मुहम्मद अवार नृपति महमूद।' सिक्के के किनारे पर नागरी में ही लिखा है—अव्याक्ती उनमें अयं टंकं हृत महमूदपुर संवती ४१८। ताड़पत्रों पर देवनागरी में लिखे इस काल के अनेक ग्रन्थ गुजरात, राजस्थान तथा महाराष्ट्र में प्राप्त हुए हैं।

मुगल शासन-काल में देवनागरी का राजकीय प्रश्रय छिन गया और इसके स्थान पर मुगल शासकों ने अरबी-फारसी लिपि को प्रतिष्ठित किया। किन्तु जन-जीवन में देवनागरी प्रचलित और विकसित होती ही रही।

अंग्रेजी शासन-काल में सरकारी काम-काज में रोमन का प्रयोग हुआ तथा परम्परागत फारस-अरबी लिपि भी प्रयुक्त होती रही। किन्तु जब अंग्रेज विद्वानों की रुझान संस्कृत के अध्ययन की ओर हुई और ईसाई मिशनरियाँ अपना धर्म लेकर हिन्दू समाज के निकट पहुंचने लगीं तो उन्हें देवनागरी का ज्ञान आवश्यक प्रतीत हुआ; क्योंकि जन लिपि यही थी और संस्कृत ग्रन्थ इसी लिपि में उपलब्ध थे। फलतः देवनागरी के प्रयोग का पथ गैर सरकारी तौर पर प्रशस्त हो गया और मिशनरियों के कारण प्रच्छन्न सरकारी संरक्षण भी एक तरह से प्राप्त होने लगा।

सरकारी कार्यालयों में देवनागरी के प्रवेश को लेकर आधुनिक युग में जो आन्दोलन चला उसके दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं :—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय और श्री अयोध्या प्रसाद खत्री। मालवीय जी ने उत्तर प्रदेश की कचहरियों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग के लिए लाखों लोगों के हस्ताक्षर से युक्त प्रार्थना-पत्र तत्कालीन गवर्नर मैकडोनल के पास भेजा तो श्री अयोध्या प्रसाद खत्री जी ने बिहार में खड़ी बोली और देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए आन्दोलन का झंडा उठाया। कहना न होगा कि इन दो महापुरुषों के प्रयत्न सफल हुए और दोनों प्रान्तों की कचहरियों में देवनागरी का प्रवेश हुआ। इस तरह देवनागरी पुनः अपने पुराने गौरव की ओर बढ़ चला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय संविधान सभा ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया। किन्तु इस बीच देवनागरी को अप्रतिष्ठित करने के प्रच्छन्न उद्देश्य से प्रेरित होकर अनेक लोगों ने इसमें छिद्रान्वेषी दृष्टि से त्रुटियों की खोज प्रारम्भ कर दी। फलतः इसके सुधार के नाम पर सरकारी, गैर-सरकारी प्रयत्नों का एक सिलसिला ही शुरू हो गया और देवनागरी सुधार आन्दोलन का एक इतिहास बन गया।

देवनागरी में सुधार की आवश्यकता मुख्यतः यान्त्रिक असुविधा को लेकर अनुभव की गई। चूंकि टंकन तथा मुद्रण के जितने यन्त्र अबतक उपलब्ध थे वे रोमन को आधार बनाकर बने थे और देवनागरी को उनमें फिट करने में असुविधा हो रही थी अतः प्रयास किया गया कि देवनागरी को जैसे-तैसे काट-कर यन्त्रों को अनुकूल बना दिया जाय। किन्तु ऐसे उत्साही सुधारकों की दृष्टि में एक बार भी यह साधारण-सी बात नहीं आई कि प्रत्येक लिपि की अपनी परम्परा होती है, अपना संस्कार होता है और जन मानस में उसका रूप इस तरह स्थित होता है कि उसे बदलना आसान नहीं होता। इसकी तुलना में यन्त्रों का परिवर्त्तन इस अति प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में आसान है। अतः यन्त्र के अनुसार लिपि नहीं, लिपि के अनुसार यन्त्र बनना चाहिए।

जिन लोगों ने टंकन-मुद्रण यन्त्रों के अनुसार देवनागरी को संशोधित करने का प्रयत्न किया उनलोगों ने देवनागरी के बदले एक दूसरी ही लिपि गढ़ कर रख दी। ऐसे महानुभावों में राहुल जी, श्रीनिवास, बिनोवा भावे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हर्ष का विषय है कि हिन्दी प्रदेश की जनता ने ऐसी कृत्रिम लिपियों को ठुकरा कर बेसिर-पैर के संशोधनों का गलत-परम्परा को समाप्त कर दिया।

सुधारकों के दूसरे वर्ग ने देवनागरी के स्थान पर दूसरी लिपि गढ़ने के बदले देवनागरी के वर्त्तमान रूप को ही यान्त्रिक सुविधाओं तथा प्रयोगजन्य व्यापकता को ध्यान में रखकर व्यवस्थित करने की चेष्टा की। इनमें नरेन्द्रदेव समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, डॉ० पन्नालाल, डॉ० गोरख प्रसाद तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित राज्य मंत्रियों के सम्मेलन का नाम उल्लेखनीय है। इन लोगों ने अलग-अलग जो प्रस्ताव दिए उनका सारांश यही निकला कि:—

(१) हिन्दी में दीर्घ ऋ अर्थात् ॠ नहीं चलता अतः इसे स्वरों में सम्मि-लित नहीं किया जाय।

५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) खड़ी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई हटाकर ही बनाया जाय। ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हलंत लगाकर बनाए जायें।

(३) ख, ध, भ, अ, झ और ण के स्थान पर ख, घ, भ, अ, झ, और ण का प्रयोग किया जाय।

(४) मराठी ळ को वर्णमाला में स्थान दिया जाय।

(५) र के तीनों रूप मान्य हों। जैसे—व्रत, राष्ट्र, धर्म।

(६) विराम चिह्न सब अंग्रेजी से यथावत् ले लिए जायें किन्तु पूर्ण विराम का चिह्न '।' हो '.' नहीं।[१]

(७) क्ष, ज्ञ और श्र यथावत् रहेगा किन्तु त्र के स्थान पर त्र मान्य होगा।

(८) स्वर का मात्राएँ पूर्ववत रहेंगी। हाँ, विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न माना जायगा।

इन संशोधनों के पश्चात् देवनागरी का भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत जो रूप प्रचलित हो रहा है वह इस प्रकार है।

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः।

मात्राएँ— ा ि ी ु ू े ै ो ौ ं ः।

व्यंजन—	क	ख	ग	घ	ङ
	च	छ	ज	झ	ञ
	ट	ठ	ड	ढ	ण
	त	थ	द	ध	न
	प	फ	ब	भ	म
	य	र	ल	व	श
	ष	स	ह	ड़	ढ़
	ळ	क्ष	ज्ञ	श्र	।

देवनागरी लिपि चिह्नों का विकास-क्रम

ऊपर विवेचन किया गया है कि देवनागरी लिपि चिह्नों का विकास ब्राह्मी से हुआ है। ब्राह्मी से अपने वर्त्तमान रूप तक आने में इन चिह्नों को अनेक बार अपना रूप परिवर्त्तित करना पड़ा है। आज जो वर्ण अपने जिस रूप में प्राप्त है उसे वह रूप अनेक परिवर्त्तनों के पश्चात् प्राप्त हुआ है। यहाँ हम

१. टिप्पणी—धर्मयुग, सारिका आदि पत्रिकाओं में '।' के बदले '.' ही प्रयुक्त होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति और विकास का चित्र

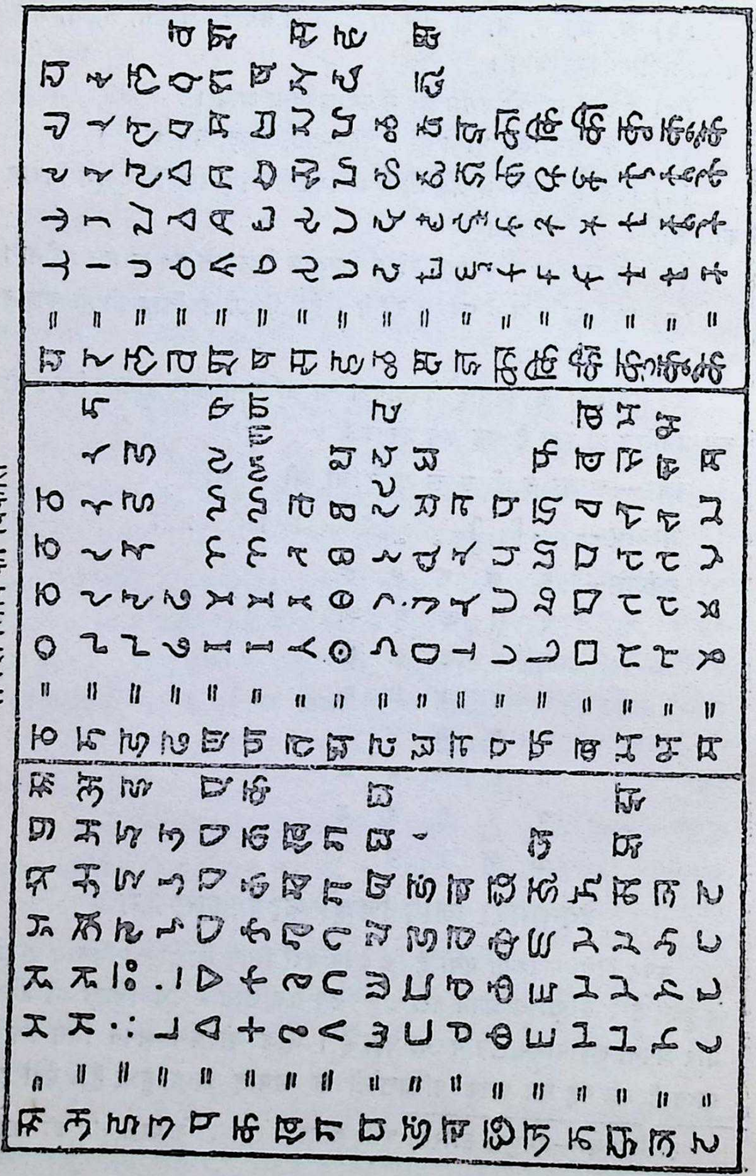

नागरी लिपि का विकास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्येक वर्ण के प्रत्येक रूप का ऐतिहासिक निरूपण नहीं करके केवल उन सभी रूपों का चित्र उपस्थित कर रहे हैं जिनसे रूपों का परिवर्त्तन स्पष्ट हो सके। अधिक जिज्ञासु पाठकों को इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए श्री जोगलेकर द्वारा सम्पादित पुस्तक "देवनागरा लिपि: स्वरूप, विकास और समस्याएं" में संकलित स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और डॉ० भगवानदास तिवारी के लेख पढ़ना चाहिए।

अंक :—संख्यावाचक ध्वनियों को सूचित करने वाले चिह्नों को अंक कहते हैं। लिपि की भाँति अंक भी भाषा का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। व्यावहारिक जीवन में गिनती के लिए अंकों की आवश्यकता होती है तो सैद्धान्तिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन के लिए अंकों की अपरिहार्य आवश्यकता सर्वविदित है। गणित तो अंकों का ही खेल है।

देवनागरी अंकों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और इनके विकास का इतिहास बड़ा ही रोचक है। इन अंकों के प्राचीन और वर्त्तमान रूपों में पर्याप्त अन्तर है जो इन अंकों की परिवर्त्तनशीलता का परिणाम है। देवनागरी में प्राचीन लिपि से प्राप्त १ से ९ तक के ही अंक चिह्न थे। शून्य नहीं था फलत: शून्य-वाली संख्याओं को लिखने के लिए स्वतन्त्र चिह्नों का प्रयोग होता था। इस कारण अंक लेखन की प्रक्रिया जटिल थी। शून्य के प्रयोग ने इस प्रक्रिया को सरल बना दिया। शून्य का प्रयोग छठी शताब्दी के बाद मिलने लगता है। किन्तु "शून्य की योजना कर नव अंकों से गणित शास्त्र को सरल करने वाले नवीन शैली के अंकों का प्रचार पहले-पहल किस विद्वान ने किया इसका कुछ भी पता नहीं चलता। केवल यही पाया जाता है कि नवीन शैली के अंकों की सृष्टि भारतवर्ष मे हुई, फिर यहाँ से यह क्रम अरबों ने सीखा और अरबों से उसका प्रवेश यूरोप में हुआ।"[1] मेरा अपना अनुमान है कि यह चिह्न ग्रीक प्रभाव के कारण भारतवर्ष में प्रचलित हुआ। वृत्त के ज्यामितीय चिह्न को शून्य रूप में ग्रहण कर लिया गया। यदि यह ग्रीक प्रभाव नहीं है तो इसका विकास क्षितिज (आकाश, शून्य)[2] की गोलाई के आधार पर, सूर्य की गोलाकृति के आधार पर, बीज, बिन्दु (अपारिभाषिक अर्थ में) आदि के रूप के

१. प्राचीन लिपि माला, गौरी शंकर हीराचन्द ओझा पृ० ११७

२. भारतीय वाङ्मय में अनेक वस्तुओं द्वारा संख्याओं का बोध कराने की पद्धति मिलती है। इस पद्धति में '०' शून्य का बोध आकाश से कराया जाता है। इसी आधार पर मैंने शून्य की परिकल्पना आकाश या क्षितिज के साम्य के आधार पर मानने की बात कही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधार पर या तांत्रिक साधना के अन्तर्गत बनाए जाने वाले चक्रों के आधार पर परिकल्पित करके किया गया है। पंजाब में यूसूफजई जिले के बख्साली गाँव में भोजपत्र पर इस शून्य वाली शैली (जिसे दशमलव पद्धति कहते हैं) की एक पुस्तक प्राप्त हुई है जिसका रचना काल हार्नले ने ३००-४०० ई० माना है। डॉ० बूलर का अनुमान है कि यह शैली और भी प्राचीन हो सकती है।[१] इससे यह कहने के लिए पर्याप्त बल है कि शून्य का आविष्कार भी भारतीय प्रतिभा की देन है जो दहाई संख्याओं की जटिलता दूर करने की आवश्यकता अनुभव होने पर आविष्कृत हुई होगी। इस आविष्कार को आकाश की शून्यता से रूप और अर्थ की अवश्य प्रेरणा मिली होगी। शेष १ से ९ तक की संख्याओं का विकास निम्न चित्र से स्पष्ट है।

नागरी अंकों की उत्पत्ति तथा विकास का चित्र

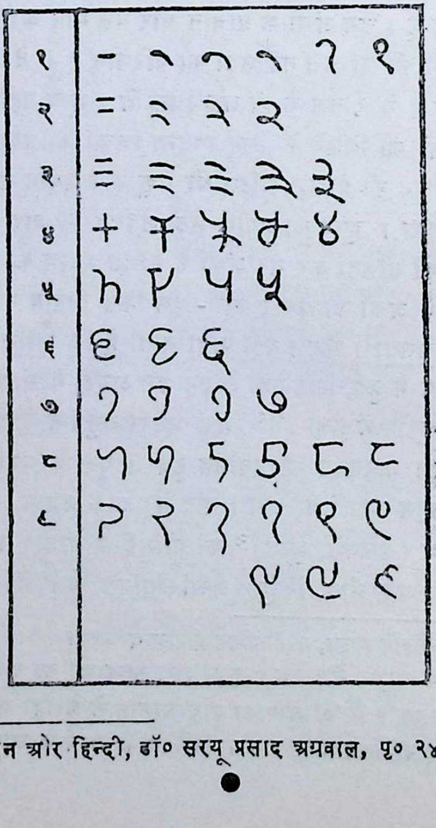

१. भाषा विज्ञान और हिन्दी, डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० २४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिशिष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) टिप्पणियाँ

(१) मूल स्वर :—डॉ० उदयनारायण तिवारी के शब्दों में 'मूलस्वर या मान स्वर वे अमूर्त्त ध्वनियां हैं जो विभिन्न भाषाओं के स्वरों का स्थान निर्धारित करने में मापदण्ड का काम करती हैं।' ऐसे मूल स्वर प्रायः सभी भाषाओं में होते हैं और उच्चारण की दृष्टि से स्वरों का स्थान निरूपित करने में मानदण्ड का कार्य करते हैं।

होता यह है कि स्वरों के उच्चारण में जीभ तालु के समीप पहुंचने का प्रयत्न करती है और वह एक विशेष ऊँचाई तक ही उठ पाती है। इससे ऊपर उठने पर स्वर का उच्चारण संभव नहीं होता। इसी तरह आगे, पीछे और नीचे भी एक-एक विन्दु है जिससे आगे जाने पर जीभ स्वर का उच्चारण नहीं कर पाती। ये चारो स्थान ही स्वर उच्चारण के सीमान्त हैं। सभी मूल स्वर इन्हीं सीमाओं के मध्य अवस्थित होते हैं। हिन्दी में मूलस्वरों की संख्या आठ है। ये आठ स्वर क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए और ओ हैं।

इन आठ मूल स्वरों को तालु के स्थान के आधार पर अग्र, मध्य और पश्च वर्गों में बांटा गया है। हिन्दी ध्वनियों में इ, ई, और ए अग्र स्वर हैं, अ मध्य स्वर है तथा उ, ऊ, आ और ओ पश्च स्वर हैं।

इन मूल स्वरों के उच्चारण में जीभ का विभिन्न भाग विभिन्न मात्रा में ऊपर उठता है। इसके परिणाम स्वरूप मुख-द्वार के खुलने में आकारिक भेद हो जाता है। इस आकारिक भेद के आधार पर मूल स्वरों के चार भेद किए गए हैं—(१) संवृत, (२) विवृत, (३) अर्द्ध संवृत और (४) अर्द्ध विवृत। संवृत वे मूल स्वर हैं जिनके उच्चारण में ओठ बिल्कुल गोलाकार हो जाते हैं और मुख-द्वार सँकरा हो जाता है। हिन्दी स्वरों में इ, ई, उ, ऊ संवृत स्वर हैं।

अर्द्ध संवृत स्वरों के उच्चारण में ओठ गोल तो हो जाते हैं किन्तु मुख द्वार संवृत के उच्चारण की तुलना में कम सँकरा, लगभग आधा सँकरा रहता है। इसीलिए इसे अर्द्ध संवृत कहते हैं। हिन्दी स्वर ओ तथा ए अर्द्ध संवृत हैं।

विवृत मूल स्वर वे हैं जिनके उच्चारण में मुख-द्वार सर्वथा खुल जाता है और जीभ का पिछला हिस्सा ऊपर उठ जाता है। हिन्दी आ विवृत मूल स्वर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्द्ध विवृत मूल स्वर के उच्चारण में मुख विवर कुछ खुलता है और जीभ का मध्य भाग ऊपर उठ जाता है। हिन्दी मूल स्वर अ अर्द्ध विवृत है।

इन आठों मूल स्वरों को जीभ के स्थान तथा मुख के खुलने की दृष्टि से जिन भेदों में ऊपर बांटा गया है उसे चित्र द्वारा निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है। बोलियों में प्रयुक्त होने वाले तथा कतिपय अन्य रूप छात्रों की उलझन के भय से छोड़ दिए गए हैं।

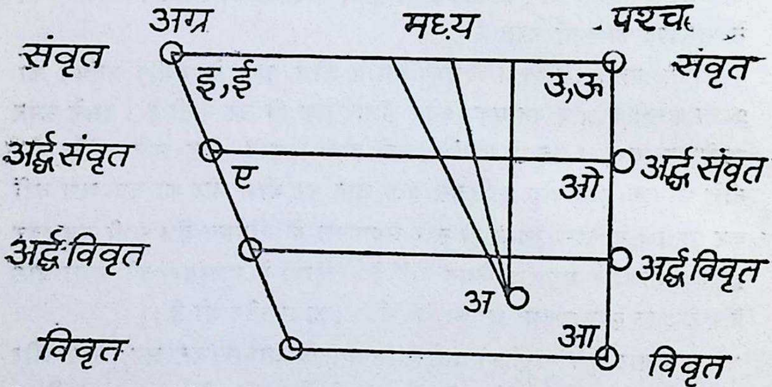

(२) संयुक्त स्वर :—यह दो स्वरों का ऐसा मिश्र रूप है जिसमें दोनों स्वर अपना अस्तित्व खोकर एकाकार हो जाते हैं और साँस के एक झटके में उच्चरित होते हैं। संयुक्त स्वरों को श्रुति या चल ध्वनि भी कहते हैं इसमें वक्ता एक स्वर का उच्चारण करता हुआ दूसरे स्वर का उच्चारण करने की चेष्टा करता है। इसमें उसे शीघ्रता करनी पड़ती है फलतः दोनों स्वर सिमट कर एक हो जाते हैं। हिन्दी में ऐ तथा औ संयुक्त स्वर हैं। इनका उच्चारण कहीं तो अए और अओ रूप में होता है। और कहीं अइ तथा अउ रूप में। गैया, भैया आदि के गइया, भइया रूप इसके प्रमाण हैं। इसी तरह कौआ कहीं कओआ और कहीं कउआ उच्चरित होता है। बोलियों में ये रूप टूटकर अलग-अलग उच्चरित होते हैं। वहाँ इनकी स्थिति स्वर-संयोग कहलाती है। खड़ी बोली की ध्वनियों के परिनिष्ठित उच्चारण में इन ध्वनियों को मूल स्वर के निकट ले आने की प्रवृत्ति मिलती है।

संयुक्त स्वरों के विभिन्न आधारों पर कई भेद हो जाते हैं। जिस संयुक्त स्वर के उच्चारण में जीभ को लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है उसे प्रशस्त और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कम दूरी वाली को संकीर्ण कहते हैं। इसी तरह दोनों स्वरों में एक अधिक मुखर और बलशाली हो तो उसे अवरोही और दूसरे को आरोही कहते हैं।

(३) अल्पप्राण-महाप्राण :—व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में प्रायः दो उच्चारण अवयवों का स्पर्श होता है। इस स्पर्श के कारण भीतर से निकलने वाली प्राणवायु अवयवों के बीच से रगड़ खाती निकलती है। इस क्रम में जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में प्राण अर्थात् वायु की शक्ति अधिक लगती है उन्हें महाप्राण ध्वनियाँ कहते हैं। जिन ध्वनियों में इस प्राणवायु या श्वास बल का कम प्रयोग होता है उन्हें अल्पप्राण कहते हैं। 'ह' शुद्ध प्राण ध्वनि के बहुत निकट है। इसलिए कुछ लोग हकारयुक्त ध्वनियों को महाप्राण और हकार रहित को अल्पप्राण ध्वनि कहते हैं। किन्तु हकार के योग के आधार पर ध्वनियों को अल्पप्राण-महाप्राण मानना वैज्ञानिक नहीं है। उदाहरणार्थ हिन्दी ख स्पर्श ध्वनि है। यदि इसे क्+ह का रूप (अंग्रेजी आधार पर) मानें तो यह स्पर्श-संघर्षी ध्वनि हो जायगी। अतः हकार को हिन्दी के लिए वर्गीकरण का आधार नहीं बनाया जा सकता।

प्राणत्व केवल व्यंजनों में होता है स्वर में नहीं। अतः अल्पप्राण-महाप्राण व्यंजन के ही भेद हैं स्वर के नहीं। हिन्दी व्यंजन ध्वनियों में क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म एवं ल, र, ड़ ध्वनियाँ अल्पप्राण हैं। शेष सभी महाप्राण हैं।

(४) घोष-अघोष :—मानव स्वर-यंत्र में लगी हुई झिल्लियों को स्वरतंत्री कहते हैं। ये स्वरतंत्रियाँ जब अपनी सामान्य अवस्था में होती हैं तब निस्पंद, शिथिल और पृथक-पृथक रहती हैं। कंठद्वार खुला रहने के कारण श्वास-प्रश्वास अबाध गति से आता-जाता रहता है। ऐसी दशा में जिन ध्वनियों का उच्चारण होता है वे अघोष ध्वनियाँ कहलाती हैं। घोषत्व स्वर-व्यंजन दोनों का गुण है। हिन्दी में सभी स्वर अघोष होते हैं तथा व्यंजनों में क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स एवं ह अघोष हैं।

जब स्वर-तंत्रियाँ परस्पर निकट आकर सट जाती हैं तो फेफड़े से निकलने वाला हवा रगड़ खाकर बाहर निकलती है और इन तंत्रियों में कम्पन उत्पन्न होता है। जिन ध्वनियों का उच्चारण ऐसी स्थिति में कम्पन के कारण होता है उन्हें घोष कहते हैं। स्वरों के कुछ विशिष्ट रूप घोष होते हैं तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यंजनों में कवर्ग, चवर्ग आदि पंच वर्णों के अन्तिम तीन वर्ण तथा य, र, ल, व, ढ़ और ड़ घोष होते हैं।

(५) स्पर्श—स्पर्श उन ध्वनियों को कहते हैं जिनमें जिह्वा का मुख-विवर के उपरिभाग से कहीं-न-कहीं स्पर्श होता है। स्पर्श व्यंजन ही होते हैं क्योंकि इन्हीं के उच्चारण में मुख-विवर के कोई दो अंग एक दूसरे का स्पर्श करते हैं। हिन्दी में कवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग की पांचों ध्वनियाँ स्पर्श मानी गई हैं।

(६) संघर्षी—वे व्यंजन ध्वनियां जिनके उच्चारण में दो अवयवों का स्पर्श होने के कारण फेफड़े की हवा रगड़ खाती हुई बाहर निकलती है संघर्षी कहलाती हैं। पारम्परिक रूप से व्याकरण ग्रंथों में इन ध्वनियों को उष्म भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि संघर्षण के कारण निकलने वाली हवा किंचित उष्म हो जाती है। हिन्दी की श, ष और स संघर्षी ध्वनियां हैं।

(७) स्पर्श-संघर्षी— व्यंजनों के उच्चारण में मुख-विवर के दो अवयव या तो एक दूसरे का स्पर्श करते हैं या उन दोनों अवयवों से हवा रगड़ खाती हुई निकलती है। जिन ध्वनियों के उच्चारण में यह दोनों हो अर्थात् स्पर्श भी हो और घर्षण भी हो उन्हें स्पर्श + संघर्षी = स्पर्श-संघर्षी कहते हैं। कादरी, चटर्जी, सक्सेना, धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार हिन्दी की च, छ, ज, झ ध्वनियां स्पर्श-संघर्षी हैं। प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा ग्लीसन के मत का समर्थन करते हुए उन्हें स्पर्श ही मानते हैं संघर्षी नहीं। किन्तु अधिकांश भाषाविद् इसे स्पर्श-संघर्षी ही मानते हैं और हमारी सहमति भी इन्हीं के साथ है।

(८) अर्द्धस्वर :—जिन ध्वनियों के उच्चारण में व्यंजन की भाँति दो अवयवों के स्पर्श होने का प्रयत्न तो परिलक्षित होता है किन्तु स्पर्श हो नहीं पाता, स्वर की तरह स्पर्शहीन ही रह जाता है उन्हें स्वर एवं व्यंजन के बीच में होने के कारण अर्द्धस्वर कहा जाता है। हिन्दी की य और व ध्वनियां अर्द्धस्वर हैं। य के उच्चारण में जाभ को कठोर तालु की ओर ले जाया जाता है किन्तु जीभ न तो चवर्गीय ध्वनियों की भाँति तालु का स्पर्श कर पाती है और न इ आदि स्वरों की भांति अलग रह पाती है। इसी मध्यवर्ती स्थिति के कारण इसे अर्द्धस्वर कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी तरह व के उच्चारण में दोनों ओठ छोरों पर एक दूसरे का स्पर्श करते हैं किन्तु वायु के निर्गत होने के लिए बीच में मार्ग छोड़ देते हैं। अतः उच्चारण ओअ या उअ जैसा सुनाई पड़ता है। इसी तरह य का उच्चारण एअ अथवा इअ जैसा सुनाई पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि इनमें स्वरत्व की मात्रा अधिक है। फिर भी इन दोनों को पता नहीं क्यों व्यंजन वर्ग में रखा गया है। बोलियों में य का ज तथा व का ब या ओ हो जाता है। अर्द्धस्वरों को अन्तस्थ भी कहते हैं।

(९) पार्श्विक :—कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जिनके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़े का अच्छी तरह स्पर्श करती है और जीभ के दोनों पार्श्वों में गोलाकार जगह छूट जाती है। इसके कारण भीतर से आनेवाली हवा पार्श्व से होकर निकल जाती है। पार्श्व से निकलनेवाली वायु से उच्चरित होने के कारण इन ध्वनियों को पार्श्विक कहते हैं। हिन्दी की ल और ल्ह ध्वनियाँ पार्श्विक हैं। ल पार्श्विक घोष वर्त्स्य अल्पप्राण है और ल्ह महाप्राण। लड़का, बलिदान, अल्हड़ जैसे शब्दों में इनके प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

(१०) उत्क्षिप्त :—जीभ को लपेट कर उससे झटके के साथ तालु का स्पर्श कराकर जिस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है उसे उत्क्षिप्त कहते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार उत्क्षिप्त ध्वनि का उच्चारण "जीभ की नोक को उलट कर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है।" हिन्दी की ड़ और ढ़ ध्वनियाँ उत्क्षिप्त हैं। कादरी और चटर्जी ने इन ध्ववियों को लुंठित माना है और र को उत्क्षिप्त। किन्तु हिन्दी के अधिकांश भाषाविद् ड़ और ढ़ को उत्क्षिप्त मानते हैं लुंठित नहीं।

(११) लुंठित :—लुंठित ध्वनियों के विषय में विद्वानों के बीच पर्याप्त मतभेद है। डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार अगर जीभ को यथासंभव लपेट कर ध्वनि निकाली जाय तो वह ध्वनि लोड़ित (लुंठित) की संज्ञा पाती है। उनके अनुसार र लोड़ित ध्वनि है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा भी इसी को लुंठित मानते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी र और र्ह को लुंठित मानते हुए कहते हैं कि "इनके उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स्य या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से कई बार स्पर्श करती है।" किन्तु कादरी एवं चटर्जी ड़ और ढ़ को लुंठित मानते हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार र ध्वनि विभिन्न भाषाओं में लुंठित, उत्क्षिप्त, संघर्षी, कम्पनयुक्त आदि होती है। किन्तु हिन्दी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र लुंठित ही है। मेरी दृष्टि में हिन्दी भाषी विद्वान संस्कारतः इस ध्वनि के रूप को अधिक अच्छी तरह समझते हैं अतः कादरी और चटर्जी (जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है) के मतों को लेकर विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। र लुंठित ध्वनि ही है और ्ह इसका महाप्राण रूप है।

(१२) अनुनासिक :—जिन ध्वनियों के उच्चारण में कौवा तथा कोमल तालु के नीचे झुक आने के कारण कुछ वायु नासिका-विवर में गूँजकर बाहर निकलती है, अनुनासिक कहलाती है। डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण में कोमल तालु के ऊपर उठने से नासिका-विवर के द्वार का अवरोध नहीं होता।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार स्वर और व्यंजन दोनों अनुनासिक होते हैं। स्वरों के साथ केवल चन्द्रविन्दु और अनुस्वार का प्रयोग होता है जबकि व्यंजनों में अन्य रूप भी प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी ध्वनियों में ङ, ञ, ण, न और म ये पाँच वर्ण अनुनासिक हैं। लिखने में वर्तनी की एकरूपता की दृष्टि से प्रायः अनुस्वार का प्रयोग होता है। ञ के लिए सर्वत्र अनुस्वार आता है। ङ का प्रयोग वाङ्मय आदि कतिपय संस्कृत शब्दों में होता है। अन्यत्र अनुस्वार का ही प्रयोग होता है। अर्द्ध होने पर म के लिए वैकल्पिक रूप से अनुस्वार का प्रयोग होता है जबकि अर्द्ध न सदा अनुस्वार लिखा जाता है। ण अर्द्ध होने पर दोनों रूपों में लिखा जाता है। जैसे—पंडित या पण्डित। ञ, ङ और ण शब्द के आरम्भ में नहीं आते हैं। अनुनासिक ध्वनियाँ घोष अल्पप्राण होती हैं। न और म के महाप्राण रूप न्ह और म्ह चलते हैं।

(१३) प्रयत्न :—पाणिनीय शिक्षा में ध्वनियों के वर्गीकरण के पाँच आधार बताये गए हैं जिनमें प्रयत्न भी एक है।

तेषां विभागः पंचधा स्मृतः।
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः॥

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार यहाँ प्रयत्न शब्द से आभ्यन्तर प्रयत्न का अभिप्राय है और अनुप्रदान से वाह्य प्रयत्न का।[१] अर्थात् प्रयत्न और अनुप्रदान दोनों मिलकर प्रयत्न शब्द की आधुनिक व्याप्ति को पूर्ण करते हैं।

प्रयत्न उस आन्तरिक शक्ति का द्योतक है जिसके द्वारा हम ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। यह प्रयत्न दो प्रकार का होता है—आन्तरिक और

१. भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ० २०६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाह्य। मुख विवर के भीतर ओठ से कंठ तक जो प्रयत्न किए जाते हैं उन्हें आन्तरिक प्रयत्न कहते हैं। इससे भिन्न वाह्य प्रयत्न होते हैं। आन्तरिक प्रयत्न के चार भेद होते हैं—स्पृष्ट, ईषत् स्पृष्ट, विवृत और संवृत। पंच वर्गों की ध्वनियों का उच्चारण स्पृष्ट माना जाता है। इसे ही स्पर्श कहते हैं। य व ईषत् स्पृष्ट हैं इसे अर्द्ध स्वर या अन्तस्थ कहते हैं। अ आ विवृत ध्वनियाँ हैं और इ, ई, उ, ऊ संवृत।

वाह्य प्रयत्न बारह माने गए हैं जिनमें घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, उदात्त-अनुदात्त आदि की गणना होती है। प्रयत्न स्वर और व्यंजन सभी ध्वनियों के उच्चारण में होते हैं। इनका सम्बन्ध स्वर तन्त्रियों से अधिक होता है। घोष-अघोष, उदात्त-अनुदात्त आदि भेद स्वर तन्त्रियों की स्थिति पर ही आधारित हैं।

प्रयत्न एक सहज क्रिया है जिसका मानव की इच्छा शक्ति से सम्बन्ध है। यदि मनुष्य प्रयत्न न करे तो उसका मौन कभी भी मुखरता में परिणत नहीं हो।

(१४) प्रयत्न-लाघव :—आसानी की ओर अग्रसर होना मनुष्य की सहज प्रकृति है। वह कम-से-कम प्रयत्न द्वारा अधिक-से-अधिक लाभ पाना चाहता है। इसी प्रवृत्ति को भाषा-विज्ञान की शब्दावली में प्रयत्न-लाघव कहते हैं। इस प्रकार भाषा विज्ञान की दृष्टि से प्रयत्व-लाघव वह प्रवृत्ति है जिसके कारण भाषा सरलता की ओर अग्रसर होती हुई अनेक परिवर्तनों को प्राप्त करती है। प्रयत्न-लाघव की प्रवृत्ति भाषा में अनेक रूपों में प्राप्त होती है—कहीं संक्षिप्तता के रूप में तो कहीं विस्तार के रूप में। ऐसे परिवर्तनों को लोप, आगम, समीकरण, विषमीकरण, विपर्यय आदि कहते हैं। ये सभी प्रयत्न-लाघव के ही विभिन्न प्रकार हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

लोप—गोधूम—गेहूँ।

आगम—ओष्ठ—होंठ

समीकरण—सर्प—साँप

विषमीकरण—मुकुट—मौर

निष्कर्षतः प्रयत्न-लाघव वह प्रवृत्ति है जिसके कारण भाषा व्यापक रूप में परिवर्तित होकर सरलीकरण की ओर अग्रसर होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१५) समीकरण :—जब दो भिन्न ध्वनियाँ पास-पास रहने के कारण सम हो जाती हैं अर्थात् दोनों में से कोई एक दूसरी में परिणत हो जाती हैं तो इस परिवर्तन क्रिया को समीकरण कहते हैं। समीकरण के दो भेद होते हैं—पुरोगामी और पश्चगामी। जब पूर्ववर्त्ती ध्वनि परवर्त्ती के समान हो जाती है तो उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं। जैसे दुग्ध—दूध। यहाँ ग और ध ध्वनियाँ समीप हैं जिनमें ग पूर्ववर्त्ती और ध परवर्त्ती हैं। परिवर्तन के क्रम में ग की परिणति ध में हो गई है। अतः यहाँ पुरोगामी समीकरण है। इसी तरह सर्प से साँप, कर्म से काम, जगत् नाथ का जगन्नाथ, वार्ता से बात, दूर्वा से दूब, कार्य से काज होना पुरोगामी समीकरण है।

पश्चगामी समीकरण में परवर्त्ती ध्वनि पूर्ववर्त्ती ध्वनि में परिणत हो जाती है। जैसे—अग्नि से आग। यहाँ परवर्त्ती ध्वनि न पूर्ववर्त्ती ध्वनि ग में परिणत हो गई है। इसी तरह पथ्य से पथ, रथ्या से रथ, कल्य से कल होना पश्चगामी समीकरण का उदाहरण है।

(१६) विषमीकरण :—यह समीकरण का विपरीत रूप है। जहाँ समान निकटस्थ ध्वनियों में से एक का लोप हो जाता है वहाँ विषमीकरण होता है। जैसे—वीरवर—वीरबल यहाँ दो समीपस्थ र ध्वनियों में से एक का ल में परिवर्त्तन हो गया है अतः विषमीकरण है। इसी तरह मुकुट में म और क दोनों में उ स्वर है इसके परिवर्त्तित रूप मउर में म का उ परिवर्त्तित होकर अ बन गया है।

(१७) स्वर-भक्ति :—संयुक्ताक्षरों का उच्चारण सामान्य लोगों के लिए प्रायः असुविधाजनक होता है। इस स्थिति से बचने के लिए "जब संयुक्ताक्षरों के बीच में कोई स्वर डालकर उसे विभक्त कर दिया जाता है तो इसे स्वर-भक्ति कहते हैं। हिन्दी में स्वर-भक्ति द्वारा संयोग में वियोग लाकर उच्चारण को सरल बनाने की प्रवृत्ति भरपूर मिलती है। मिश्र का मिसिर होना स्वर-भक्ति का उदाहरण है। यहाँ इ लगाकर स और र को अलग कर दिया गया है। इसी तरह पर्व का परब, मूर्ख का मूरख, रत्न का रतन, दर्शन का दरसन, रामेश्वर का रामेसर, कृष्ण का किसुन, सुरेन्द्र का सुरेन्दर होना स्वर-भक्ति का उदाहरण है।

(१८) जिह्वामूलीय :—यह वैदिक ध्वनि है। क के पहले आने वाले विसर्ग का रूपान्तर जिह्वामूलाय कहलाता था। क से पूर्व आने वाले विसर्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का उच्चारण ख के समान होता था। इसे ही जिह्वामूलीय कहते थे। इसका चिह्न ᳵ था। वैदिक संस्कृत के अतिरिक्त इसका प्रयोग नहीं मिलता। ततः किम् पद उदाहरणार्थ लिया जा सकता है जिसमें क के पहले विसर्ग आया है। यही जिह्वामूलीय है।

(१६) उपध्मानीय :—यह भी वैदिक ध्वनि ही है। प से पहले आनेवाले विसर्ग की ध्वनि को उपध्मानीय कहा गया है। इसका उच्चारण दीपक बुझने की ध्वनि से मिलता-जुलता है। इसका चिह्न भी जिह्वामूलीय की भाँति ᳵ है। 'पुनः पुनः' शब्द में दूसरे प के पहले जो विसर्ग है वही उपध्मानीय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) पारिभाषिक शब्दावली (हिन्दी-अंग्रेजी)

अंत्य—Final
अंत्य प्रत्यय—Termination
अकर्मक क्रिया—Intrasitive verb
अक्षर—Syllable
अग्रतालव्य—Prepalatal
अग्रस्वर—Palatal Vowel
अघोष—Voiceless, Unvoiced
अघोषीकरण—Devoicing
अघोष स्पर्श—Devoice plosive
अचिह्नित—Unmarked
अधरोष्ठ—Lower lip
अधिकरण कारक—Locative Case
अध्याहार—Ellipsis
अनिर्दिष्ट काल—Aorist
अनिश्चयवाचक सर्वनाम—Indifinite pronoun
अनुक्रम—Sequence
अपसरण—Divergence
अर्थ परिवर्त्तन—Semantic Change
अर्द्ध विवृत—Half open
अर्द्ध संवृत—Half close
अर्द्ध स्वर—Semi-vowel
अलिजिह्वा, कौवा—Uvula
अल्प प्राण—Non-aspirate, Unaspirated
अविकारी, अव्यय—Indeclinable, Invariable, Inflexible
अस्पष्ट—Ambiguous
आगम—Augment
आघात—Accent
आज्ञार्थक—Imperative Mood

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि लोप—Aphesis
आरोही—Rising, Crescendo
आवृत्ति—Frequency
आश्रित—Subordinate, Conditional
आसन्न—Adjacent
आसन्नभूत—Present perfect
उच्च स्वर—High vowel
उच्चारण—Pronounciation, phonation, articulation
उच्चारण यंत्र—Speech Mechanism
उच्चारण स्थान—Articulatory region
उत्क्षिप्त—Flapped
उदात्त—Acute accent
उदासीन स्वर—Neutral vowel
उपभाषा, बोली—Dialect
उभयलिंग—Common gender
ऊष्म—Sibilant
ओष्ठ्य—Labial
कँठ्य—Guttural, velar
कम्पन—Vibration
कठोर तालु—Hard palate
करण कारक—Instrumental Case
कर्त्तरि प्रयोग—Active voice
कर्तृवाच्य—Active voice
कर्मणि प्रयोग—Passive voice
कर्मवाच्य— " "
काकल—Larynx
कृत प्रत्यय—Primary affix
कृत्रिम तालु—Artificial palate
कृदन्त—Primary derivative
कृदन्त संज्ञा—Participial noun
कोमल तालव्य—Velar
कोमल तालु—Soft palate

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घर्षण—Friction
घोष—Voice
घोषत्व—Voicing
घोषीकरण—Sonorization
चित्रलिपि—Pictography
चिह्न—Mark
चिह्नित—Marked
जनभाषा—Demotic Language
जिह्वाग्र—Apex
जिह्वामूल—Root of the tongue
जिह्वामूलीय—Radical
तद्धित, तद्धितान्त—Secondary derivative
तालव्य—Palatal
तालु—Palate
तुलनात्मक—Comparative
दंत्य—Dental
'तोष्ठ्य—Labio-dental
दीर्घीकरण—Lengthening
देशज—Native
द्वित्व—Gemination
द्वयोष्ठ्य—Bilabial
धातु—Root
नाम धातु—Denominative root
नासिका विवर—Nasal Cavity
नासिक्य, अनुनासिक—Nasal
निजवाचक—Reflexive
निपात—Particle
निश्चयवाचक—Defenite
पद—Term
परसर्ग—Post-position
परिवर्त्तन—Variation, alteration

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पश्च—Back
पश्चगामी—Regressive
पार्श्विक—Lateral
पुरोगामी—Prospective
पूर्व प्रत्यय—Prefix
पूर्ववर्त्ती—Antecedent
प्रकृति—Base, Etymon
प्रत्यय—Affix, formative
प्रयत्न—Manner of articulation
प्रयत्न-लाघव—Economy of effort
प्राकृतिक लिंग—Natural gender
प्राणत्व—Breathing
प्रेरणार्थक—Causative, factitive
फुसफुसाहट—Whispering
बलाघात—Stress, Stress accent
मध्य प्रत्यय—Infix
मसूड़ा—Gums
महाप्राण—Aspirated
मान स्वर—Cardinal Vowel
मुख-विवर—Vocal Cavity
मूर्द्धन्य—Domal
मूल—Fundamental, root
रचना—Construction
रूप—Morph
लिपि—Script
वर्तनी—Orthography
वर्तुल—Round
वर्त्स्य—Alveolar
वर्त्स्य-तालव्य—Alveo-palatel
विकार—Mutation
विकारी—Oblique

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकास—Development, evolution
विपर्यय—Transposition
विभक्ति—Case
विवृत—Open
विषमीकरण—Dissimilation
विस्मयादिबोधक—Interjection
व्यंजन लोप—Eclipsis
व्युत्पत्ति—Derivation, Etymology
शब्द-समूह—Vocabulary
शिथिल स्वर—Lax vowel
श्वास द्वार—Glottis
श्वास नली—Wind pipe
संघर्षी—Fricative, spirant
संज्ञार्थक क्रिया—Substantive verb
संयुक्त काल—Compound verb
संरचना—Structure
संवृत—Close
संश्लेषण—Synthesis
समीकरण—Assimilation, Equalization
सहायक (क्रिया)—Auxiliary (verb)
सादृश्य—Analogy
साधित—Derivative
सार्वनामिक—Pronominal
स्पर्श—Stop, mute, plosive
स्पर्श-संघर्षी—Affricate, semi-plosive
स्वर-भक्ति—Anaptyxis, anaplyctic insertion
स्वर यंत्र—Larynx
स्वर संयोग—Vowel harmony
स्वराघात—Pitch (pitch accent)
स्वरित—Circumflex accent
ह्रस्व स्वर—Short vowel

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) सहायक ग्रंथ

डॉ० उदय नारायण तिवारी— (१) हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास
(२) पाणिनि के उत्तराधिकारी
डॉ० कामेश्वर शर्मा— (३) हिन्दी की समस्याएँ
कादरी— (४) हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स
केलॉग— (५) ए ग्रामर ऑव हिन्दी लैंग्वेज
केप्टन टेलर— (६) इम्पीरियल रिकार्ड्स
ग्लीसन— (७) ऐन इन्ट्रोडक्सन टू डिसक्रिप्टिव लिंग्विस्टिक
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा— (८) भारतीय प्राचीन लिपि माला
डॉ० चन्द्रभान रावत— (९) हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण
चन्द्रवली पाण्डेय— (१०) उर्दू का रहस्य
जार्ज ग्रियर्सन— (११) लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया भाग-१ खंड-१
जोगलेकर— (१२) देवनागरा लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ
टर्नर— (१३) नेपाली डिक्सनरी
देवेन्द्रनाथ शर्मा— (१४) भाषा विज्ञान की भूमिका
(१५) राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा— (१६) हिन्दी भाषा का इतिहास
डॉ० नामवर सिंह— (१७) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग
डॉ० बाबूराम सक्सेना— (१८) सामान्य भाषा विज्ञान
बीम्स— (१९) कम्परेटिव ग्रामर ऑव दि माडर्न आर्यन लैंग्वेजेज ऑव इंडिया
डॉ० भोलानाथ तिवारी— (२०) हिन्दी भाषा
(२१) सामान्य भाषा विज्ञान
डॉ० रामगोपाल शर्मा दिनेश— (२२) हिन्दी भाषा और उसका इतिहास
लुकास— (२३) मेमोरीज ऑव बाबर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शमशेर सिंह नरूला— (२४) हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास

डॉ० सरनाम सिंह शर्मा— (२५) आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में अपभ्रंश तथा अन्य निबन्ध

डॉ० सम्पत्ति अर्याणी— (२६) मगही व्याकरण कोश

डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल— (२७) भाषा विज्ञान और हिन्दी

डॉ० सियाराम तिवारी— (२८) बज्जिका भाषा और साहित्य

डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी— (२९) दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑव बेंगाली लैंग्वेज भाग—१, २

(३०) इण्डो-आर्यन एण्ड हिन्दी

डॉ० हरदेव बाहरी— (३१) हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप

हार्नली— (३२) इस्टर्न हिन्दी ग्रामर

(३३) कंपरेटिव ग्रामर ऑव गौडियन लैंग्वेजेज

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द. सं. १७८८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रमुख रचनाएँ हैं :—

नाटक :—

(१) संघर्ष की गोदी में
(२) उर्वशी
(३) जय वैशाली

कविता :—

सोना के वँसुली : माटी के गीत
(बज्जिक गीतों का संग्रह)

आलोचना :—

तुलसी की काव्य – साधना और कवितावली
काव्य शास्त्र की भूमिका

शोध :—

भक्तिकालीन कविता में वात्सल्य रस
(पी-एच० डी०)

हिंदी नाट्य-साहित्य में प्रतीक-विधान
(डी० लिट्०)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारत सरकार के शत प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के

समीक्षा और भाषा विज्ञान संबंधी अन्य प्रकाशन

१.	अलंकार-धारणा : विकास और विश्लेषण — डा० शोभाकान्त मिश्र	२६·००
२.	आर्य जीवन दर्शन — श्री मोहन लाल महतो वियोगी	१४·६०
३.	काव्यगुणों का शास्त्रीय विवेचन — डा० शोभाकान्त मिश्र	१६·००
४.	निबंध: सिद्धान्त और प्रयोग — डॉ० हरिहर नाथ द्विवेदी	७·००
५.	रीतिसाहित्य को बिहार की देन — डा० अमर नाथ सिन्हा	१२·५०
६.	हिंदी व्याकरण का इतिहास — डा० अनन्त चौधरी	छात्र सं० २३·०० पुस्त० सं० २७·००
७.	नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी — डा० अनन्त चौधरी	पुस्तकालय सं० २४·०० छात्र सं० १७·५०
८.	बिद्यापति : अनुशीलन एवं मूल्यांकन — सं० डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव	

टिप्पणी :—अन्य प्रकाशनों के संबंध में जानकारी के लिए विस्तृत सूचीपत्र की माँग करें।

पता—

निदेशक—

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

सम्मेलन भवन, कदमकुआँ,

पटना-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu